श्रीमती शिल्पी नेहा तिर्की
माननीय मंत्री
कृषि, पशुपालन एवं सहकारिता विभाग
झारखण्ड सरकार

श्री हेमन्त सोरेन
माननीय मुख्यमंत्री
झारखण्ड

कृषि, पशुपालन एवं सहकारिता विभाग
झारखण्ड

झारखण्ड में फलों के
बाग प्रबंधन की उन्नत तकनीक

राज्यस्तरीय कृषि प्रबंधन प्रसार-सह-प्रशिक्षण संस्थान

समेति, झारखण्ड

झारखण्ड में फलों के बाग प्रबंधन की उन्नत तकनीक

लेखक

डा. विशाल नाथ
भा.कृ.अनु.प. राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर

बिकास दास
वरिष्ठ वैज्ञानिक (फल विज्ञान)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर,
कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केन्द्र, प्लाण्डू, राँची

एवं

हरि शंकर सिंह
वरिष्ठ वैज्ञानिक (कीट विज्ञान),
भ.कृ.अनु.प. केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

महेश कुमार धाकड़
वैज्ञानिक (फल विज्ञान),
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर,
कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केन्द्र, प्लांडू, राँची

राज्यस्तरीय कृषि प्रबंधन प्रसार-सह-प्रशिक्षण संस्थान
(समेति), झारखण्ड
द्वितीय तल, समेति भवन, काँके रोड, राँची, झारखण्ड
www.sameti.org sametijharkhand@rediffmail.com

ISBN : 978-81-955051-8-0
(Anapurna Publishers, Ranchi)

सर्वाधिकार समेति, झारखण्ड द्वारा सुरक्षित ©

शीर्षक

झारखण्ड में फलों के बाग प्रबंधन की उन्नत तकनीक

द्वितीय संस्करण : 2024

मुद्रक

अन्नपूर्णा प्रेस एंड प्रोसेस
राँची

विषय-सूची

क्र.सं॰	विषय	पृष्ठ
1.	फल एवं सब्जियों से पोषण सुरक्षा	4
2.	वर्षा जल प्रबन्धन द्वारा फलों की खेती	9
3.	फल वृक्ष आधरित बहुस्तरीय फसल प्रणाली	14
4.	फल वृक्षों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के लक्षण एवं निदान	18
5.	फलोत्पादन में समेकित कीट प्रबंध	23
6.	झारखण्ड के मुख्य फलों की वैज्ञानिक खेती :	
	• आम	33
	• लीची	49
	• पपीता	63
	• केला	69
	• अमरूद	73
	• आंवला	78
	• कटहल	98
	• काजू	103
	• नींबू वर्गीय फल	106
7.	झारखण्ड में अन्य फलों की वैज्ञानिक खेती :	112
	• शरीफा	118
	• चीकू	122
	• बेल	125
	• बेर	129
	• स्ट्रोबेरी	142
	• आड़ू या सतालू	145
	• नारियल	155

फल एवं सब्जियों से पोषण सुरक्षा

मानव को स्वस्थ्य एवं निरोग रहने के लिए संतुलित भोजन आवश्यक है। इस भोजन में फलों एवं सब्जियों का विशेष महत्त्व है क्योंकि ये हमारे शरीर के लिए रक्षक भोजन है। इससे हमें ऐसे खनिज तत्व, विटामिन एवं अन्यान्य पोषक पदार्थ मिलते हैं जो शरीर की वृद्धि के साथ–साथ उसे निरोग रखने में सहायक होते हैं। इन तत्वों के कमी से शरीर में कुपोषण के लक्षण पैदा हो जाते हैं। भारत जैसे विकासशील देश में कुपोषण की समस्या बहुत ही जटिल है। हमारे देश की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा, विशेषकर महिलाएँ एवं बच्चे कुपोषण की विभिन्न बीमारियों से ग्रसित हैं। एक तिहाई बच्चे कम वजन के पैदा होते हैं तथा 60 प्रतिशत बच्चे खून की कमी से प्रभावित हैं। विटामिन 'ए' की कमी के कारण भी प्रतिवर्ष लगभग 20,000 बच्चे प्रभावित होते हैं। कुपोषण की समस्या गरीब एवं निम्न आर्थिक स्तर के लोगों में ज्यादा पायी जाती है। हमारे देश में एक हद तक लोगों को खाद्यान्न दाल एवं तेल से कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन और वसा तो उपलब्ध हो जाती है परन्तु विटामिन एवं खनिज लवणों की कमी बनी रहती है। कुपोषण की समस्या विटामिन एवं खनिज लवणों की कमी से ही अधिक होती है और इसे दूर करने के लिए आहार में सब्जियों एवं फलों का एक निर्धारित मात्रा में सम्मिलित होना बहुत जरूरी है। इनसे हमें खाद्य रेशा, खनिज लवण एवं विटामिन के साथ–साथ कार्बोहाइड्रेट्स प्रोटीन और वसा तत्व प्राप्त होते हैं जो अन्य से नहीं मिलते। इसलिए सब्जियों एवं फलों को रक्षात्मक भोजन (Protective food) का नाम दिया गया हैं। भोजनशास्त्रियों एवं वैज्ञानिकों के अनुसार हमारा भोजन संतुलित तभी होगा जब प्रत्येक वयस्क अपने आहार में 300 ग्राम सब्जियों (100 ग्रा. पत्तेदार, 100 ग्रा. जड़ तथा 100 ग्रा. अन्य) एवं 120 ग्रा. फलों का सेवन करें। हमारे देश में शाकाहारी लोगों की संख्या अधिक हैं, जिसके कारण हम अपने भोजन में सब्जियों की मात्रा बढ़ा सकते हैं।

सब्जियों एवं फलों के उपयोग एवं उपलब्धता को बढ़ाने में गृहवाटिका या पोषण–वाटिका बहुत मददगार साबित हो सकती है। सभी घरों के आसपास थोड़ी बहुत जमीन अवश्य होती है जिसका उपयोग फल एवं सब्जियाँ लगाने में आसानी से किया जा सकता है। गृहवाटिका से प्राप्त फल एवं सब्जियाँ बिल्कुल ताजी होती हैं तथा पोषक मान विशेषकर विटामिन का स्तर बहुत ऊँचा होता है। इसके साथ–साथ विभिन्न प्रकार के कीटनाशी जो कि सब्जी उत्पादक भारी मात्रा में डालते हैं उन्हें खाने से हम बच सकते हैं। गृहवाटिका लगाने से घर के सदस्यों के खाली समय का सही उपयोग हो जाता है और भोजन के लिए ताजी सब्जियाँ एवं फल भी मिलते रहते हैं।

फलों से पोषण सुरक्षा

फलों का पोषण सुरक्षा में महत्वपूर्ण स्थान है। अनेक स्वास्थ्य सम्बन्धी विकार जो विटामिन, खनिज लवणों आदि की कमी से होते हैं, फलों के निरन्तर सेवन करने से समाप्त हो जाते हैं। फलों को हम अनेक रूपों जैसे कच्चा एवं सूखा– (काजू, बदाम, पिस्ता, अखरोट) परिरक्षित पदार्थ, (स्क्वैश, चटनी, जैम, जैली,

मार्मलेड, मुरब्बा इत्यादि) के रूप में प्रयोग कर सकते हैं परन्तु परिरक्षित रूप में इस्तेमाल करने से ताजे फलों की तुलना में कम पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। परिरक्षण के विभिन्न स्तरों पर उष्मा का इस्तेमाल होता है तथा कई विटामिन इसके लिए संवेदनशील होते हैं जिसके कारण पोषक तत्वों में कमी आ जाती है। अगर फल एवं सब्जी को कम से कम उष्मा से उपचारित करके उपयोग किया जाए तो पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में रहते हैं। पका पीला आम, पपीता, खुमानी और पीले आडू कैरोटीन के उत्तम स्रोत होते हैं, जो शरीर में विटामिन 'ए' की पूर्ति करते हैं। आँवला, अमरूद, बेर एवं नींबू वर्गीय फलों में विटामिन 'सी' अधिक होता है जबकि बादाम, काजू, पिस्ता में प्रोटीन पाया जाता है। वसा से भरपूर फलों में अखरोट, बादाम, काजू, पिस्ता महत्वपूर्ण हैं। केले में अधिक कार्बोहाइड्रेट होता है जबकि पपीते में पाचक इंजाइम होते हैं तथा शर्करा भी होती है। कुछ प्रमुख फलों में पाए जाने वाले पोषक तत्व निम्न सारणी में दिए गए हैं। हमें इस बात का प्रयास करना चाहिए कि मौसमी फलों एवं ताजी सब्जियों का अधिक से अधिक उपयोग करें क्योंकि इनमें पोषक तत्व ज्यादा होते हैं जिनसे ज्यादा पोषण सुरक्षा मिलती है।

प्रमुख फलों में पाए जाने वाले पोषक तत्व (प्रति 100 ग्रा.)

फल	प्रोटीन (ग्रा.)	कार्बोहाइड्रेट (ग्रा.)	कैल्शियम (मि.ग्रा.)	लोहा (मि.ग्रा.)	कैरोटीन (मि.ग्रा.)	थायमीन (मि.ग्रा.)	विटामिन सी (मि.ग्रा.)
आँवला	0.50	13.7	50.00	1.20	9.00	0.03	600.00
सेव	0.20	14.1	7.00	0.30	90.00	0.03	7.00
खुमानी	1.00	12.80	17.00	0.50	2700.00	0.03	7.00
केला 1.1	22.20	8.00	0.70	190.00	0.05	10.00	
अंगूर 0.5	16.50	20.00	0.50	–	–	1.00	
अमरूद	0.10	9.00	50.00	1.20	–	0.02	15.00
नींबू	0.50	9.00	40.00	0.70	–	–	50.00
आम	0.60	16.90	14.00	1.30	2743.00	0.05	15.00
संतरा	1.00	12.20	41.00	4.40	200.00	0.10	50.00
पपीता	0.60	7.20	17.00	0.50	566.00	0.04	57.00
आडू	0.60	9.70	9.00	0.50	133.0	0.02	–
चीकू	–	28.00	1.20	97.00	–	6.00	
टमाटर	0.90	3.60	48.00	4.40	351.00	0.12	27.00

सब्जियों से पोषण सुरक्षा

सब्जियों का भी संतुलित भोजन एवं पोषण सुरक्षा में महत्वपूर्ण स्थान है। पोषक तत्वों की उपलब्धता एक सब्जी से दूसरी सब्जी में भिन्न होती है तथा इन्हें किस रूप में प्रयोग किया जाता है, इस पर भी प्राप्त होने वाले पौष्टिक तत्वों की मात्रा निर्भर करती है। ज्यादातर सब्जियों को जहाँ पकाकर खाया जाता है वहीं शलजम, मूली, गाजर, खीरा, ककड़ी, प्याज, टमाटर, पत्तागोभी आदि को अक्सर कच्ची अवस्था में

सलाद के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। तरबूज, खरबूज आदि को पकने के बाद फलों के रूप में खाया जाता है जबकि कुछ सब्जियों जैसे प्याज, लहसुन, अदरक, पुदीना, धनिया आदि को मसाले की तरह प्रयोग किया जाता हैं सब्जियों को विभिन्न प्रकार से प्रयोग करने जैसे कच्चा, पकाकर, भूनकर, सलाद के रूप में मसाले की तरह तथा ताजी व बासी अवस्था में खाने से इनसे प्राप्त होने वाले पोषक तत्वों में अन्तर आता है, सब्जियों से ज्यादा पोषक तत्व के लिए उन्हें कच्ची अवस्था में या उबालकर या कम पकाकर खाना चाहिए। मेथी, फूलगोभी, करेला, बैंगन आदि सब्जियों को सुखाकर बेमौसम में खाया जा सकता है। इसी प्रकार टमाटर, गाजर, मिर्च, फूलगोभी, मूली, करेला, आलू, पेठा आदि को सॉस, सिरका, चटनी, अचार, चिप्स, मुरब्बा, मिठाई आदि बनाकर खाने में उपयोग किया जा सकता है परन्तु ताजी हरी सब्जियों के प्रयोग से ज्यादा पोषण सुरक्षा मिलती है। कुछ प्रमुख सब्जियों में पाए जानेवाले पोषक तत्व निम्न सारणी में दिए गए हैं।

प्रमुख सब्जियों में पाए जानेवाले पोषक तत्व (प्रति 100 ग्रा.)

फल	प्रोटीन (ग्रा.)	कार्बोहाइड्रेट (ग्रा.)	कैल्शियम (मि.ग्रा.)	लोहा (मि.ग्रा.)	कैरोटीन (मि.ग्रा.)	थायमीन (मि.ग्रा.)	विटामिन सी (मि.ग्रा.)
चौलाई	4.0	6.1	397.00	25.5	5520.00	0.03	99.0
पालक	3.4	6.5	380.00	16.2	5862.00	0.26	70.0
मेथी	4.4	6.0	395.00	16.5	5862.00	0.26	70.0
पत्तागोभी	1.8	4.6	39.00	1.8	1200.00	0.06	124.0
सहजन पत्ती	4.4	6.0	395.00	16.5	2340.00	.004	52.0
पोदीना	4.8	5.8	200.00	15.6	1620.00	0.05	27.0
शलजम	1.7	8.8	18.00	1.0	—	0.04	10.0
प्याज	1.2	11.1	47.00	0.7	—	0.08	11.0
मूली	0.7	3.4	35.00	0.4	3.00	0.06	15.0
शकरकन्द	1.2	28.2	46.00	0.8	6.00	0.08	11.0
करेला	1.6	4.2	20.00	1.6	126.00	0.07	88.0
बैंगन	1.4	4.0	18.00	0.9	74.00	0.04	12.0
फूलगोभी	2.6	4.0	30.00	1.5	30.00	0.04	56.0
लोबिया	3.5	8.1	72.00	2.5	564.00	0.07	14.0
सहजन फली	2.5	3.7	30.00	5.3	110.00	0.05	120.0
फ्रेंचबीन	1.7	4.5	50.00	1.7	132.00	0.08	24.0
भिण्डी	1.9	6.4	66.00	1.5	52.00	0.07	13.0
मटर	7.2	15.9	20.00	1.5	83.00	0.25	9.0

फल	प्रोटीन (ग्रा.)	कार्बोहाइड्रेट (ग्रा.)	कैल्शियम (मि.ग्रा.)	लोहा (मि.ग्रा.)	कैरोटीन (मि.ग्रा.)	थायमीन (मि.ग्रा.)	विटामिन सी (मि.ग्रा.)
कद्दू	1.4	4.6	10.0	0.7	50.0	0.05	2.0
तोरई	0.5	3.4	18.0	0.5	33.0	—	5.0
चिचिन्डा	0.5	3.3	26.0	0.3	96.0	0.04	—
आलू	—	—	10.0	0.4	24.0	—	17.0

फल एवं सब्जियों में पाये जाने वाले प्रमुख पोषक तत्व

विटामिन 'ए' : विटामिन 'ए', आँख, त्वचा व शरीर की वृद्धि के लिए आवश्यक है। इस विटामिन की कमी से रात में अंधापन (रतौंधी), आँखों में लाली, त्वचा की बीमारी, बच्चों का बढ़वार रूकना जैसे बीमारियाँ हो जाती हैं। यह विटामिन बीटा कैरोटीन के रूप में पपीता, आम, कद्दू, चुकंदर, टमाटर तथा हरी पत्तेदार सब्जियों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

विटामिन 'बी' : इस समूह के विटामिन में राइबोफ्लेबिन, निकोटिनिक एसिड, पेंटोथेनिक एसिड, फॉलिक एसिड, विटामिन बी–12 आदि मुख्य हैं। इस समूह का सबसे महत्वपूर्ण विटामिन बी–1 या थायमिन है। इस विटामिन की कमी से 'बेरी–बेरी' रोग, भूख न लगना, शरीर के वजन में कमी आदि समस्याएं उत्पन्न होती हैं। यह विटामिन शरीर की वृद्धि, विकास तथा वंश विकास क्रियाओं में सहायक हैं। सलाद, पत्तागोभी, गाजर, प्याज, हरी सब्जियों में विटामिन 'बी' पाया जाता है।

विटामिन 'सी' : विटामिन 'सी' की कमी से 'स्कर्वी' नामक बीमारी होती है। इसके अलावा विटामिन 'सी' की कमी से दाँतों एवं मसूड़ों से खून निकलना, गठिया, शरीर के घावों का देर से भरना, सर्दी–जुकाम तथा शरीर के प्रतिरोधक क्षमता में भी कमी आती है। विटामिन 'सी' मुख्य रूप से आँवला, अमरूद, नींबू वर्गीय फल जैसे–संतरा, नींबू, मुसम्मी, टमाटर तथा हरी पत्तेदार सब्जियों में पाया जाता है। उच्च ताप एवं भण्डारण समय का प्रभाव इस विटामिन पर ज्यादा पड़ता है तथा इसकी मात्रा में कमी आती है।

लौह तत्त्व : यह हमारे शरीर का एक प्रमुख तत्व है। यह ह्यूमोग्लोबिन का मुख्य अंग है तथा यह शरीर में ऑक्सीजन को लेकर चलने में प्रमुख भूमिका निभाता है। हरी पत्तेदार सब्जियाँ लौह तत्व के प्रमुख एवं सस्ते स्रोत हैं।

कैल्शियम : कैल्शियम मुख्य रूप से दाँत एवं हड्डियों में पाया जाता है। यह दिल की गति को सामान्य रखने में तथा कोशिकाओं के संकुचन में प्रमुख भूमिका निभाता है। हरी पत्तेदार सब्जियाँ कैल्शियम का प्रमुख स्रोत है।

फास्फोरस : यह शरीर के ऊतकों की क्रियाओं के लिए आवश्यक है। कार्बोहाइड्रेट के ऑक्सीजनीकरण के लिए फास्फोरस की आवश्यकता होती है। इस पौष्टिक तत्व की प्रचुर मात्रा आलू, गाजर, टमाटर, खीरा, करेला, पालक, फूलगोभी जैसी सब्जियों में पायी जाती है।

खाद्य रेशा : पाचकीय रेशा हमारे भोजन का अभिन्न अंग है और इसे फल एवं सब्जियों के द्वारा आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। हरी पत्तेदार सब्जियाँ, आँवला, अनार, सेब, केला आदि से रेशा प्रचुर मात्रा में मिलता है। रेशा बहुत सी बीमारियों जो मुख्यतः भोजन से सम्बंधित है जैसे–मधुमेह, उच्च रक्तचाप, दिल की बीमारियाँ आदि को भी कम करता है।

कार्बोहाइड्रेट : आलू, शकरकन्द, मटर आदि सब्जियाँ तथा केला, एवोकैडो, आम आदि फल कार्बोहाइड्रेट के मुख्य स्रोत हैं। इनके प्रयोग से शरीर को शक्ति तथा कैलोरी प्राप्त होती है व शरीर स्वस्थ रहता है।

प्रोटीन : प्रोटीन एक महत्वपूर्ण पौष्टिक तत्व है। उत्तक तथा कोशिका निर्माण में प्रोटीन की मुख्य भूमिका है। शरीर की टूट–फूट एवं अनेक महत्वपूर्ण क्रियाओं के लिए प्रोटीन बहुत उपयोगी तत्व है। प्रोटीन की प्राप्ति मटर, सेम, बाकला, फ्रेंचबीन, चौलाई आदि सब्जियों से होती है तथा बादाम, काजू, पिस्ता एवं फलों में प्रोटीन का अंश काफी मात्रा में होता है।

फल एवं सब्जियों मानव स्वास्थ्य के साथ–साथ आर्थिक समृद्धि के लिए भी अत्यन्त उपयुक्त माध्यम है। अनुसंधान से पता लगाया गया है कि यदि खाद्यान्य फसलों के स्थान पर अथवा खाली पड़े हुए बंजर, परती एवं बेकार जमीन पर फलदार पौधों की खेती की जाय तो उससे खाद्यान्य फसलों की तुलना में 2–3 गुना ज्यादा आमदनी प्राप्त होता है। इन्हीं बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए झारखण्ड राज्य में मौजूद भौगोलिक एवं भूस्तरीय दशाओं के अनुरूप प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग द्वारा फलों की उन्नत खेती के लिए आवश्यक जानकारी एवं सुझाव इस पुस्तक में दिया जा रहा है। आशा है कि इसमें दी गयी जानकारी यहाँ के कृषकों एवं नीति निर्धारकों को क्षेत्रा में फल उत्पादन को आगे बढ़ाने में मदद मिलेगी।

वर्षा जल प्रबन्ध द्वारा फलों की खेती

नवोदित झारखंड प्रदेश छोटानागपुर एवं संथाल परगना के पठारी क्षेत्र में स्थित है। यहाँ पर कुल भौगोलिक क्षेत्रफल (80 लाख हेक्टेयर) का लगभग 28 प्रतिशत भाग वनों से ढ़का हुआ है। इस क्षेत्र में 600–900 मीटर की ऊँचाई वाली पहाड़ियाँ तथा टेड़ी–मेढ़ी पथरीली नदियाँ हैं। यह राज्य मध्यम तापमान वाले उपोषण कटिबन्धीय जलवायु क्षेत्र में आता है जहाँ पर अनेक फल, सफलता पूर्वक उगाये जा सकते हैं। ऊँची–नीची भू–सतह वाले इस क्षेत्र में वर्ष में औसतन 1100–1600 मिलीमीटर वर्षा होती है जिसमें से लगभग 90 प्रतिशत वर्षा जून से सितम्बर माह के मध्य ही हो जाती है। इस क्षेत्र में प्रमुखतः लाल लेटराइट मिट्टी है जिसमें कार्बनिक पदार्थों की कमी के साथ–साथ जलधारण क्षमता भी बहुत कम है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि 3–4 ही महीनों में अधिकतम वर्षा होने, भूमि की सतह ढालू होने तथा मिट्टी की जलधारण क्षमता कम होने के कारण सारा वर्षा जल बहकर नदियों एवं समुद्रों में चला जाता है जिससे जमीन की उपजाऊ मिट्टी के नुकसान के साथ–साथ इसका भरपूर उपयोग भी नहीं हो पाता।

झारखंड क्षेत्र की कुल जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा आदिवासी एवं पिछड़ा वर्ग है जिनका खाद्य एवं पोषण राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय मानदण्डों के अनुसार नहीं है। यहाँ पर लोगों को पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न, दालें, तेल, मिठाई, एवं अन्य आवश्यक पोषक तत्व उचित मात्रा में नहीं मिल पाता। इस क्षेत्र में प्रति व्यक्ति/वर्ष खाद्य पदार्थ की उपलब्धता मात्र 130 किलोग्राम है जो देश के प्रति व्यक्ति खाद्य उपलब्धता (205 किलोग्राम/वर्ष) से काफी कम है। यदि हम इनके कारणों पर विचार करें तो दो बिन्दु सामने आते हैं।

1. इस क्षेत्र की जलवायु अनेक फसलों के उत्पादन के लिए उपयुक्त होने के बावजूद वर्षा जल का उचित उपयोग न होने तथा मृदा में जल धारण क्षमता की कमी के कारण उनका अच्छा उत्पादन नहीं हो पा रहा है।

2. आर्थिक संसाधनों की कमी तथा वर्षा आधारित एकल फसल (धान) पैदा करने के कारण यहाँ के लोगों को वर्ष भर भरपेट भोजन नहीं मिल पाता है।

अतः इस क्षेत्र के लोगों की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए कृषि के ऐसे तरीकों को अपनाने की आवश्यकता है जिसमें प्राकृतिक संसाधनों का भरपूर दोहन करके खाद्य एवं पोषण सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण फसलों की लाभकारी खेती की जा सकती है। इस क्रम में चूँकि यहाँ की जलवायु बागवानी फसलों (विशेष कर फलों) के लिए उपयुक्त है तथा ये फसलें व्यवसायिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं अतः बागवानी फसलों को प्रथम वरीयता दी गयी। बागवानी फसलों द्वारा टिकाऊ वायुमण्डलीय व्यवस्था के साथ–साथ प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग से पौष्टिक फल एवं सब्जी का

उत्पादन किया जा सकता है जो किसानों को आर्थिक दृष्टि से भी मजबूती प्रदान करता है। पठारी क्षेत्र औषधीय पौधों के भी भंडार माने जाते हैं अतः इनके अधिकाधिक उत्पादन में इस क्षेत्र के लोगों की आय बढ़ेगी एवं उनके जीवन स्तर में सुधार होगा तथा खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकेगी।

झारखंड राज्य की कुल खेती योग्य भूमि का लगभग 38 लाख हेक्टेयर उपरवार जमीन है जहाँ पर केवल खरीफ के मौसम में वर्षा आधारित कम उत्पादकता वाली फसलें जैसे–धान, मडुआ, कुल्थी, इत्यादि की खेती की जाती है। यह जमीन फलदार पौधों के लए अत्यन्त उपयुक्त है क्योंकि इनमें अपेक्षाकृत कम पानी की आवश्यकता होती है अतः यदि वर्षा जल का समुचित प्रबन्ध कर लिया जाए तो इन फसलों को अधिक सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

वर्षा जल प्रबन्ध कैसे करें?

वर्षा जल का उचित प्रबन्ध बहुआयमी प्रणाली द्वारा ही सम्भव है। इस दिशा में कुछ सफल उदाहरण भी सामने आये हैं। विशेषकर राज्य एवं कन्द्र सरकार द्वारा चलाई जा रही जल छाजन इकाईयाँ कुछ क्षेत्रों में कारगर साबित हो रही है। वर्षा जल के कारगर प्रबन्ध के लिए वर्षा जल संर्कीणन, जल संरक्षण एवं फल वृक्ष आधरित फसल पद्धति को अपनाना अधिक लाभकारी पाया गया है।

वर्षा जल संग्रहण

जल संग्रहण का तात्पर्य है कि ''वर्षा जल को इकट्ठा करना तथा आवश्यकतानुसार उनका प्रयोग करना''। यह क्रिया दो प्रकार से की जा सकती है :–

क) इन-सीटू जल संग्रहण : इस विधि में वर्षा जल को पौधों के जड़ों के पास या बागीचे में इकट्ठा करके उसे जमीन में सोख जाने देते हैं। इस प्रकार मिट्टी में संग्रहित जल पौधों की लम्बी तथा नीचे जाने वाली जड़ों द्वारा उपयोग में लाया जा सकता है। इन–सीटू जल संग्रहण के लिए फलदार पौधों के चारों तरफ क्षत्रक के नीचे बाहर से भीतर की ओर 5–10 प्रतिशत का ढाल दे देते हैं। पौधों के क्षत्रक के बाहरी किनारों पर गोलाई में 30 से.मी. चौड़ी और 30 से.मी. ऊँची मेढ़ी बना देने से वर्षा जल को पौधों के शोषक जड़ों के पास संग्रहित किया जा सकता है। पूरे बगीचे में जल संग्रहित करने के लिए खेत की ऊँची मेड़बन्दी करके उस खेत का पानी उसी खेत में रोक कर रख लेते हैं जिससे एक तो उपजाऊ मिट्टी को बहने से बचाया जा सकता है तथा दूसरा संग्रहित वर्षा जल से अच्छी फसल उगाई जा सकती है। बागीचे के खाली पड़े स्थान की गर्मी में जुताई करने, वर्षा जल से अच्छी फसल उगाई जा सकती है। बगीचे के खाली पड़े स्थान की गर्मी में जुताई करने, वर्षा ऋतु में हरी खाद की फसल लगाकर उसे 30–40 दिन बाद पलटकर मिट्टी में मिलाने तथा उचित मेड़बन्दी करके जल संग्रहित करने से झारखंड क्षेत्र की उपरवार जमीन में आम, लीची, आँवला, कटहल, अमरूद का अच्छा फल उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

ख) इक्सीटू जल संग्रहण : झारखंड राज्य में छोटे–छोटे पहाड़ हैं और जमीन की सतह ऊँची–नीची है। फलस्वरूप इन क्षेत्रों के वर्षाजल को घाटी या निचले स्थानों पर 'चेक डैम' या तालाब बना कर इकट्ठा करने को ''इक्सीटू जल संग्रहण'' कहा जाता है। इस पानी का उपयोग मुख्य रूप से अधिक मुनाफा देने वाली बेमौसमी सब्जियों, फूलों एवं औषधीय पौधों तथा पौधशाला में पौधे तैयार करने के लिए किया जाता है। यही नहीं तालाब में एकत्रित पानी में मछली पालन व बत्तख पालन के द्वारा लाभ कमाया जा सकता है। राँची जिले के ओरमांझी प्रखण्ड के टुन्डाहाली एवं रूक्का जलछाजन क्षेत्र इस विधि के उदाहरण है। यहाँ पर किसान संरक्षित जल के उपयोग से नगदी सब्जियों की बेमौसमी खेती करके 3–4 गुना ज्यादा मुनाफा कमाकर खुशहाल हैं।

वर्षा जल संरक्षण

जल संरक्षण का अर्थ है ''मृदा जल सुरक्षित रखकर उसके अधिकाधिक उपयोग से फसलोंत्पादन''। इक्सीटू विधि से संग्रहित जल को वाष्पीकृत होने से बचाने के लिए तालाब या चेक डैम यथासम्भव छायादार स्थान पर बनावें अथवा उसके चारों तरफ छायाकार पौधे लगायें जबकि इन–सीटू विधि से संग्रहित जल को संरक्षित रखने के लिए पौधे के क्षत्रक के नीचे पुआल या सूखी घास की 10–15 से.मी. मोटी पुलवार बिछायें। पुआल की पलवार बिछाने से खरपतवार का नियंत्रण होता है तथा एक वर्ष बाद यह सड़कर पौधे के नीचे की मिट्टी को उपजाऊ बना देता है। परीक्षणों से यह पता चला है कि लीची के 15–16 वर्ष पुराने पौधों के क्षत्रक के नीचे अक्टूबर माह में धान पुआल की 15 से.मी. पलवार बिछाने से फलों के आकार में वृद्धि हुई है तथा गुणवत्ता में सुधार हुआ है।

बहुस्तरीय फसल पद्धति अपनाना

झारखंड की लेटराइट मृदा में वर्षा जल के अधिकाधिक उपयोग के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केन्द्र, राँची ने फल वृक्षों पर आधरित तीन स्तरीय फसल प्रणाली का विकास किया है। ये फसलें खेत की मिट्टी के विभिनन स्तरों से समय–समय पर जल उपयोग करती है। इस प्रणाली में गहरे जड़ वाले फल वृक्षों (आम, लीची, आँवला, कटहल) को मुख्य फसल के रूप में शामिल किया है जो भूमिगत जल का उपयोग करते हैं। अन्तरशस्य के रूप में एक वर्षीय सब्जी, फूल एवं औषधीय पौधों को चुना गया है जो मिट्टी के ऊपरी सतह के जल का उपयोग करती हैं। मुख्य फसल को 10×10 मी० तथा पूरक फसल को 5×5 मी० की दूरी पर लगाया जाता है जबकि अन्तरशस्य फसलों का बीच की लगभग 50–50 प्रतिशत रिक्त जमीन में लगाया जाता है। फल वृक्ष आधरित बहुस्तरीय फसल प्रणाली की विस्तृत जानकारी निम्न सारणी में दी गयी है :

फल वृक्ष आधारित बहुस्तरीय फसल प्रणाली के मुख्य जानकारी

फसल एवं लगाने की दूरी		किस्म	पौधा लगाने/बुआई का समय
मुख्य फसल (10×10 मी॰)			
आम		हिमसागर, माल्दह	जून–जुलाई
लीची		शाही	जून–जुलाई
आँवला		नरेन्द्र आँवला–7	जून–जुलाई
पूरक फसल (5×5 मी॰)			
अमरूद		सरदार	जुलाई–अगस्त
शरीफा		बालानगर	जुलाई–अगस्त
नींबू		कागजी	जून–जुलाई
अन्तरसस्य			
फ्रेंचबीन	(0.4 × 0.1 मी॰)	HAPB-3	अगस्त–सितम्बर
लोबिया	(0.4 × 0.1 मी॰)	स्वर्ण मुकुट	जून–जुलाई
भिण्डी	(0.4 × 0.2 मी॰)	अर्का अनामिका	जून–जुलाई
गेंदा	(0.5 × 0.3 मी॰)	यलो ड्राप	जून–जुलाई
कुल्थी	(0.3 × 0.1 मी॰)	बिरसा कुल्थी–1	अगस्त–सितम्बर
गुन्दली	(0.2 × 0.05 मी॰)	बिसा गुन्दली–1	जून–जुलाई
जिमीकन्द	(0.9 × 0.9 मी॰)	गजेन्द्र	मई–जून
हल्दी	(0.4 × 0.2 मी॰)	सुदर्शना	मई–जून
अरदक	(0.4 × 0.2 मी॰)	सुप्रभा	मई–जून

जब तक पौधे छोटे रहते हैं तथा बगीचे में पर्याप्त धूप एवं रोशनी मिलती रहती है तब तक सामान्य सब्जी व फूलों की खेती की जाती है परन्तु जब बाग में अधिक छाया हो जाती है तब छाया में उगने वाली फसलों जैसे हल्दी, अदरक, जिमीकन्द की सफल खेती की जाती है। यह प्रणाली इस

क्षेत्र के उपरवार जमीन में काफी प्रचलित हो रही है। इस पद्धति में एक तरफ सामान्य खेती की अपेक्षा अधिक रोजगार की सम्भावना बनी है वहीं दूसरी तरफ धान की तुलना में 6 से 7 गुना अधिक लाभ प्राप्त होता है। निम्न सारणी में दिये गये गणना से स्पष्ट होता है कि जहाँ धान की वर्षा आधारित एक फसल लगाने से 18,500 रू/हे॰ का लाभ प्राप्त होता है वहीं आम+अमरूद+फ्रेंचबीन की खेती करने से 1,28,000 रू/हे॰ की आमदनी मिलती है।

वर्षा जल प्रबन्ध द्वारा बागवानी फसलों पर आधारित फसल पद्धति में लागत : आमदनी का ब्यौरा

फसल	कुल पैदावार (टन/हे.)	कुल लागत (रु./हे.)	कुल अमदनी (रु./हे.)	शुद्ध आय (रु./हे.)	लागत आमदनी
धान (एक फसल)	5-0	9000	27,500	18,500	1:2.1
आम (एक फसल)	9-0	30,000	108,000	78000	1:2.6
आम+अमरुद+ फ्रेंचबीन (फसल पद्धति)	9.0 + 0.0 + 5.0	30000 + 6000 +5000 = 41000	108,000 + 36000 + 25000 = 169000	78000 + 300004 20000 = 1,28,000	1:3.12

अतः झारखण्ड राज्य में यदि वर्षा जल का भरपूर दोहन करके फल वृक्षों की वैज्ञानिक खेती की जाय तो यहाँ के किसानों को खुशहाल बनाया जा सकता है।

फल वृक्ष आधारित बहुस्तरीय फसल प्रणाली

पूर्वी भारत के जन–जातीय बहुल वर्षाश्रित पठारी क्षेत्रों में कृषि योग्य टाँड़ भूमि प्रायः धान अथवा मोटे अनाजों की खेती हेतु प्रयोग में लाई जाती है। इन फसलों की उत्पादन क्षमता कम होने के साथ–साथ वर्ष की शेष अवधि में भूमि प्रायः खाली रहती है। झारखण्ड के परिपेक्ष्य में अगर देखा जाय तो यहाँ की खाद्यान्न आवश्यकता (लगभग 45 लाख टन) का मात्रा आधा ही राज्य में उत्पादित होता है तथा शेष अन्य राज्यों से आयात किया जाता है। राज्य में बढ़ती जनसंख्या के दबाव एवं उसके अनुरूप रोजगार सृजन न हो पाने के कारण वन सम्पदा का ह्रास भी तीव्र गति से हो रहा है। सरकार द्वारा इन क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर जलछाजन कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं, जिनके अन्तर्गत वर्षाजल को संचित कर कृषि में इसके उपयोग पर बल दिया जा रहा है।

जलछाजन क्षेत्रों में बागवानी की अपार संभावनाओं एवं इन फसलों की उत्पादन क्षमता को दृष्टिगत करते हुए यहाँ कार्यरत शोध संस्थानों ने फल आधारित कृषि प्रणाली का विकास करने का प्रयास किया है। इसके द्वारा पूर्ण विकसित एवं नए बागों के लिए अन्तरासस्यन प्रणालियाँ विकसित कर प्रति इकाई क्षेत्रफल उत्पादकता स्तर में सुधार पर बल दिया गया है जिसके फलस्वरूप मानकीकृत फल आधारित बहुस्तरीय फसल प्रणालियाँ विकसित की गयी है।

बहुस्तरीय फसल प्रणाली का मुख्य आधार प्राकृतिक संसाधनों का सघन उपयोग कर उत्पादकता बढ़ाना है। जिसमें बाग की प्रारम्भिक अवस्था में अपेक्षाकृत लम्बी विकास अवधि एवं बड़े आकार वाले फल पौधें जैसे– आम, लीची, कटहल, आँवला आदि के बीच की उपलब्ध भूमि में कम बढ़ने एवं अल्प विकास अवधि वाले पूरक फलों जैसे– अमरूद, शरीफा, आड़ू (सतालू) पपीता, नींबू वर्गीय फल आदि की रोपाई की जाती है। फल पौधों की रोपाई के उपरांत उपलब्ध शेष स्थान में वर्षाश्रित अथवा सिंचित मौसमी फसलें जैसे– सब्जियाँ, पुष्प, दलहन, तिलहन अथवा धान्य फसलें लगाई जा सकती है।

आधार फल पौधों का आकार बढ़ने पर पूरक फल पौधों को हटा दिया जाता है जिससे आधार वृक्षों का समुचित विकास होता रहता है। इस अवस्था में पेड़ों के बीच की खाली जमीन में अपेक्षाकृत कम प्रकाश में उगायी जा सकती है एवं भू–क्षरण की समस्या का काफी सीमा तक निदान किया जा सकता है। भूमि की उर्वरता एवं पर्यावरण सुरक्षा जैसी महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं के सुधार में भी इसके द्वारा योगदान सम्भव है।

लीची और आम के बाग में पौधों तथा लाईनों के बीच 10 मी॰ की दूरी रखने की आवश्यकता होती

है। प्रारम्भिक अवस्था में इनके बीच में अमरूद के पौधों की रोपाई की जा सकती है। इस प्रकार एक हेक्टेयर भूमि में 100 लीची अथवा आम तथा 300 अमरूद के पौधों की रोपाई की जाती है। शेष लगभग 70–80 प्रतिशत भूमि को अन्तरासस्यन हेतु प्रयोग किया जा सकता है।

लीची एवं अमरूद के नये बाग में वर्षाश्रित बोदी के अन्तरासस्यन से 25–30 क्वि. प्रति हेक्टेयर औसत पैदावार ली जा सकती है। प्रायोगिक प्रखण्ड में उपज एवं आय –व्यय का ब्यौरा जिससे सर्वाधिक रु॰ 10,990.00 प्रति हेक्टेयर प्राप्त हुआ है, निम्न तालिका में दिया गया है। आम+अमरूद के नए बाग में वर्षाश्रित बोदी का अन्तरासस्यन पैदावार एवं शुद्ध लाभ की दृष्टि से सबसे अच्छा माना गया है। इससे अधिकतम औसत पैदावार (36.30 क्वि. प्रति हेक्टेयर) तथा शुद्ध लाभ (रु॰ 14,610.00 प्रति हेक्टेयर) तक प्राप्त किया जा सकता है।

लीची+अमरूद एवं आम + अमरूद के नये बागों में वर्षाश्रित अन्तरासस्यन से प्राप्त पैदावार एवं शुद्ध लाभ (3 वर्ष का औसत)

अन्तर फसल	उपज क्विं./हे.	शुद्ध लाभ (रु॰/हे॰)	लाभ : लागत अनुपात (रु॰)
लीची + अमरूद			
बोदी	29.02	10,990	3.80:1
बैंगन	20.58	6,348	1.69:1
आम + अमरूद			
बोदी	36.30	14,610	4.67:1
बैगन	25.60	8,922	2.48:1

पूरक (अमरूद) पौधों से दूसरे/तीसरे वर्ष में फल मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं जिनके योगदान से प्रति इकाई क्षेत्रफल से अधिक आमदनी मिल सकती है।

जब पौधे पूर्ण विकसित हो जाते हैं तब उनमें छायादार स्थान पर पैदा होने वाली फसलों के उत्पादन को बढ़ावा दिया जाता है। प्रयोग से यह स्पष्ट हुआ है कि आम के पूर्ण विकसित बाग में हल्दी का अन्तरासस्य उत्पादकता एवं शुद्ध लाभ के दृष्टिकोण से सर्वोत्तम पाया गया है। बाग की कुल उत्पादकता के आधार पर इससे रु॰ 61,010/– का कुल शुद्ध लाभ प्राप्त हुआ।

आम के पूर्ण विकसित बाग में अन्तरासस्यन से प्राप्त उपज एवं शुद्ध लाभ (2 वर्ष का औसत)

अन्तरफसल	उपज (क्विं०/हे०)		शुद्ध लाभ (रु०/हे०)		लाभ : लागत अनुपात	
उरद्	01.64	40.00	1,230	35,250	36,480	6.36:1
बोदी	12.77	46.00	2,860	41,250	44,110	6.34:1
फ्रेंचबीन	10.76	51.00	1,956	46,250	48,110	6.21:1
धान	01.14	45.00	1,430	40,250	38,820	6.75:1
हल्दी	74.72	47.60	18,160	42.850	61,010	3.50:1

बहुस्तरीय फसल प्रणाली की तकनीक

आधार एवं पूरक फलों की उन्नत किस्में :

आम, लीची एवं अमरूद की उन्नत किस्में तथा परिपक्वता समय का विवरण निम्न तालिका में दिया गया है।

आधार एवं पूरक फलों की उन्नत किस्में एवं परिपक्वता समय

फसल	परिपक्वता समय	उन्नत किस्में
आम		
अगेती	20 – 30 मई	बाम्बे ग्रीन, रानी पंसद, जर्दा, जरदालू
मध्य अगेती	30 मई – 10 जून	हिमसागर, गोपाल भोग, किशन भोग
मध्य	10–30 जून	लंगड़ा, दशहरी, सफेद माल्दह, प्रभाशंकर
मध्य पछेती	20 जून 5 जुलाई	महमूद बहार, मल्लिका
पिछेती	25 जून – 20 जुलाई	आम्रपाली, सीपिया, चौसा, फजली
लीची		
अगेती	10–22 मई	शाही, अझौली, ग्रीन
मध्यम	20–25 मई	रोज सेंटेड, अर्ली बेदाना
मध्य अगेती	25 मई – 10 जून	स्वर्ण रूपा, चाइना, लेट बेदाना

फसल	परिपक्वता समय	उन्नत किस्में
पिछेती	5 – 15 जून	पूर्वी, कस्बा
अमरूद	––	सरदार, इलाहाबाद सफेद, अर्का मृदुला

आम के लिए अप्रैल–मई में 90 × 90 × 90 सें.मी. एवं अमरूद के लिए 60 × 60 × 60 सें.मी. आकार के गड्ढ़े खोदकर छोड़ देने चाहिए। गड्ढ़ों को 15–20 दिन खुला छोड़ने के बाद 2–3 टोकरी गोबर की खाद (25–30 कि.ग्रा.), 2 कि.ग्रा. करंज/नीम की खली, 1 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट एवं 15–20 ग्रा. फ्यूराडॉन–3 जी प्रति गड्ढ़े की दर से सतह की ऊपरी मिट्टी में मिला कर भर देना चाहिए। एक दो बारिश होने के बाद जब गड्ढ़े की मिट्टी दब जाए तब पौधों की रोपाई की जा सकती है। पौध रोपाई के बाद पौधों की समुचित देख–रेख करने के साथ–साथ अन्तरसस्य की फसल लेने से अच्छी आमदनी कमाई जा सकती है। बहुस्तरीय फसल प्रणाली से झारखण्ड ही नहीं बल्कि कोरापुट (उड़ीसा), अम्बिकापुर, छत्तीसगढ़ एवं जबलपुर (मध्यप्रदेश) में भी उत्साहवर्धक लाभ मिला है जहाँ पर लीची+अमरूद तथा आम+अमरूद के नए बगीचों में बोदी, उरद तथा अरहर की वर्षाश्रित खेती ज्यादा लाभप्रद रही।

अतः झारखण्ड राज्य में आम, लीची तथा कटहल के नये बगीचों एवं पुराने बागों की उपलब्ध लगभग (20,000 हेक्टेयर) भूमि को बहुस्तरीय फसल प्रणाली के अन्तर्गत लाया जाय तो इससे अधिक लाभ कमाया जा सकता है।

फल वृक्षों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के लक्षण एवं निदान

झारखण्ड राज्य की मिट्टी में अनेक सूक्ष्म तत्त्वों की कमी पायी गयी है जिसके कारण फलोत्पादन एवं गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव दिखाई पड़ते हैं। प्रमुख फलों में सूक्ष्म तत्त्वों की कमी के लक्षण को पहचान कर निदान करने से अच्छी उपज मिल सकती है।

आम

आम के पौधों में जस्ता, ताँबा, मैगनीज इत्यादि की कमी से उपज प्रभावित होती है जिसका लक्षण एवं निदान इस प्रकार है :–

1. **जस्ता :** इसकी कमी के लक्षण कम आयु की मुलायम तथा छोटी पत्तियों पर दिखाई देते हैं। प्रभावित पत्तियाँ मोटी व असामान्य हो जाती हैं। जैसे–जैसे पत्तियाँ बड़ी होती हैं उनके किनारे लहरदार होकर मुड़ जाते हैं तथा अग्र भाग झुक जाता है। उग्रता की दशा में शिरायें पीली होकर स्पष्ट दिखाई देती हैं। शिराओं के बीच का भाग या तो हरा रहता है अथवा उसमें धब्बे बन जाते हैं। ऐसी पत्तियों का आकार साधारण पत्ती का लगभग आधा होता है और विकृत पत्ती दबाने से जल्द टूट जाती है। प्रभावित टहनियाँ मर जाती हैं। नये पौधों में इसकी कमी से बढ़वार प्रभावित होती है तथा पौधे बौने हो जाते हैं। फूल के गुच्छों के सहित जो पत्तियाँ निकलती हैं वे बहुत छोटी तथा असामान्य आकार की होती है और प्रायः इनमें पुष्पक्रम विकृत हो जाते हैं।

   इस विकार को दूर करने के लिए प्रभावित पेड़ के क्षत्रक के नीचे 100–150 ग्रा. जिंक सल्फेट का प्रयोग वर्षा प्रारंभ होने पर तथा अन्य खाद एवं उर्वरकों के साथ मिला कर करना चाहिए। कम प्रभावित पौधों पर जिंक सल्फेट के 0.5 प्रतिशत (5 ग्रा./ली.) घोल का छिड़काव 15 दिन के अन्तर पर 2 से 3 बार करें।

2. **ताँबा :** इस तत्व की कमी के लक्षण आम के पुराने पौधों की अपेक्षा छोटे पौधों पर शीघ्र दिखाई देते हैं। भूमि में इसकी उपलब्धता कम होने पर शीर्ष पर निकलने वाली टहनियाँ झुकी हुई कमजोर दिखाई देती हैं और आगे चल कर सूख जाती हैं जिसके कारण पैदावार में कमी जाती है।

   इस तत्व की पूर्ति के लिए कॉपर सल्फेट (तूतिया) या ताम्रयुक्त फफूँद नाशक दवा जैसे–कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का 0.2 प्रतिशत (2 ग्रा./ली.) की दर से घोल बनाकर पौधों पर 2 से 3 बार 15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करना चाहिए।

3. **मैगनीज :** इस तत्व की कमी से पौधों की वृद्धि में कमी आती है। कमी के लक्षण मुलायम किन्तु पूर्ण विकसित पत्तियों पर परिलक्षित होते हैं। इन पत्तियों का रंग हरा–पीला हो

जाता है जिन पर हरी शिराओं की एक महीन जालीनुमा आकृति दिखाई देती है। ये लक्षण अधिकतर ऊपरी सतह पर ही दिखाई देते हैं। पुरानी पत्तियाँ अपेक्षाकृत मोटी हो जाती हैं तथा इनका अग्रभाग गोलाकार हो जाता है। इसके उपचार के लिए मैंगनीज सल्फेट के 0.2 प्रतिशत (2 ग्रा./ली.) घोल का 2 से 3 बार 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करना उचित होगा।

लीची :

लीची के पौधों पर जस्ता, बोरान एवं मैगनीज तत्त्वों का प्रभाव अधिक देखा गया है। इसकी कमी से अनेक विकार दिखाई दते हैं जिनका पहचान करके उचित समय पर निदान फलोत्पादन बढ़ाने में लाभदायक होता है।

1. **जस्ता :** इस तत्व की कमी से पत्तियाँ कांसे के रंग सदृश दिखाई देती हैं। शिराओं के मध्य में पत्ती पीली होने लगती है जबकि शिरायें हरी रहती हैं। टहनी में गाठों के बीच की दूरी अधिक हो जाती है। इस तत्व की तीव्र कमी होने पर फूल झड़ने लगते हैं, फलों का आकार छोटा हो जाता है जिसके फलस्वरूप पैदावार पर प्रतिकूल असर होता है। फलों में शर्करा की मात्रा घटने के परिणामस्वरूप गुणवत्ता का ह्रास होता है। इस विकार के प्रबंधन के लिए पौधों पर जिंक सल्फेट के 0.5 प्रतिशत (5 ग्रा./ली.) घोल का छिड़काव 15 दिन के अन्तर पर तीन बार करना चाहिए।

2. **लोहा :** लोहे की कमी की दशा में पहले नवजात पत्तियों में असामान्य रूप से हरिमाहीनता (हरे रंग की कमी) दिखाई देती है, जो आगे चल कर पुरानी पत्तियों में भी दिखाई देने लगती हैं और पौधों की बढ़वार रूक जाती है। इस तत्व की पूर्ति के लिए लोहे के किलेट का प्रयोग किया जा सकता है अथवा 0.4 से 0.8 प्रतिशत (4 से 8 ग्रा./ली.) फेरस सल्फेट के घोल का 2 से 3 बार छिड़काव करना लाभप्रद होता है।

3. **बोरॉन :** इस तत्व की कमी से पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है और वे सूखने लगती हैं। पत्तियों के वृन्त मोटे हो जाते हैं फल गिरने लगते हैं और पैदावार कम हो जाती है। बोरॉन की कमी के निदान हेतु बोरिक अम्ल का 3 से 4 ग्रा. प्रति लीटर की दर से पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

4. **ताँबा :** लीची में ताँबे की कमी के लक्षण सर्वप्रथम पत्तियों पर दिखाई देते हैं। इसकी कमी से पत्तियों में शिराओं के मध्य का भाग पीला हो जाता है और वे सामान्य आकार से छोटी हो जाती हैं। पौधों के नवजात शीर्ष भाग सूखने लगते हैं जिससे बढ़वार पर प्रतिकूल असर होता है तथा पैदावार घट जाती है। ताँबे की कमी के निदान के लिए 0.2 प्रतिशत (2 ग्रा./ली.) कॉपर सल्फेट का घोल बनाकर चूने से उदासीन कर लें। इस घोल का 15 दिन के अन्तर पर 2 से 3 तीन बार प्रयोग करना लाभदायक रहता है।

5. **मैंगनीज :** इस तत्व की कमी से लीची की पत्तियों में शिराओं के मध्य का भाग पीला पड़ने लगता है एवं पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है जिससे वे असामान्य दिखाई देती हैं। इसके उपचार

के लिए मैंगनीज सल्फेट के 0.2 प्रतिशत (2 ग्रा./ली.) घोल का 15 दिन के अन्तराल पर दो बार छिड़काव करना उचित होगा।

केला :

केले के पौधों पर सूक्ष्म तत्वों की कमी से होने वाले प्रभाव एवं उनकी पहचान तथा निदान इस प्रकार है :–

1. **जस्ता :** जस्ते की कमी से पत्तियों की शिराओं के समानान्तर पीली धारियाँ बनती हैं। जो बाद में अधिक चौड़ी एवं सफेद हो जाती हैं। ये पट्टियों के हरे भाग के समानान्तर रहती है। नवजात पत्तियों पर जस्ते की कमी के लक्षण तीव्र होते है। इस दशा में पूरी पत्ती पीली पड़ जाती है। प्रभावित पौधों की पत्तियाँ छोटी तथा नुकीली हो जाती हैं और इनकी निचली सतह में सफेद धब्बे दिखाई देते हैं। पत्तियों की मध्य शिराओं पर बैंगनी– लाल रंग के गोलाकार धब्बे दिखाई देते हैं। जस्ते की कमी के कारण पुष्प–विभेदन क्रिया एवं पैदावार पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इस तत्व की पूर्ति के लिए 20 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से जिंक सल्फेट, अन्य खाद एवं उर्वरकों के साथ मिलाकर प्रयोग करें। शीघ्र लाभ के लिये पौधों पर 0.5 प्रतिशत (5 ग्रा./ली.) जिंक सल्फेट घोल का छिड़काव 15 दिन के अन्तर पर 2 से 3 बार करना चाहिए।

2. **बोरॉन :** इसकी कमी के कारण अत्याधिक विकृति आने पर नयी पत्तियाँ आकार में अत्यन्त छोटी हो जाती हैं और कभी–कभी इनकी केवल मुख्य शिरा ही दिखाई देती है। पत्तियों का आकार असामान्य हो जाता है, इनके किनारे लहरदार हो जाते हैं। पत्तियाँ झड़ने लगती हैं। मुख्य शिरा के साथ नीचे की ओर शिराओं के बीच पीला समकोण आकृति का धब्बा दिखाई देता है। यह बदरंग धब्बा कई छोटे धब्बों के एक साथ मिलने के कारण बनता है। अधिक कमी की दशा में पौधे की सभी प्रकार की वृद्धि रूक जाती हैं। इसकी कमी के लक्षण पौधों में गंधक की न्यूनता के लक्षणों से बहुत मिलते जुलते हैं। इस विकार के प्रबंधन के लिए 8 से 10 कि.ग्रा. बोरेक्स प्रति हेक्टेयर का उपयोग, अन्य खाद एवं उर्वरकों के साथ मिलकर करना चाहिए। त्वरित लाभ के लिए 1 से 2 ग्रा. बोरिक अम्ल प्रति लीटर की दर से पानी में घोल कर पर्णीय छिड़काव करना अच्छा रहता है।

3. **मैंगनीज :** इस सूक्ष्म तत्व की कमी से क्रमशः दूसरे, तीसरे और चौथे स्तर की नयी से पुरानी पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। तत्पश्चात् बहुत तेजी से नई एवं पुरानी पत्तियाँ विकारग्रस्त होने लगती हैं। कमी के लक्षण पहले किनारों पर दिखाई देते हैं जो मध्य शिरा की ओर तेजी से बढ़ते हैं। दो शिराओं के बीच के भाग अधिक समय तक हरे रहते हैं। जिससे कि पत्ती पर कंघी के दातों जैसे आकार दिखाई देते हैं। आगे चलकर पूरी पत्ती गंदा–पीलापन लिए हरी हो जाती है। इस अवस्था में पौधों पर रोग का आक्रमण हो सकता है। मैंगनीज की अधिक कमी की अवस्था में पैदावार में काफी कमी आती है। इस तत्त्व की पूर्ति के लिए मैंगनीज सल्फेट के 0.2 प्रतिशत (2 ग्रा./ली.) घोल का 15 दिन के अन्तराल पर 2 बार छिड़काव करना लाभकारी रहता है।

नींबू

नींबू वर्गीय फलों में सूक्ष्म तत्वों का अत्यधिक महत्व है। इसकी कमी से उपज प्रभावित होने के साथ पौधे सूखने भी लगते हैं। इन फसलों में सूक्ष्म तत्वों की कमी तथा उनके उपचार का विवरण इस प्रकार है :–

1. **ताँबा :** ताँबे की न्यूनता से पीड़ित वृक्षों की पत्तियाँ गहरी हरी दिखाई देती हैं। साथ ही अधिकतर पत्तियाँ मुड़ जाती है। ये पत्तियाँ असामान्य रूप से बढ़े हुए प्ररोह पर पायी जाती हैं तथा इनपर अंग्रेजी के अक्षर 'एस' के आकार की झांईयाँ दिखती हैं। अधिक प्रभावित होने पर शिराओं के बीच का भाग पीला हो जाता है। छाल तथा तने से गोंदनुमा चिपचिपा स्राव निकलने लगता है। इस विकार के प्रबंधन के लिए 0.4 प्रतिशत (4 ग्रा./ली.) कॉपर सल्फेट (तूतिया) का घोल चूना से उदासीन करने 15 दिन के अनतर पर दो तीन बार प्रयोग करना चाहिए। तूतिया की जगह 0.2 प्रतिशत (2 ग्रा./ली.) कॉपर आक्सिक्लोराइड का प्रयोग भी किया जा सकता है।

2. **लोहा :** लोहा की कमी होने पर प्रारम्भिक अवस्था में पत्तियाँ हल्की पीली हो जाती हैं जो उग्र अवस्था में गहरी पीली दिखाई देती हैं। इन पत्तियों में शिराओं का जाल हरा रहता है। इसके उपचार के लिए लोहे की किलेट का प्रयोग करें अथवा 0.4 से 0.8 प्रतिशत (4 से 8 ग्रा./ली.) फेरस सल्फेट के घोल का 2 से 3 बार छिड़काव करके भी पीलिया दूर किया जा सकता है।

3. **बोरॉन :** बोरॉन की कमी के लक्षण सर्वप्रथम पत्तियों पर प्रकट होते हैं। प्रभावित पौधों की पत्तियाँ हल्के भूरे रंग की होती हैं और मुड़ जाती है। पत्तियों में शिराएँ पीली एवं कॉर्क के सामान हो जाती है। पौधा कमजोर हो जाता है और उसमें सूखे के प्रति सहनशीलता कम हो जाती है तथा नमी की कमी की अवस्था में भी वह शीघ्र सूख जाता है। फल के छिलके के सफेद भाग में भूरे या काले धब्बे दिखाई देते हैं तथा वे रूखे हो जाते हैं। इस समस्या के निदान के लिए बोरिक अम्ल अथवा बोरेक्स का 0.1 प्रतिशत (1 ग्रा./ली.) की दर से छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त 8 से 10 कि.ग्रा. बोरेक्स प्रति हेक्टेयर की दर से मिट्टी में मिलाना भी लाभदायक पाया गया है।

4. **मैंगनीज :** इस तत्व की कमी की अवस्था में पाये जानेवाले पीले धब्बे जस्ते की कमी की भांति पूरी तरह पत्ती में नहीं फैलते तथा पत्तियों का आकार ज्यादा छोटा नहीं होता। प्ररोह निकलते समय ये लक्षण अपेक्षाकृत कम उग्र होते हैं परन्तु पत्तियाँ बढ़ने पर मुड़ने लगती हैं और धब्बे गहरे लगते हैं। वृक्ष के छाया वाले भाग में लक्षण अधिक स्पष्ट होते हैं। इसके उपचार के लिए 0.4 से 0.6 प्रतिशत (4 से 6 ग्रा./ली.) मैंगनीज सल्फेट के घोल का 2 से 3 बार छिड़काव किया जा सकता है।

5. **जस्ता :** नींबू प्रजाति के फल वृक्षों में जस्ते की कमी के लक्षण केवल नई वृद्धिपर प्रकट होते हैं। इसकी कमी के कारण पत्तियाँ पीली हो जाती है। कम न्यूनता होने की दशा में पत्तियों तथा टहनियों का आकार अपेक्षाकृत कम घटता है परन्तु अधिक कमी होने पर पत्तियाँ बिल्कुल छोटी तथा टहनी की बढ़वार अत्यधिक कम हो जाती है। पत्तियाँ गुच्छे के रूप में लगी हुई दिखाई देती हैं। पौधे का धूप की ओर के भाग की अपेक्षा अधिक प्रभावित होता है। इस विकार के

प्रबंधन के लिए 0.4 से 0.6 प्रतिशत (4 से 6 ग्रा./ली.) जिंक सल्फेट के घोल का छिड़काव करना लाभप्रद पाया गया है। जस्ते की अधिक कमी वाले क्षेत्रों में वर्ष में दो से तीन बार छिड़काव की आवश्यकता पड़ती है।

अनन्नास

अनन्नास के फलों के भरपूर उत्पादन एवं गुणवत्ता के लिए सूक्ष्म पोषक तत्त्व अत्यन्त ही उपयोगी होते हैं। अनन्नास के पौधों पर सूक्ष्म पोषक तत्व अत्यन्त ही उपयोगी होती हैं। अनन्नास के पौधों पर सूक्ष्म तत्वों के कमी के लक्षण एवं उसके उपचार की जानकारी निम्नलिखित है :–

1. **मैंगनीज :** इस तत्व की कमी से अनन्नास के पौधे हल्के पीले दिखाई देते हैं तथा पत्तियों की बढ़वार रूक जाती है और पौधों का पूर्ण विकास नहीं होता। फलों की वृद्धि पर भी मैंगनीज की कमी का कुप्रभाव पड़ता है। मैंगनीज की कमी से पौधों की संवर्धन क्रिया (सकर एवं स्लिप पैदा करना) भी प्रभावित होती हैं इसकी पूर्ति के लिए 0.4 प्रतिशत (4 ग्रा./ली.) मैंगनीज सल्फेट का 15 दिन के अंतर पर दो से तीन बाद छिड़काव करना चाहिए।
2. **बोरॉन :** बोरॉन की कमी से पौधों की फलोत्पादन क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है एवं फल का वजन एवं आकार दोनों में ही असामान्य रूप से कम हो जाते हैं तथा फल फट जाते हैं। पौधों में सकर उत्पादन में कमी आती है। मुख्य जड़ें भूरी हो जाती हैं तथा सिरों पर सड़ जाती हैं। इसकी कमी के कारण पौधों में पोषक जड़ें कम बनती हैं। इसके निदान के लिए 8 से 10 कि.ग्रा. बोरेक्स प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि में प्रयोग करना चाहिए अथवा फसल पर 0.3 से 0.5 प्रतिशत (3 से 5 ग्रा./ली.) बोरेक्स का छिड़काव 2 से 3 बार करना चाहिए।
3. **ताँबा एवं जस्ता :** अनन्नास पर इन दोनों तत्वों की कमी के लक्षण लगभग एक समान दिखाई देते हैं। सबसे पहले मध्य क्रम की पत्तियाँ मुड़ने लगती हैं। जिन पत्तियों का बाद में विकास होता है वे विशेष रूप से पहले हल्के हरे से पीले रंग की हो जाती हैं और इन पर मोम जैसी एक मोटी परत बन जाती है। ताँबे एवं जस्ते की अत्यन्त कमी होने से पौधों के बीच में पत्तियों का गुच्छा बन जाता है और वे झुक जाती हैं। इनकी पूर्ति के लिए 0.4 प्रतिशत (4 ग्रा./ली.) कॉपर सल्फेट का घोल तथा 0.5 प्रतिशत (5 ग्रात्र/ली.) जिंक सल्फेट का घोल 2 से 3 बार फसल का छिड़कें।
4. **लोहा :** लोहे के कमी के कारण पत्तियों में हल्के हरे रंग के साथ–साथ कुछ लालिमा आ जाती है। प्रायः लोहे की कमी के लक्षण नए पत्तों पर दिखना प्रारम्भ होते हैं। फल अपरिपक्व अवस्था में पकने लगते हैं। जिन क्षेत्रों में मिट्टी का पी–एच मान 8 से अधिक होता है वहाँ सामान्यतः लोहे की कमी देखी जाती है। इसकी पूर्ति के लिए लोहे के किलेट का प्रयोग करना चाहिए। इसके अतिरिक्त 0.4 से 0.8 प्रतिशत (4 से 8 ग्रा./ली.) फेरस सल्फेट के 2 से 3 छिड़काव से भी पीलापन दूर किया जा सकता है।

फलोत्पादन में समेकित कीट प्रबंध

फलों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में विभिन्न कीटों द्वारा होनेवाली क्षति के नियंत्रण हेतु किसानों द्वारा मुख्य रूप से जहरीले रसायनों का अत्यधिक व अविवेकपूर्ण ढंग से प्रयोग किया जा रहा है, जिससे कई प्रकार की समस्याओं में गौण कीटों का प्रमुख नाशक कीटों में परिवर्त्तन, कीटों में कीटनाशकों की बढ़ती प्रतिरोधकता, प्राकृतिक शत्रु (परजीवी/परभक्षी) कीटों व परागन करने वाले कीटों पर प्रतिकूल प्रभाव, पर्यावरण एवं खाद्य श्रृंखला में प्रदूषण तथा फलों में कीटनाशकों के अवशेष निश्चित मात्रा से अधिक होना इत्यादि प्रमुख है। कीटनाशकों द्वारा फलों के दूषित होने की सम्भावना अपेक्षाकृत अधिक होती है, क्योंकि इन्हें तुड़ाई के तुरंत बाद उपयोग में लाया जाता है। कीटनाशकों के अत्यधिक व अविवेकपूर्ण प्रयोग करने से मित्र कीटों जैसे मधुमक्खियाँ, सारकोफेगा, रिफिया, ल्यूसीलिया, एरिस्टेलिस, सिर्फस फ्लाई, काक्सीनेलिड बीट्लि, मक्खियों इत्यादि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। परिणामतः फलों के परागण में विघ्न उत्पन्न होने से फलों का उत्पादन कम होता है।

देश में किये गये सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ है कि बहुत से किसानों को कीटों की सही पहचान, उनके नुकसान करने के तरीके व समय तथा उपलब्ध प्रबंधन तकनीकों का समुचित ज्ञान नहीं है। परिणामस्वरूप कीटनाशकों का प्रयोग करने से कीट नियंत्रण में अपेक्षित सफलता नहीं मिलती है। अतः कीट नियंत्रण हेतु एक ऐसा सुनियोजित प्रबंधन कार्यक्रम (समेकित कीट प्रबंधन) अपनाने की आवश्यकता है जो पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित तथा क्षति को नियंत्रित करने में सक्षम हो।

समेकित कीट प्रबंधन

समेकित कीट प्रबंधन, फल उत्पादन एवं फल सुरक्षा की मिली–जुली पद्धति है, जिसका मूल सिद्धांत उन्नत कृषि क्रियाओं को अपनाना एवं कीट नियंत्रण के जैविक और रासायनिक विधियों के बीच समन्वय स्थापित करना है। इन विधियों के साथ–साथ कीट नियंत्रण की अन्य वैकल्पिक तरीकों को सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरण की दृष्टि से उचित हो तथा कीटों की संख्या को एक निर्धारित आर्थिक क्षति स्तर से नीचे रखने में मददगार हो, का समावेश ही समेकित/समन्वित या एकीकृत कीट प्रबंधन कहलाता है।

समेकित कीट प्रबंधन के अंतर्गत उद्यान स्थापित करते समय स्थान के चुनाव, गड्ढ़े की खुदाई तथा प्रजातियों के चयन से लेकर फलों की तुड़ाई तक उन सभी पद्धतियों/तकनीकों का प्रयोग इस प्रकार व्यवस्थित ढंग से किया जाता है, जिससे कीटों द्वारा फलों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में होने वाली क्षति को नियंत्रित किया जा सके। उद्यानों में समेकित प्रबंधन हेतु निम्नलिखित घटकों का प्रयोग किया जाता है :–

शस्य क्रियायें

कृषिगत क्रियायें, समेकित कीट प्रबंधन में एक महत्वपूर्ण धटक है, जिसका सुनियोजित ढंग से पालन

करेन पर कीटों की वृद्धि, विकास और जीवन–चक्र पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। परिणामस्वरूप फसल में कीटों का प्रकोप कम होता है। उद्यान में विभिन्न शस्य क्रियाओं के प्रयोग से होने वाले लाभ का किसान समुदाय को समुचित ज्ञान नहीं है। यही कारण है कि समेकित कीट प्रबंधन का महत्वपूर्ण घटक होते हुए भी कृषिगत क्रिया उपेक्षित है, जिसे प्रोत्साहित कर फलों में कीटनाशकों के प्रयोग को कम किया जा सकता है। फल उद्यानों को क्षति पुहँचाने वाले कीटों का प्रकोप कम करने में निम्नलिखित शस्य क्रिया प्रभावी सिद्ध हुई है :

1. पौधा लगाते समय कीट अवशेष रहित पौधों का ही प्रयोग करें।
2. उद्यान स्थापित करते समय सही स्थान, भूमि तथा उच्च कोटि की पौध सामग्री (पौध सामग्री पंजीकृत नर्सरी से प्राप्त करें) का चुनाव एवं उचित दूरी पर रोपण करें। आम, लीची, नीबू, बेल, बेर, शरीफा एवं आँवला के लिए अप्रैल–मई तथा आडू एवं नाशपाती जैसे फल पौधें के रोपण हेतु अक्टूबर–नवम्बर माह में गड्ढ़ों की खुदाई करें तथा क्रमशः जून–जुलाई एवं दिसम्बर–जनवरी माह में गड्ढ़ों को भरने से पूर्व उसमें सूखी पत्ती या घास जलाकर गड्ढ़ों को उपचारित कर लें। तत्पश्चात् गड्ढ़ों को भर कर पौधों का रोपण करें।
3. नर्सरी की स्थापना के समय सही स्थान का चुनाव करें एवं उसे बदलते रहें और वनस्पतिक प्रसारण हेतु उपयुक्त एवं रोग कीट रहित मूलवृन्तों का प्रयोग करें।
4. जब पौधे सुसुप्त अवस्था में रहें तब उनकी कटाई–छंटाई अवश्य करें। कटाई–छंटाई करते समय सूखी, कीटग्रस्त, घनी एवं एक–दूसरे से टकराने वाली टहनियों को काट दें तथा कटे हुए भाग पर चौबटिंया पेस्ट अथवा ब्लू कापर का लेप करें। कटाई–छंटाई से पौधों में वनस्पतिक वृद्धि अच्छी होने के साथ–साथ फल लगने वाली शाखाएँ भी नियमित बनी रहती है तथा पौधों में प्रकाश का संचार भी सुचारू रूप से होता है, जिसके फलस्वरूप फलों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में वृद्धि होती है।
5. उद्यान की सफाई, पौधों के थालों की समय पर निराई–गुड़ाई, ग्रसित एवं गिरे हुए फलों को उद्यान से अलग करना, कीटों को आश्रय देने वाले पेड़ की ढीली छाल की सफाई, उद्यान से परपोषी पौधों का निष्कासन करें तथा उचित समय पर पौधों की सिंचाई तथा संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करें।
6. फरवरी–मार्च में पेड़ों के थालों में चारों तरफ 2–3 इंच मोटी सड़ी गोबर की खाद अथवा 6–6 इंच मोटी सूखी पत्ती / घास फैला दें, जिससे गर्मी में नमी सुरक्षित रह सके। जून में थालों में हल्की गुड़ाई करके खाद / पत्ती / घास को मिला दें तथा गुड़ाई के समय मिलने वाले कीटों / सूंडियों को एकत्र कर नष्ट कर दें। फरवरी से अप्रैल के मध्य जब फल वृक्षों में फूल खिल रहे हों, उस समय मधुमक्खियों के 15–20 बक्से प्रति हेक्टेयर में अवश्य रखें। इससे परागण अच्छा होता है तथा फल भी अधिक बनते हैं। फूल खिलने की अवस्था में किसी भी कीटनाशक का प्रयेग न करें अन्यथा परागण प्रक्रियाँ पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

यांत्रिक क्रियायें

आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण कीटों के प्रकोप को यांत्रिक विधियों द्वारा कम किया जा सकता है :–

1. आम, अमरूद, आँवला और कटहल के वृक्षों में तना वेधक कीटों की सूड़ी सुरंग बनाकर रहती है। इसको नुकीले मोटे तार की मदद से छेदकर नष्ट किया जा सकता है। कोई पेट्रोलियम पदार्थ छेद में भर दें ताकि कीट अन्दर में ही मर जाय या छिद्रों को साफ करके उसमें नुवान का घोल छिद्रों में भर कर उन्हें मिट्टी से लेप दें ताकि लार्वा अन्दर ही अन्दर मर जाय।

2. आम के बगीचों में नुकीले गांठ बनाने वाले कीट (शूट गॉल) का बहुत अधिक प्रकोप होता है। यदि आम की प्रभावित शाखाओं को नवम्बर माह में तोड़कर नष्ट कर दिया जाय तो इस कीट के प्रकोप में कमी आ सकती हैं।

3. व्हाइट ग्रव (कुरमुला कीट) के बीटिल जून में प्रथम वर्षा के बाद जमीन से निकलते हैं और अगस्त तक विभिन्न फल वृक्षों की पत्तियों एवं फलों को खाकर क्षति पहुँचाते हैं। रात्रि में यह कीट प्रकाश की ओर बहुत आकर्षित होता है। इसलिए बगीचों में पेट्रोमैक्स को रात्रि में जलाकर चौड़े बर्तन में, जिसमें मिट्टी का तेल सहित पानी मिला हो, रख दिया जाय तो इसकी रोशनी से बीटिल आकर्षित होते हैं और बर्तन में गिरकर मर जाते हैं।

4. स्केल कीट/मिली वग से प्रभावित अमरूद के पौधों की टहनियाँ को काटकर जला देना चाहिए। कीटों से ग्रसित गिरे हुए अमरूद के फलों को एकत्रित करके नष्ट कर देने पर अनार बटरफ्लाई एवं फलमक्खी के प्रकोप से निजात मिल जाती है।

5. आम का दहिया कीट पेड़ के जड़ों के पास जमीन में अण्डे देती है। शिशु निकलने के बाद नवम्बर–दिसम्बर माह में पेड़ पर चढ़ते हैं इन्हें वृक्षों पर चढ़ने से रोकने के लिए 20 से.मी. चौड़ी अल्काथीन (800 गेज मोटी) की पट्टी 30 से.मी. जमीन से ऊपर तने के चारों ओर लपेट दी जाय तथा दोनों किनारों को कीचड़ के सहारे तना से सटा दिया जाय। ऐसा करने से ये कीट चिकनी सतह पर नहीं चढ़ पाते हैं तथा पौधे इनके आक्रमण से मुक्त रह जाते हैं।

6. आम में फल मक्खी का आक्रमण होने पर एक चौड़े मुँह की बोतल लें तथा उसमें मिथाइल यूजीनोल फल मक्खी ट्रैप को प्रति एकड़ चार ट्रैप के हिसाब से लगा दें। इससे नर फल मक्खी मर जाते हैं और उनका वंश विस्तार नहीं हो पाता है।

7. लीची माइट से प्रभावित टहनियों को काट कर जला देना चाहिए ताकि कीट नष्ट हो जाय।

8. लेमन वटर फ्लाई के लार्वा को हाथ से पकड़कर मार देना चाहिए।

जैविक नियंत्रण

जैविक नियंत्रण, समेकित कीट प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण घटक है, जिसका सफलतापूर्वक प्रयोग कीटों के प्रबंधन में प्रभावी, संतुलित एवं स्थाई सिद्ध हुआ है। इसके प्रयोग से पारिस्थितिक तंत्र के दूसरे तत्वों को हानि नहीं पहुँचती है। जैविक नियंत्रण में हानिकारक कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं जैसे परजीवी, परभक्षी और रोगाणुओं को खोजकर इकट्ठा कर तथा प्रयोगशाला में अधिक संख्या में उत्पादन कर, कीटों के विरूद्ध उचित समय पर छोड़ा जाता है, जो हानिकारक कीटों के अण्डों, सूंडियों तथा प्रौढ़ों को नष्ट कर देते हैं। जैविक नियंत्रण की सफलता के लिए किसानों को मौसम, फसल, कीट, परजीवी/परभक्षी तथा सुरक्षित कीटनाशकों इत्यादि के विषय का सही ज्ञान आवश्यक है।

फल उद्यानों में प्रमुख कीटों के प्रभावी परजीवी

फल वृक्ष	कीट का नाम	परजीवी	प्रयोग विधि
आम	हॉपर	पायरील्लोक्सेनोस	2–3 पौंड/हॉपर
		पराकम्पक्टस	
	गॉल मीज	एनकार्सिया	
		पार्निसिओसी	2000 पौंड/ग्रसित पेड़
सेव	सन्जोस स्केल	एनकार्सिया	2000 पौंड/ग्रसित पेड़
		पार्निसिओसी	
		एफाड्रिटिस प्रोक्लिआ	50 पौंड/ ग्रसित पेड़
	यूली एफिड	एफेलिनस माली	1000 पौंड/ग्रसित पेड़
	कोडलिंग मॉथ	ट्राइकोग्रामा	
		एम्बियोफगम	2000 पौंड/ग्रसित

समेकित कीट प्रबंधन में प्राकृतिक शत्रुओं का प्रयोग अन्य विधियों के साथ किया जाय तो कीट नियंत्रण में अपेक्षित सफलता मिलती है तथा कीटनाशकों का प्रयोग भी कम करना पड़ता है। लेकिन अभी भी इन प्राकृतिक शत्रुओं की उत्पादन तकनीक को और अधिक कारगर बनाने की आवश्यकता है, जिससे इन्हें व्यवसायिक स्तर पर उत्पादित करके किसानों को आसानी से उपलब्ध कराया जा सके।

प्राकृतिक शत्रुओं के प्रयोग के साथ–साथ इनका संरक्षण भी आवश्यक है। प्राकृतिक शत्रुओं के संरक्षण

हेतु उद्यानों में कृषि क्रियाओं को करते समय इनके आवासों एवं खाद्य पदार्थों को नष्ट होने से बचाना चाहिए। आम में फूल आने के समय मल्लादा बोनीनेनसीस एवं क्राइसोपा, लकीपरदा (परभक्षी) फरवरी से मार्च के मध्य प्रकृति में बहुत सक्रिय रहते हैं तथा इस अवधि में मधुआ कीट का भक्षण करते हैं। इसी प्रकार उत्तरांचल के पर्वतीय क्षेत्रों के सेव में कोक्सिनेला सेप्टमपंकटाटा (परभक्षी) मार्च से जून के मध्य प्रकृति में बहुत अधिक सक्रिय होते हैं तथा इस अवधि में यूली एफिस एवं थ्रिप्स कीट का भक्षण (नियंत्रण) करते हैं। अतः इस अवधि में बहुत आवश्यक होने पर ही सुरक्षित कीटनाशकों का प्रयोग करना चाहिए, जिससे इन परभक्षी कीटों की सक्रियता पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़ सकें।

फल उद्यानों में प्रमुख कीटों के प्रभावी परभक्षियों का विवरण

फल वृक्ष	कीट का नाम	परभक्षी	प्रयोग विधि
आम	हॉपरएव मिली बग	कोक्सिनेला सेप्टमपंकटाटा	30–50 पौंड / ग्रसित पेड़
अमरूद	ग्रीन साईलड स्केल एफिड	क्राईप्टोलेमस मोनट्रोजाईरी कोक्कोफेगस सेरोप्लासटेट कोक्सेनेलिड एवं सरफीड्स प्रजाति	10–20 वीटिल / ग्रसित पेड़ 10–20 वीटिल / ग्रसित पेड़
अंगूर	ग्रीन साईलड स्केल	कोक्सिनेला सेप्टमपंकटाटा	30–50 पौंड / ग्रसित पेड़
सेव	सनजोस स्केल	काईलोकोरस बिजुगस चीलोकोरस बिजुगस कोक्सिनेला सेप्टमपंकटाटा एन्थेकोरिस मिन्कि	50 पौंड / ग्रसित पेड़ 20 पौंड / 50 ग्रव प्रति ग्रसित पेड़ 30–50 पौंड / ग्रसित पेड़ 30–50 ग्रव / ग्रसित पेड़
नींबू	मिली वग लीफ माइनर सफेद मक्खी तना पाइलीड वर्ग एवं एफिड	ग्रीन लेस वींग (माल्लादा वोनोनेनसीस)	30 लावा / ग्रसित पेड़

ट्राइकोग्रामा : यह एक बहुभक्षी परजीवी है। इन परजीवियों के द्वारा प्रायः लेपीडोपटेरा वर्ग के कीटों का नियंत्रण होता है। फलों में कीट नियंत्रण हेतु इनका उपयोग अन्य फसलों की अपेक्षा बहुत ही कम हुआ है। ट्राइकोग्रामा हानिकारक कीटों के अण्डों में अपने अण्डे देकर अपना जीवन चक्र उसी में पूरा करते हैं। अण्डों के निषेचन होने पर ट्राइकोग्रामा के लार्वा कीटों के अण्डों के भ्रूण को खाकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। ट्राइकोग्रामा का वयस्क अण्डों में छेंदकर बाहर निकलता है। इस प्रकार कीटों को अण्डे की अवस्था में ही समाप्त किया जा सकता है। ट्राइकोग्रामा की आपूर्ति कार्ड के रूप में होती

है। एक कार्ड पर लगभग 20,000 अण्डे होते हैं। यह कार्ड ''ट्राइकोकार्ड'' के नाम से जाना जाता है। ट्राइकोकार्ड विभिन्न नामों जैसे पारास्ट्रीप, इज्यनील, टी–कार्ड, ट्राइकोकार्ड इत्यादि के नामों से उपलब्ध है। ट्राइकोकार्ड प्रजाति के 50,000 से 100,000 अण्डे प्रति हेक्टेयर की दर से लेपीडोपटैरा वर्ग के कीटों के नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जाता है। आम के गॉल मींज कीटों के नियंत्रण हेतु ट्राइकोग्रामा मटीडई का प्रयोग प्रभावी सिद्ध हुआ है।

ट्राइकोग्रामा का प्रयोग सुबह या शाम के समय में करना चाहिए जब हानिकारक कीटों के अण्डे पौधों पर मौजूद हों। ट्राइकोग्रामा प्रयोग के समय किसी रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

जैविक कीटनाशकों का उपयोग

समेकित कीट प्रबंधन में सूक्ष्मजीवों जैसे जीवाणु, विषाणु, प्रोटोजोआ, कवक, रिकेट्रसी और सूत्रकृमि का प्रयोग जैविक कीटनाशकों के रूप में किया जाता है।

बैक्टीरिया (जीवाणु) : कीटों में रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं में बैसिलस की प्रजातियां प्रमुख है। फल उद्यानों में कीट नियंत्रण हेतु बैसिलस थूरिनाजिएन्सिस का प्रयोग प्रभावी सिद्ध हुआ है। बी.टी. का सक्रिय तत्व क्रिस्टलीय डेल्टा–ऐन्डोटाक्सिन है। यह लेपीडोपटेरा वर्ग के कैटरपीलर (लार्वा) की भक्षण क्रिया पर तुरन्त ही रोक लगाता है। अतः कीट 1–3 दिन के अन्दर मर जाते हैं। बी.टी. व्यापारिक रूप बायोलेप, वायोसेप, बायोबिट, हाल्ट, डेल्फिन इत्यादि नामों से बाजार में उपलब्ध है। इनका उपयोग टैन्ट कैटर पिलर, इण्यिन जिप्सी मॉथ, कोडलिंग मॉथ, आम एवं सेव का फल मॉथ आदि कीटों के नियंत्रण में किया जाता है। बी.टी. का प्रयोग लार्वा की प्रारंभिक अवस्था में (अर्ली इन्सटार कैटरपीलर) अधिक प्रभावी सिद्ध हुआ है तथा इनकी 1.0–1.25 कि.ग्रा. मात्रा 500–700 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव किया जाता है।

वायरस (विषाणु) : यह भी कीटों में रोग उत्पन्न करता है। फलों में कीट नियंत्रण हेतु अब तक वायरस का प्रयोग अन्य फसलों की तुलना में बहुत कम हुआ है। लेकिन हाल के वर्षो में सेव के कोडलिंग माथ कीट के नियंत्रण के लिए ग्रनुलोसिस वायरस का प्रयोग सफल सिद्ध हुआ है। इसका उपयोग 8×10^7 वयरस पाली हेड्रा/मि.ली. की दर से फल वृक्षों पर छिड़काव किया जाता है।

कवक : फल वृक्षों के कीटारें में रोग उत्पन्न करने वाले कवक में मुख्यतः भरटीसेलियम लेकनी, वोभेरिया वेसियाना, इन्टोमोफथेरा प्रजाति एवं एक्टोमायसिस प्रजाति प्रभावी पाये गये हैं। जैसे–आम का मधुआ एवं मिली वग एवं अमरूद के माहू कीट के नियंत्रण हेतु भरटीसेलियम लेकनी का प्रयोग सफल सिद्ध हुआ है एवं इसका छिड़काव 1 किलो ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से किया जाता है।

वानस्पतिक कीटनाशकों का उपयोग : पौधों से प्राप्त रसायन, जिनमें कीटनाशक गुण होते हैं, ''वानस्पतिक कीटनाशक'' के नाम से जाने जाते है। इस पौधों में नीम, तम्बाकू, करंज, महुआ इत्यादि प्रमुख है। लेकिन इनमें से नीम एवं करंज पर आधारित कीटनाशकों का प्रयोग फलों के कीट नियंत्रण में प्रभावी सिद्ध

हुआ है। यह बाजार में कई रूपों में जैसे–निमरिन, निम्बीसिडीन, अचूक, एजाडिट, निमेक्टीन, नीमएजल, बायोनीम, रक्षक इत्यादि नामो से उपलब्ध है तथा इसकी 2–3 लीटर मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग में लाई जाती है। नीम पर आधरित कीटनाशकों का प्रयोग भी जैविक कीटनाशकों की तरह लेपीडोपटेरा वर्ग के लार्वा की प्रारंभिक अवस्था में कारगर सिद्ध हुआ है। यदि जैविक कीटनाशकों का प्रयोग, नीम पर आधारित एवं सुरक्षित कीटनाशकों के साथ सुनियोजित ढंग से किया जाये तो न केवल कीटों को आर्थिक क्षति स्तर से नीचे रखा जा सकता है, बल्कि जहरीले रसायनों के प्रयोग को भी कम किया जा सकता है। कीट प्रबंधन में वानस्पतिक कीटनाशकों के प्रयोग को व्यावसायिक स्वरूप देने हेतु और अधिक महत्त्व देने की आवश्यकता है, क्योंकि इनके प्रयोग से प्राकृतिक शत्रुओं और परागण करने वाले कीटों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है तथा फलों के प्रदूषित होने की सम्भावना भी नहीं रहती है।

रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग कब और कैसे करें ?

यह सत्य है कि रासायनिक कीटनाशकों का कीट नियंत्रण के साथ–साथ फलों की उत्पादकता बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण योगदान है तथा भविष्य में भी कीट प्रबंधन का एक प्रमुख घटक रहेगा। लेकिन विगत वर्षों में रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग उस समय किया जाये जब अन्य विधियों के प्रयोग से कीट नियंत्रण में अपेक्षित सफलता न मिले तथा फलों को आर्थिक नुकसान होने की सम्भावना हो। बगीचों में रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग कम करना तभी सम्भव हो सकेगा जब किसान कीटों की सही पहचान तथा उनके नुकसान करने का समय व ढंग के संबंध में समुचित ज्ञान प्राप्त करें और उद्यानों की निरंतर निगरानी करते रहें। इससे कीटों के आगमन एवं प्रकोप के स्तर की जानकारी प्राप्त होती रहेगी, जो अन्ततः कीटनाशकों के उचित समय पर छिड़काव, उनके विवेकपूर्ण प्रयोग तथा कीट प्रबंधन में पूर्णरूपेन सहायक सिद्ध होगा। कुछ कीटनाशक ऐसे पाये गये हैं जिनके विवेकपूर्ण प्रयोग से प्राकृतिक शत्रुओं (परजीवी / परभक्षी), मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना अपेक्षाकृत कम रहती है तथा हानिकर कीटों के प्रभावी नियंत्रण में भी अधिक सहायता मिलती है। जैसे इन्डोसल्फान, फोसलोन, कार्वेरिल, मैलाथियान इत्यादि। अतः किसान भाइयों को इन्हीं कीटनाशकों के प्रयोग पर ध्यान देना चाहिए।

फल उद्यानों में कीट प्रबंधन हेतु रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग निम्न प्रकार से करना चाहिए :

1. उद्यान स्थापित करते समय पौधों के रोपाई से पूर्व गड्ढे में 50 ग्राम क्लोरपायरीफास धूल मिलाकर गड्ढे को उपचारित कर लें जिससे गड्ढे में कीटों का नियंत्रण हो सके। रोपाई से पूर्व पौधों के क्लोरपाइरीफास 2 मि.ली. / लीटर पानी के घोल में उपचारित कर के ही रोपाई करें।
2. कटाई–छंटाई के बाद छिड़काव करना उपयुक्त होता है। इसी समय थालों की मिट्टी को दो फीट की चौड़ाई में चारों तरफ से हटाकर क्लोरपाइरीफास 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर घोल से जड़ों को सींच देना चाहिए। इस उपचार से पेड़ की जड़ों को नुकसान करने वाले कीटों जैसे दीमक, यूली ऐफिड, वीविल व जड़ छेदक का प्रकोप नहीं होता है। किसानों को यह उपचार

प्रत्येक पेड़ में प्रति वर्ष करना चाहिए।

3. आम में पुष्प कलिकाओं के निकलने के समय मिज कीट या हॉपर का प्रकोप दिखते ही इमिडाक्लोप्रिड 0.3 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव किया जाना चाहिए।

4. सेव, नाशपाती, आड़ू, प्लम एवं चेरी के थ्रिप्स कीट के नियंत्रण हेतु फरवरी–मार्च में फूल खिलने से लगभग 7–8 दिन पहले, गुलाबी कली अवस्था (पिक बड स्टेज) में मिथाइल डिमेंटन 2 मि.ली. या इमीडाक्लोरप्रिड 0.3–0.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। जिन फसलों में आड़ू के लीफ कर्ल एफिड के नियंत्रण हेतु कीटनाशक का छिड़काव किया जाता है, उन फसलों में थ्रिप्स के नियंत्रण हेतु कोई छिड़काव नहीं करना चाहिए।

5. फरवरी–मार्च में आम नवजात फलों के निकलने पर यदि हॉपर कीट का प्रकोप 5–10 हॉपर प्रति पुष्प कली हो तो नियंत्रण के लिए बदल–बदल कर कीटनाशकों यथा इमिडाक्लोराप्रिड 0.3 मि. ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

6. आड़ू के लीफ कर्ल एफिड के नियंत्रण हेतु फरवरी में फूल खिलने से पहले मिथाइल डिमेटान 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए ।

7. मार्च में आम के खैरा रोग के नियंत्रण के लिए घुलनशील गंधक 2 ग्राम/ली. या कैराथन 2 मि. ली. पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए तथा साथ में तरल साबुन भी मिलाना चाहिए।

8. टेन्ट कैटरपीलर कीट का प्रकोप मार्च से मई के मध्य होता हैं इस अवधि में आम, सेब खूबानी, अखरोट एवं नाशपाती फसलों की निगरानी करना चाहिए तथा आर्थिक नुकसान होने की आशंका में ही क्लोरोपायरिफॉस 1.25 मिली प्रति लीटर में छिड़काव करना चाहिए। आवश्यक होने पर ही दूसरा छिड़काव इनमें से कीटनाशकों को बदल कर करना चाहिए।

9. बेर, आम एवं अमरूद में फल मक्खी से आर्थिक क्षति होने की संभावना रहने पर साइपरमेथ्रिन 1 मि.ली. क्वीनालफास 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए तथा खाद्य प्रलोभक एवं फेरोमोन ट्रैप का प्रयोग करना चाहिए।

10. पत्ती एवं फल खाने वाले कीट का प्रकोप होने की अवस्था में इन्डोसल्फान या क्वीनालफास 2 मि. ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव जिप्सी मॉथ के नियंत्रण हेतु कार्बोसल्फान 2 मि.ली. या मोनोक्रोटोफास 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

11. लीची वग एवं माइट कीटों के नियंत्रण हेतु नीम का तेल 5 मिली तथा केल्थेन 1.25 मि.ली. पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

12. जुलाई के दूसरे पखवारे में आम शल्क कीट या अन्य शल्क कीट जिनका अधिक प्रभाव होता हो को देखते ही क्लोरोपायरीफॉस 1 मि.ली. या डायमेथोयेट 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर

छिड़काव करना चाहिए। आवश्यक होने पर 15 दिनों के बाद इनमें से किसी कीटनाशक को बदलकर प्रयोग करना चाहिए।

13. बेर में बिट्िल का प्रकोप दिखाई देने पर कार्बोरिल 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

14. संतरा में साइला, सफेद मक्खी, काली मक्खी, रेड स्केल एवं कॉटनी कोसिन स्केल कीटों के नियंत्रण के लिए डायमेथोयेट या फेनीट्रथियोन 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

सावधानियाँ

बगीचों में कीटनाशकों का छिड़काव करते समय किसानों को निम्नलिखित विषयों पर विशेष ध्यान देना चाहिए :

1. उद्योगों में प्रमुख हानिकर कीटों जैसे मधुआ, फलमक्खी, इंडियन जिप्सी माथ, टेन्ट कैटरपीलर एवं पत्ती व फल खाने वाले कैटरपीलर के प्रकोप होने की अवस्था में फसल की निरंतर निगरानी करते रहना चाहिए तथा आर्थिक नुकसान होने की संभावना रहने पर ही कीटनाशकों का छिड़काव करना चाहिए।
2. कीटनाशकों का छिड़काव पौधों/वृक्षों पर समान रूप से करना चाहिए तथा कीटनाशकों के घोल में स्टीकर जैसे सैन्डोविट या टीपाल 1 मि.ली. प्रति लीटर कीटनाशक के घोल में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। स्टीकर के प्रयोग से कीटनाशक की 25–30 प्रतिशत प्रभावशीलता बढ़ जाती है।
3. कीटनाशकों का छिड़काव अधिक धूप अथवा बदली के मौसम में नहीं करना चाहिए। यदि छिड़काव के छः घंटे के अंदर वर्षा हो गई तो कीटनाशक धुल जाती है और कीटनाशकों का उपयोग पुनः करना पड़ता है।
4. कीटनाशकों को प्रभावशीलता बढ़ाने के लिए यह ध्यान रहना चाहिए कि कीटनाशक नया हो और उसे उचित मात्रा में प्रयोग करना चाहिए। कीटनाशक बदल–बदल कर छिड़काव करना चाहिए अन्यथा कीटों में कीटनाशक सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है और इस प्रकार बाद में उस कीटनाशक का प्रभाव कम हो जाता है। जब फूल पूर्णरूप से खिले हो उस समय कीटनाशक का छिड़काव नहीं करना चाहिए अन्यथा परागण करने वाले कीटों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
5. प्राकृतिक शत्रुओं (परजीवी/परभक्षी) के संरक्षण एवं प्रोत्साहन हेतु यह भी आवश्यक है कि उस क्षेत्र में कार्यरत संगठनों द्वारा मित्र कीटों की कीटनाशक प्रतिरोधी जातियों का विकास किया जाय। जैविक नियंत्रण परियोजना निदेशालय, बंगलौर द्वारा अण्ड परजीवी कीट, ट्राइकोग्रामा किलोनिस की इन्डोग्रामा प्रजाति विकसित की है जो इन्डोसल्फान के विरूद्ध 0.07 प्रतिशत

सान्द्रता तक प्रतिरोधी है। इस अण्ड परजीवी का प्रयोग कई फसलों में लेपीडोपटेरा वर्ग के कैटरपीलर के नियंत्रण में किया जाता है। इन प्रतिरोधी स्ट्रेन का व्यवसायिक उत्पादन इक्सेल इंडस्ट्रीज लिमिटेड, मुम्बई द्वारा किया जा रहा है।

6. कीटनाशकों के उपयोग के पूर्व तैयार फलों को तोड़ लेना चाहिए और छिड़काव के उपरांन्त 10–15 दिनों के बाद ही फल को उपयोग में लाना चाहिए।

7. समेकित कीट प्रबंधन में कीटों का निरीक्षण एवं अवलोकन पद्धति का महत्वपूर्ण योगदान है। इस पद्धति के प्रयोग से फल को नुकसान करने वाले कीटों की पहचान, उनके आगमन की सूचना तथा प्रकोप के स्तर की जानकारी प्राप्त होती है जो अन्ततः कीट प्रबंधन तकनीकों के क्रियान्वयन में सहायक होता है। राष्ट्रीय स्तर पर किसानों को कीटों के प्रकोप की अग्रिम चेतावनी/सूचना के प्रसार हेतु प्रयास किये जा रहे है तथा माहू (एफिड), हॉपर, पाइरिला एवं अमेरिकन वालवर्म (कैटरपीलर) इत्यादि कीटों के प्रकोप व प्रभाव का अध्ययन करके किसानों को अग्रिम सूचना उपलब्ध कराने में सहायता भी मिलती है। कीट प्रबंधन में इस पद्धति को और अधिक सुदृढ़ करने तथा व्यापक प्रचार–प्रसार हेतु विभिन्न संचार माध्यमों के प्रयोग को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।

उपरोक्त सभी तकनीकों का फल उद्यानों में समय से क्रियान्वयन सुनिश्चित करके कीट प्रबंधन में कीटनाशकों के प्रयोग कम करना ही अहम् उद्देश्य है। इसे और अधिक प्रभावी बनाने हेतु विषय विशेषज्ञों और प्रसार–कर्मियों को समय–समय पर प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है, जिससे प्रसार कार्यों के लिए संचालित किये जा रहे प्रदर्शनों, प्रशिक्षणों तथा साहित्य में कीट प्रबंधन तकनीकों का समावेश कर फलों की उत्पादकता व गुणवत्ता में वृद्धि की जा सके तथा फलों के निर्यात हेतु आदर्श मानक स्तर को प्राप्त कर सके।

झारखण्ड में मुख्य फलों की वैज्ञानिक खेती

आम

आम भारत वर्ष का एक प्रमुख फल है। विश्व के कुल आम उत्पादन का लगभग 43.4% भाग भारत में उत्पन्न होता है। सन् 2016–17 में देश में 22.1 लाख हे. क्षेत्रफल में आम की खेती से 186.4 लाख मि.टन आम का उत्पादन हुआ। देश के प्रायः सभी क्षेत्रों में आम की खेती की जाती है, परन्तु व्यवसायिक स्तर पर उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, प. बंगाल, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात एवं मध्य प्रदेश में इसकी खेती की जाती है। भारत वर्ष में आम का सर्वाधिक क्षेत्रफल, आन्ध्र प्रदेश में है। आम के पके हुए फल अत्यधिक पौष्टिक, स्वादिष्ट एवं गुणकारी हाते हैं। इसके फलों में विटामिन ''ए'' व कैरोटीन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। ताजा उपयोग के अतिरिक्त आम के फलों से अनेक परिरक्षित पदार्थ बनाये जाते हैं। कच्चे फलों का उपयोग आचार, अमचूर इत्यादि के लिए किया जाता है जबकि पके फलों से जूस, शरबत, स्वकैश, पेय पदार्थ एवं अमावट (मैंगोलेदर) आदि बनाये जाते हैं।

भूमि एवं जलवायु

आम के सफल बागवानी के लिए अच्छी जलधारण क्षमता वाली गहरी बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। झारखंड प्रदेश की आर्द्र एवं उपोष्ण जलवायु आम के सफल बागवानी के लिए उपयुक्त है। ऐसा देखा गया है कि पठारी भू–भाग में जनवरी–फरवरी में आसमान साफ रहने, तापमान में वृद्धि एवं शुष्क जलवायु होने से आम में फल पहले आते हैं जो अन्य स्थानों से 10–25 दिन पहले पककर तैयार हो जाते हैं। विगत 20 वर्षों के शोध कार्य एवं अनुभवों से यह देखा गया है कि छोटानागपुर क्षेत्र की टांड़ जमीन में आम की सफल बागवानी की जा सकती है। प्रायः ऐसी जमीन या तो परती पड़ी रहती है या केवल मानसून के मौसम में कम उत्पादकता वाली फसले जैसे–महुआ, कैनी एवं अन्य लघु खाद्यान्न तथा गोड़ा धान इत्यादि ही उगाई जाती है। ऐसी जमीन में आम की खेती के साथ–साथ इन फसलों के अन्तरशस्यन के रूप में उगा कर अतिरिक्त एवं सतत् आय प्राप्त किया जा सकता है।

किस्में

देश के आम की 1000 किस्में प्रचलित है परन्तु व्यापारिक दृष्टि से 40–50 किस्में ही विभिन्न क्षेत्रों में उगाई जाती हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केन्द्र, प्लान्डु, राँची के पिछले दो दशकों के परीक्षण एवं तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर छोटानागपुर क्षेत्र के लिए आम की विभिन्न समय में परिपक्व होने वाली किस्मों की संस्तुति नीचे तालिका में की गई है :

जरदालू

झारखंड एवं बिहार क्षेत्र की यह एक व्यवसायिक एवं अगेती किस्म है। इसका वृक्ष फैलावदार एवं पत्तियाँ

हल्के रंग की होती हैं। इसके फलों के आकार बड़ा एवं आकर्षक गहरा पीला होता है। पूर्ण विकसित वृक्ष से 140–160 कि.ग्रा. फल प्राप्त हो सकता है।

बाम्बे ग्रीन

यह एक जल्दी पकने वाली किस्म है जिसके फल मई के तीसरे सप्ताह में पककर तैयार हो जाते हैं। इस किस्म के वृक्ष अधिक शाखायुक्त एवं पत्तियाँ पतली होती है। फलों का आकार मध्यम, पकने पर रंग हरा से हल्का पीला, फलों में गूदे की मात्रा अधिक तथा स्वाद एवं मिठास बहुत अच्छा होता है। इसके पूर्ण विकसित वृक्ष से फलन के वर्ष में 150–175 कि.ग्रा. फल प्राप्त हो सकता है।

परिपक्वता वर्ग	**पकने का समय**	**किस्में**
अग्रती किस्में	20–30 मई	बाम्बे ग्रीन, रानी पसंद, जरदालू, दर्जा (गोरजीत), गंलाब खस।
मध्य–अगेती किस्मतें	30 मई से 10 जून	हिमसागर, कृष्णभोग, वजीर पसंद
मध्य समय की किस्में	10–25 जून	मालदह (लंगड़ा) दशहरी, मनकुराद, प्रभाशंकर।
मध्य–देर वाली किस्में	20 जून–5 जुलाई	मल्लिका, नायाब।
देर से पकने वाली किस्में	25 जून – 25 जुलाई	आम्रपाली, चौसा, सीपिया, फजली।
अति देर वाली किस्में	15 जुलाई – 10 अगस्त	कतकी, लतरा।
चूसने वाली किस्में		लखनऊ सफेदा एवं मलिहाबादी सफेदा।

हिम सागर

जून के मध्य तक पकने वाली इस किस्म के पौधे अधिक ओजपूर्ण एवं मध्यम शाखीय होते है। पौधों का क्षत्रक विकास मध्यम तथा फल का सामंजस्य बहुत ही अच्छा होता है। फलों का रंग हरा एवं आकार लगभग अंडाकार होता है। इस किस्म के फल मीठे, स्वादिष्ट एवं अधिक गूदेदार होते है। हिमसागर किस्म के एक वृक्ष से 140–180 कि.ग्रा. फल प्राप्त हो सकता है।

दशहरी

उत्तर भारत की यह एक व्यवसायिक किस्म है जो छोटानागपुर क्षेत्र के लिए भी उपयुक्त पाई जाती है। इस क्षेत्र में लखनऊ के अपेक्षाकृत इसके फलों का आकार मध्यम छोटा, आकृति अंडाकार और पकने पर

रंग पीला होता है। फलों की भण्डारण क्षमता अच्छी होती है।

सफेद मालदह

इस किस्म को लंगड़ा के नाम से भी जाना जाता है। यह मध्य समय पर पकने वाली किस्म है जिसके फल मध्य जून तक तैयार हो जाते हैं। इस किस्म के पौधे फैलावदार एवं क्षत्रक विकास घना होता है। फलों का आकार मध्यम बड़ा, पकने पर रंग हल्का पीला एवं उनमें गूदे की मात्रा अधिक होती है। पूर्ण विकसित पेड़ से लगभग 150–200 कि.ग्रा. फल प्राप्त हो सकता है।

मल्लिका

यह एक संकर किस्म है जिसके फल बहुत बड़े (औसत वजन 600 ग्रा.), गुठली पतली एवं अधिक गूदेदार, मीठे एवं स्वादिष्ट होते हैं। पकने पर इसके फल आकर्षक पीले रंग के हो जाते हैं। इसके फलों की भंडारण क्षमता भी अधिक है। इस क्षेत्र के लिए यह एक देर से पकने वाली बहुत ही अच्छी किस्म पाई गई है। यह किस्म खाने एवं प्रसंस्करण के लिए अत्यधिक उपयुक्त मानी जा रही है। एक पूर्ण विकसित वृक्ष से 150–200 कि.ग्रा. फल प्राप्त हो सकता है।

आम्रपाली

यह एक संकर किस्म है जिसके पेड़ बौने होते हैं। आम्रपाली के पेड़ों से फलत अपेक्षाकृत जल्दी एवं नियमित रूप से प्राप्त होती है। परन्तु फलों का आकार छोटा–बड़ा होता हैं यह एक देर से पकने वाली किस्म है जिसके फल जून के अंत में पककर तैयार होते हैं। यह किस्म सघन उत्पादन पद्धति के लिए बहुत उपयुक्त है जिससे लगभग 200–250 क्विं./हे. उपज प्राप्त किया जा सकता है।

चौसा

यह एक देर से पकने वाली प्रजाति है जिसके फल जून–जुलाई माह में पककर तैयार होते हैं। वृक्ष आकार में बड़े एवं मध्यम शाखीय होता है। इसके मध्यम आकार के फल लगभग अंडाकार एवं स्वादिष्ट होते हैं। पूर्ण विकसित वृक्ष से 140–180 कि.ग्रा. फल प्राप्त किया जा सकता है।

पौध प्रवर्धन

आम की व्यवसायिक खेती के लिए पौध प्रवर्धन वानस्पतिक विधि से करना चाहिए। इसके पौधे पैत्रिक गुणों वाले होते हैं एवं फल जल्दी आ जाते हैं। आम के पौधे भेंट–कलम, विनियर, स्टोन, कोमल शाखा एवं शूट–टिप ग्राफ्टिंग विधि द्वारा तैयार किये जाते हैं।

विनियर ग्राफ्टिंग

इस विधि में मूलवृन्त पर जमीन से 20 से.मी. ऊँचाई पर 30–40 मि.मि. का एक तिरछा चीरा अन्दर की तरफ लगा करके मूलवृन्त का टफकड़ा निकाल लिया जाता है। अब इसी चीरे के बराबर का कलम

सांकुर डाली पर उल्टी दिशा में बनाते हैं और दोनों चीरों को मिलाते हुए 200 गेज वाली पालीथीन की पट्टी से अच्छी तरह बांध देते हैं। मूलवृन्त से जुड़ जाती है। विनियर ग्राफ्टिंग के लिए सांकुर डाली को एक सप्ताह पहले मातृ वृक्ष में ही पत्ती रहित कर दिया जाता है।

स्टोन ग्राफ्टिंग

इस विधि में 15 दिन पुराने आम के अमोलों पर जमीन से 8–10 से.मी. ऊँचाई पर ग्राफ्टिंग किया जाता है। इसमें अमोलों (मूलवृन्त) को नई पत्ती के नीचे से काटकर उसके बीचोबीच 3–5 सें.मी. लम्बा लम्बवत् चीरा लगाते हैं तथा सांकुर डाली को दोनों तरफ से कलम बनाकर अन्दर घुसा कर पॉलीथीन की पट्टी से बांध दिया जाता है। यदि नवजात पौधों की मोटाई पर्याप्त न हो तो दो अमोलों को जोड़कर स्टोन ग्राफ्टिंग की जा सकती है।

शूट टिप ग्राफ्टिंग

यह तकनीक अधिक आसान है एवं इससे पौधे अच्छे एवं स्वस्थ्य बनते हैं। इस तकनीक में आम के नवजात पौधों या गुठली को $25 \times 12 \times 8$ से.मी. आकार के 400 गेज मोटी काली पॉलीथीन की थैलियों में मिट्टी एवं खाद के मिश्रण से भरकर जुलाई में लगा दिया जाता है। जब पौधे 40–45 दिन के हो जाते हैं तब उनमें पर्याप्त मोटाई आ जाती हैं ऐसी अवस्था में पौधों को 8–10 से.मी. ऊँचाई पर सीधा काट देते हैं। अब स्टोन ग्राफ्टिंग की ही भांति उनमें बीचो बीच में चीरा लगाकर तथा सांकुर डाली को दोनों तरफ से कलम बनाकर ग्राफ्टिंग करके पौधों को आंशिक छायादार स्थान पर रखकर पौधा तैयार किया जाता है।

पौध रोपण एवं देखरेख

आम के पौधों को 10×10 मी. की दूरी पर लगाना चाहिए। पौधा लगाने से पहले खेत में रेखांकित करके पौध लगाने का स्थान सुनिश्चित कर लेते हैं। तत्पश्चात् $90 \times 90 \times 90$ से.मी. आकार के गड्ढे खोद कर मिट्टी फैला देते हैं। वर्षा प्रारम्भ होते ही, जून के महीने में 2–3 टोकरी गोबर की सड़ी खाद (कम्पोस्ट), 2 कि.ग्रा. करंज/नीम की खली, 1 कि.ग्रा. हड्डी का चूरा अथवा सिंगल सुपर फास्फेट एवं 100 ग्राम. डुर्सबान/रडार (10 धूल), या 20 ग्रा. फ्युराडान 3जी/थिमेट 10जी. को खेत की ऊपरी सतह की मिट्टी में अच्छी तरह मिलाकर गड्ढा भर देना चाहिए। दो–तीन वर्षा के बाद जब मिट्टी दब जाय तब पूर्व चिन्हित स्थान पर खुरपी की सहायता से पौधे के पिंडी के आकार की जगह बनाकर पौधा लगा देना चाहिए। पौधा लगाने के बाद आस–पास की मिट्टी को अच्छी तरह दबा कर एक थाला बना दें एवं उसमें 2–3 बाल्टी (25–30 ली.) पानी डाल दें। वर्षा न होने की दशा में पौधे पूर्ण स्थापना होने तक पानी देते रहना चाहिए।

आम के पौधे लगाने के पश्चात् प्रथम के 3–4 वर्षो तक समुचित देख–रेख करने की आवश्यकता पड़ती है। खासतौर से जाड़े एवं ग्रीष्म ऋतु में पाले से बचाव के लिए उचित सिंचाई का प्रबन्ध करना चाहिए।

प्रारम्भ के 3–4 वर्षों में पौधों की अवांछित शाखाओं को निकाल कर उसको निश्चित आकार देना चाहिए। जमीन से लगभग 80 से.मी. ऊँचाई तक की शाखाओं को निकाल देना चाहिए। जिससे मुख्य तने का उचित विकास हो सके। तत्पश्चात 3–4 मुख्य शाखाओं को विकसित होने देना चाहिए। इन शाखाओं पर द्वितीय एवं तृतीय शाखायें आती हैं जिससे वृक्ष का आकार सुडौल, ढाँचा मजबूत एवं फलन अच्छी आती है। बड़े पौधों में विशेषकर जिसमें क्षत्रक घना होता है बीच की शाखाओं को जिसमें फल नहीं आता, काटकर निकाल देना चाहिए। सूखी, रोगग्रसित अथवा कैंची शाखाओं को समय–समय पर काटते रहना चाहिए। फलों को तोड़ने के बाद मंजर के साथ 2–3 से.मी. टहनी को काट देने से स्वस्थ शाखायें निकलती है एवं अगले वर्ष फल अच्छी होती है। प्रारम्भिक अवस्था में पौधें की समुचित देख–रेख, निकाई–गुड़ाई तथा कीड़े एवं बीमारियों से रक्षा करने से पौधें का विकास अच्छा होता है।

खाद एवं उर्वरक

प्रारम्भ के 2–3 वर्षों तक आम के पौधों को 30 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद, 2 कि.ग्रा. करंज की खली, 200 ग्रा. यूरिया, 150 ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट तथा 150 ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति पौधा/वर्ष की दर से देना चाहिए। तत्पश्चात् पौधे की बढ़वार के साथ–साथ खाद की मात्रा में वृद्धि करते जाना चाहिए। इस प्रकार 10 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद, 150 ग्रा. करंज की खली, 150 ग्राम यूरिया, 100 ग्रा. सिं. सु.फा., 50 ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति पौधा प्रति वर्ष के हिसाब से वृद्धि करना चाहिए। लगभग 15 वर्ष बाद पूर्ण विकसित वृक्ष में 80–100 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 3–4 कि.ग्रा. करंज की खली, 2 कि. ग्रा. यूरिया, 1.5 कि.ग्रा. सिं.सुफा. एवं 0.8 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति पौध प्रति वर्ष की दर से देना चाहिए। पूरी खाद एवं आधे उर्वरकों को जून तथा शेष उर्वरकों को सितम्बर में वृक्ष के क्षत्रक के नीचे गोलाई में देकर अच्छी तरह से मिला देना चाहिए। खाद देने के बाद यदि वर्षा नहीं होती है तो सिंचाई करना आवश्यक है। छोटानागपुर क्षेत्र की मृदा में 10–15 कि.ग्रा. चूना प्रति वृक्ष वर्ष के अन्तराल पर देने से उपज में वृद्धि देखी गई हैं जिन बगीचों में जिंक की कमी की लक्षण दिखाई दें उनमें 150–200 ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति वृक्ष की दर से सितम्बर माह में अन्य उर्वरकों के साथ देना लाभकारी पाया गया है।

सिंचाई एवं जल संरक्षण

आम के सफल उत्पादन के लिए बगीचे में जल प्रबन्ध बहुत ही आवश्यक होता हैं जब तक पौधा फलन में नहीं आता तब तक पौधे के उचित बढ़वार एवं विकास के लिए सर्दी मौसम में 15–20 दिनों के अन्तराल पर एवं गर्मी में 10 दिनों के अन्तराल पर हल्की सिंचाई करनी चाहिए। अध्ययन से यह पता चला है कि पौधों में मंजर आने के लगभग 3 माह पहले से फल बनने के समय तक पानी नहीं देना चाहिए। यदि अन्तशस्य की फसल ली जा रही है तो उसमें भी इस समय पानी रोक दें या ऐसी फसल का चुनाव करें जिसमें इस समय सिंचाई की आवश्यकता न हो। इस समय मृदा में मौजूद नमी को संरक्षित रखने के लिए पौधे के तने के चारों तरफ सूखे खरपतवार या काली पॉलीथीन की मल्चिंग बिछाना लाभदायक

पाया गया हैं पौधों में फसल के समय पानी की अधिक आवश्यकता होती है। मटर आकार के फल होने से लेकर तोड़ाई तक सिंचाई करने से फल एवं गुणवत्ता में वृद्धि देखी गई हैं सिंचाई के लिए रूपान्तरित थाला विधि अति उत्तम पायी गयी है। इसमें पानी का बचत व खाद का संचय होता है एवं मृदा जनित बीमारियाँ एक पौधे से दूसरे पौधे में नहीं फैलती है।

पूरक पौधे एवं अन्तशस्य

आम के वृक्ष के पूर्ण रूप से तैयार होने में लगभग 15–16 वर्ष का समय लगता है। अतः प्रारम्भिक अवस्था में आम के पौधों के बीच की खाली पड़ी जमीन का सदुपयोग अन्य फलदार पौधों एवं दलहनी फसलें/सब्जियों को लगाकर किया जा सकता है। इससे किसान भाईयों को अतिरिक्त लाभ के साथ–साथ मृदा की उर्वराशक्ति का भी विकास होता है। शोध कार्यों से पता चला है कि आम में पूरक पौधे के रूप में अमरूद, नींबू, शरीफा एवं पपीता जैसे फल वृक्ष लगाए जा सकते हैं ये पौधे आम के दो पौधों के बीच में रेखांकित करके लगाने चाहिए। इस प्रकार एक हेक्टेयर जमीन में आम के 100 पौधें तथा 300 पूरक पौधे लगाए जा सकते हैं। अन्तशस्य के रूप में दलहनी एवं अन्य फसलों जैसे बोदी, फ्रेंचबीन, भिन्डी, मूँग, कुल्थी महुआ आदि की खेती की जा सकती है। जब पौधे के क्षत्रक पूर्ण रूप से विकसित हो जाये तो छाये में होने वली फसलें जैसे अदरक, हल्दी एवं ओल की खेती अन्तशस्य के रूप में लाभकारी पायी गयी है।

पुष्पण एवं फलन

वानस्पतिक विधि से तैयार आम के पौधों में 3–4 वर्षों के बाद फूल आना प्रारम्भ हो जाता है। आम में परागण मधुमक्खियों द्वारा होता है। अतः फल आनें के समय कीटनाशक दवाओं का प्रयोग न करें अन्यथा फल प्रभावित होती है। आम में मुख्य रूप से नर एवं उभयलिंगी पुष्प एक ही मंजर में पाये जाते हैं जिसमें से केवल उभयलिंगी फूलों में ही फल बनते हैं। अतः अधिक फलन के लिए मादा पुष्पों का परागण आवश्यक होता है। पौधे के आयु के साथ–साथ फलत में वृद्धि होती रहती है तथा 15–20 वर्ष के पौधे से अधिकतम फल प्राप्त होते हैं।

कीट, रोग एवं नियंत्रण

सिल्ला कीट

सिल्ला कीट पत्तियों के निचले सतह पर मध्य शिरा के पास अंडे देती है जिनसे अगस्त महीने में सूक्ष्मदर्शी नवजात निकल कर पत्तियों के अक्ष की ओर बढ़ते हैं। यहाँ इनके रस चूसने से नुकीले गाँठ बनाना आरम्भ हो जाते हैं जो कीट के लिए सुरक्षित आश्रय बनाते हैं। गाँठ आरम्भ में पत्तियों या मंजर निकलने की भ्रांति पैदा करते हैं परन्तु इसमें कीट रस चूसकर पौधे को क्षति पहुँचाते हैं। इनकी रोकथाम के लिए 5–10 अगस्त के बीच क्वीनॉलफॉस (0.4%) का 10–15 दिनों के अन्तराल पर 3 छिड़काव करना चाहिए। कीट प्रभावित टहनियों या नुकीले गाँठों की छंटाई लाभप्रद पायी गयी है। 2–3 वर्षों के नियमित प्रबंधन से कीट से होने वाली क्षति से बचा जा सकता है।

फुदका या मधुआ

छालों के अंदर छुपकर रहने वाली यह कीट मंजर तथा नर्म टहनियों के रस चूसकर वृक्ष को सर्वाधिक क्षति पहुँचाता है। इनकी उग्रता की स्थिति में मधुस्राव होता है जो पत्तों एवं फलों पर काली फफूँद को बढ़ावा देता है। मंजर सूखने से फूल–फल कम लगते हैं या झड़ जाते हैं। इसके प्रबंधन के लिए क्लोरोपायरिफॉस (2 मी.ली./ली.) या इमदाक्लोरपीड़ (1.5 मि.ली./ली.) दवा को पानी में मिला कर एक बार फूल खिलने के पहले तथा दो बार मटर आकार के फल लगने के बाद छिड़काव करना चाहिए।

गुजिया (मिलीवग)

फलों की निचली सतह, टहनियों तथा फलों पर रस वाली सफेट कीट समूह, कपासनुमा शरीर के कारण जल्दी ही दिख जाती है। उग्रता की स्थिति में टहनियाँ सूखने लगती है। इनके प्रबंधन के लिए क्विनॉलफास 2 मि.ली./ली. या क्लोरोप्यरीफोस 1.5 मि.ली./ का मार्च–अप्रैल में छिड़काव करना चाहिए। जनवरी माह में तने के चारों ओर गुड़ाई एवं क्लोरोपायरिफॉस या मिथाइल पैराथियॉन के 200 ग्रा. धूल या भुरकाव अथवा पॉलीथीन के चादर से तने पर 30 सें.मी. की पट्टी एवं ग्रीस लगाने से इसके नवजात को फांस कर इस कीट का निराकरण किया जा सकता है।

फल मक्खी

फल मक्खी परिपक्वता के पहले फलों पर अंडे देकर क्षति पहुँचाती है। परिपक्व फलों में इनके पिल्लुओं की उपस्थिति से सड़न आरम्भ हो जाती हैं। देर से पकने वाली किस्मों पर इनका प्रकोप सर्वाधिक होता है। इसके प्रबंधन के लए अप्रैल–मई में वयस्क कीटों को फंसाने के लिए ट्रैप का इस्तेमाल उपयोगी पाया गया है। इसमें गुड़ का शीरा या ताड़ी में नुवान मिलाकर खुले डिब्बे में पेड़ पर टांग देते हैं जो वयस्कों को अपनी ओर आकर्षित करता है तथा कीटनाशक के कारण कीट मरते जाते हैं। उग्रता की अवस्था में इमिडाक्लोरोप्रिड दवा का (0.3 मि.ली./ली. पानी की दर से) 2–3 छिड़काव दोपहर के समय में करना चाहिए। फल मक्खी के नर वयस्क को फंसाने के लिए हाल में ही नयी तकनीक विकसित की गयी है जिसमें 5×5×1.2 से.मी. के प्लाईवुड के टुकड़ों पर 4–5 बुंद मिथाइल युजीनाल एवं 2 बूंद नुवान डालकर किलर ब्लाक तैयार करते हैं इसे एक ली. वाली पानी बोतल में जिसके गर्दन के पास 4 से.मी. का छेद हो के अन्दर लटका देते हैं। अब इस बोतल को पेड़ की टहनी पर 10 बोतल प्रति हेक्टेयर के दर से टांग देते हैं।

तना वेधक

कभी–कभी मोटी टहनियों या तने में इसका प्रकोप देखा जाता है। बड़े आकार के पिल्लू तने के अंदर घुसकर भीतरी भाग को खा जाते हैं। और उसी में अपनी विष्टा भी निकालते हैं। जिससे उनके

पेड़ पर होने का संकेत मिलता है। इसके प्रकोप से या तो टहनियाँ सूख जाती है या टूट जाती हैं। नियंत्रण के लिए नुवान के घोल (10 मि.ली./लीटर पानी) या पेट्रोल की 2–3 बूँद जीवित छिद्र में डालकर टहनियों के सभी छिद्रों को गीली चिकनी मिट्टी से बंद कर दें। इस प्रकार वाष्पीकृत गंध के प्रभाव से पिल्लू को खत्म किया जा सकता है। और तने को बचाया जा सकता है।

चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्ड्यु)

चूर्णिल आसिता आम के पत्तों पर जीवित रहते हैं जो मंजर निकलने तथा फूल खिलने की अवस्था में सक्रिय होकर पौधे को क्षति पहुँचाते हैं। अनुकूल वातावरण में फफूँद मंजर पर सफेद–धूसर रंग की मखमली सतह की तरह दिखते हैं जिनके कारण मंजरों का सूखना, फूल एवं फलों का झड़ना प्रारंभ हो जाता है। इसके प्रबंधन के लिए दिसम्बर–जनवरी माह में या मंजर निकलने के साथ ही वैविस्टिन (0.01%) या सल्फेक्स (0.2%) का तीन छिड़काव 10–15 दिनों के अन्तराल पर करना चाहिए।

श्यामव्रण (एन्थ्रेक्नोज)

इस रोग के कारण नये पत्तों, टहनियों एवं फलों पर काली धंसी चित्तियाँ बनती हैं जिन पर सूई की नोक के आकार के काले–काले कोयला के बुरादेनुमा धब्बे देखे जा सकते हैं। उग्रता की स्थिति में पत्तों या फलों का झड़ना तथा टहनियों का सूखना देखा जा सकता है। इसकी रोकथाम के लिए नये पत्तों एवं बढ़ते फलों पर कवच या इंडोफिल एम.–45 नामक फफूँदनाशी (2.2%) का 2–3 छिड़काव करना चाहिए। रोग ग्रसित टहनियों तथा इसके प्रभाव से झड़े पत्तों को जलाना या गाड़ देना लाभकारी होता है।

कज्जली फफूँद (शूटी मोल्ड)

इस रोग के प्रभाव से पत्ते, टहनियाँ या फल काले फफूँद से ढंक जाते हैं। मधुआ या अन्य स्त्रायी कीटों के मधुस्त्राव पर इन फफूँदों की बढ़वार होती है। उग्रता की स्थिति में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बाधित होती है तथा फलों की गुणवत्ता में गिरावट के कारण आर्थिक क्षति होती है। इसकी रोकथाम के लिए स्रायी कीटों का नियंत्रण करना चाहिए। रोग की उग्रता की स्थिति में व्यवसायिक स्टार्च या मॉड़ या गोंद के 3% के घो में 1.25 मि.ली./ली. मोनोक्रोटोफास या रोगर मिलाकर 15 दिनों के अन्तराल पर 3 बार छिड़काव करें।

टहनियों का सूखना (पिंक रोग)

फफूँद जनित पिंक रोग के कारण पूर्ण विकसित पेड़ों की टहनियाँ एक–एक करके सूखने लगती हैं। इसके नियंत्रण के लिए सूखी टहनियों को 15 से.मी. नीचे से छांट कर उसके कटे भाग पर कॉपर अक्सिक्लोराइड को लेप लगाना चाहिए तथा इसी फफूँदनाशी का 2–3 छिड़काव करना चाहिए।

जीवाणु कैंकर

पत्तों, टहनियों एवं फलों पर धब्बों का बनना तथा उनपर छोटे–छोटे चमकीले कणों का दिखना इसका प्रारम्भिक लक्षण हैं उग्रता की स्थिति में फलों का झड़ना, टहनियों का सूखना तथा फलों का सड़ना देखा जा सकता है। इसके बचाव के लिए स्ट्रेप्ट्रामाइसिन के 200 पी.सी.एम. या कॉपर आक्सीक्लोराइड के 0.2 घोल का 7 दिनों के अन्दर पर 3–4 छिड़काव आवश्यक होता है।

भरपूर पैदावार के लिए आम के बगीचों का रख-रखाव

प्रायः ऐसा देखा गया है कि आम उत्पादक किसान केवल फल के समय ही आम के पौधे की देख–रेख करते हैं। शेष समय में वे आम के बगीचों की कोई देखभाल नहीं करते। परिणामस्वरूप बगीचों में अनेक कीड़ों एवं बीमारियों का प्रकोप हो जाता है। जिससे फल प्रभावित होती है। अक्सर किसान भाई आम के पौधों में खाद एवं उर्वरक का प्रयोग नहीं करते हैं और यदि करते भी हैं तो ठीक ढंग से नहीं। कांट–छांट के बारे में भी किसानों को सही जानकारी का अभाव है, जबकि आम के बगीचों में अच्छे फूल एवं फल लगने के लिए खाद एवं उर्वरक प्रयोग, काट–छांट, सिंचाई तथा दवाइयों के छिड़काव पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इस लेख में आम के नये पौधों एवं फल देनेवाली बगीचों के उचित रख–रखाव का मासिक कार्यक्रम दिया जा रहा है जो किसानों के लिए अत्यन्त उपयोगी होगा।

नये बगीचों का प्रबन्ध एवं देखरेख

अप्रैल-मई

- मिट्टी की जाँच कराएँ
- नया बाग लगाने के लिए खेत की अच्छी तैयारी करें 10×10 मी. (आम्रपाली किस्म के लिए 5×5 मी॰ पर रेखांकन करें।
- चिह्नित बिन्दु पर 3.0 3.0 3.0 फिट आकार के गड्ढे तैयार करें।
- स्थापित बाग में दोहरी जुताई करें।
- स्थापित बाग में छोटे पौधों को थाला विधि से सिंचाई करें।
- पौधों को तेज गर्म हवा (लू) से बचाने के लिए छप्पर बनायें।

जून-जुलाई

- नया बाग लगाने के लिए वर्षा प्रारंभ होने पर तैयार गड्ढे को खाद एवं उर्वरक के मिश्रण से भर दें। इसके लिए गोबर की खाद 20–30 कि.ग्रा. (2 से 3 टोकरी), करंज या नीम की खली 2 कि.ग्रा. हड्डी का चूर्ण अथवा सिंगल सुपर फस्फेट 1 कि.ग्रा. डर्सबान/रडार (10 प्रतिशत धूल) या 20 ग्रा. फ्यूराडॉन 3 जी/थीमेट 10 जी को खेत की उपरी सतह की मिट्टी में अच्छी तरह से मिलाकर गड्ढ़ा भर दें।
- प्रारंम्भ के 2–3 वर्ष तक आम के पौधों को 30 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद, 2 कि.ग्रा. करंज की खली, 200 ग्राम यूरिया, 150 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति पौधा प्रति वर्ष की दर से दें।

- पूरी खाद एवं आधी उर्वरक की मात्रा का प्रयोग करें एवं शेष आधे उर्वरक को सितम्बर माह में वृक्ष के क्षत्रक के नीचे गोलाई में देकर अच्छी तरह से मिला दें।
- नये बाग लगाने के लिए एक बारिश होने पर जब गड्ढ़े की मिट्टी दब जाए तब नये पौधों का रोपण गड्ढे में बीचों–बीच करें।
- थालों की गुड़ाई करें एवं खर–पतवार नियंत्रण करें।

अगस्त-सितम्बर

- आवश्यकतानुसार खर–पतवार तथा दीमक का नियंत्रण करें। प्रति पौधा 3 मि.ली. क्लोरपाइरीफॉस प्रति ली. पानी में घोलकर वृक्ष के मुख्य तना पर छिड़काव करें।
- यदि वर्षा नहीं हो रही हो तो पौधों की हल्की सिंचाई करें।
- शेष बची उर्वरक की मात्रा को वृक्ष के क्षत्रक के नीचे गोलाई में देकर अच्छी तरह से मिला दें।

अक्टूबर-नवम्बर

- बगीचों में खरपतवार नियंत्रण हेतु जुताई करें।
- छोटे पौधों को पाला से बचाने क लिए नियमित सिंचाई करें।
- यदि पत्ती खाने वाले कीड़े का प्रकोप देखें तो उसके नियंत्रण के लिए क्वीनालफॉस दवा का 1.5 मि.ली. मात्रा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 15 दिनों के अन्तराल पर 2 छिड़काव करें।
- नवजात नये पौधे को ठंड से बचाने के लिए खरपतवार की झोपड़ी का निर्माण करें।

दिसम्बर एवं जनवरी

- आवश्यकतानुसार पौधों को ठंड से बचाने के लिए खरपतवार की झोपड़ी का निर्माण करें।

दिसम्बर एवं जनवरी

- पौधों की सिंचाई एवं दीमक नियंत्रण का कार्यक्रम जारी रखें।
- पौधे को उचित ढाँचा देने के लिए कटाई–छंटाई करें।
- पत्ती खाने वाले कीड़ों के नियंत्रण के लिए इमडाक्लोर दवा की 0.3 मि.ली. मात्रा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 15 दिनों के अन्तराल पर 2 छिड़काव करें।

फल देने वाले बगीचों का प्रबन्ध एवं देखरेख

अप्रैल-मई

- बाग की दोहरी जुताई करें।
- खाद एवं उर्वरक प्रयोग के लिए मिट्टी की जाँच कराएँ।

- फल मक्खी के वयस्क कीटों को फंसाने के लिए मिथाइल यूजीनोल ट्रैप का इस्तेमाल करें।
- आवश्यकतानुसार पौधों की सिंचाई करें।
- फलों की तोड़ाई करें।
- फल मक्खी के नियंत्रण करने के लिए इमिडाक्लोरोप्रिड दवा का (0.3) मि.ली./ ली. पानी की दर से) 2–3 छिड़काव करें।

जून-जुलाई

- फल तोड़ाई के बाद सूखी एवं रोग ग्रसित शाखाओं की कटाई–छंटाई करें। मुख्य तने से 1.5 से 2 मी. की दूरी पर पौधों के क्षत्रक के नीचे गोलाई में 30 से.मी. गहरी 60 से.मी. चौड़ी नाली/खाई बनाकर खाद एवं उर्वरक का प्रयोग करें।
- 15–20 वर्षों से पूर्ण विकसित वृक्ष में गोबर की सड़ी खाद 80–100 कि.ग्रा., करंज की खली 3–4 कि.ग्रा., यूरिया–2 कि.ग्रा., यूरिया–2 कि.ग्रा., सिंगल सुपर फॉस्फेट – 1.5 कि.ग्रा. एवं म्यूरेट ऑफ पोटाश–0.8 ग्राम प्रति वर्ष की दर से प्रयोग करें।
- पूरी खाद एवं आधी उर्वरक की मात्रा का प्रयोग जून के अन्तिम सप्ताह में करें एवं शेष आधी उर्वरक को सितम्बर माह में वृक्ष के क्षत्रक के नीचे गोलाई में देकर अच्छी तरह से मिला दें।
- खर–पतवार का आवश्यकतानुसार नियंत्रण करें।

अगस्त-सितम्बर

- सिल्ली कीट को रोकथाम के लिए 5–10 अगस्त के बीच क्वीनॉलफॉस (0.04%) का 10–15 दिनों के अन्तराल पर 3 छिड़काव करें। कीट प्रभावित टहनियों या नुकीले गाँठों की छंटाई करें।
- जिंक की कमी के लक्षण दिखाई दे तो 150–200 ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति वृक्ष की दर से अन्य उर्वरकों के साथ दे दें।

अक्टूबर-नवम्बर

- पौधों के क्षत्रक के नीचे पुवाल या घास की पलवार बिछायें जिससे नमी संरक्षण के साथ–साथ फलों की उपज एवं उनकी गुणवत्ता पर भी अच्छा पड़ता है।
- यूरिया की आधी बची हुई मात्रा को पेड़ों के क्षत्रक के नीचे देकर मिट्टी में मिला दें और पौधों की सिंचाई करें। खेत की दोहरी जुताइ करें और नवम्बर माह में पौधों की सिंचाई न करें।

दिसम्बर-जनवरी

- मधुआ कीट एवं पाउडरी मिल्डयू के नियंत्रण के लिए मंजर निकलने के समय बाविस्टिन या कैराथेन (0.2%) तथा इमिडाक्लोरपिड (0.05%) का पहला एहतियाती छिड़काव करें।

फरवरी-मार्च

- मंजर में फूल आते समय छिड़काव न करें।
- जब फल सरसों के दाने के बराबर हो जाए तब उपरोक्त दवा का दूसरा मटर के दाने के आकार के फल होने पर तीसरा छिड़काव करें।
- गुजिया (मिलीवग) के नियंत्रण के लिए क्वीनॉलफॉस 2 मि.ली. के घोल का 15 दिनों के अन्तराल पर दो छिड़काव करें।
- फलों को ब्लेक टिप रोग से बचाने के लिए मटर के आकार के फलों पर बोरिक अम्ल 4 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 15 दिनों के अन्तराल पर दो छिड़काव करें।

आम के पुराने बगीचों से पुनः पैदावार के लिए जीर्णोद्धार

भारत वर्ष में आम की खेती प्राचीन काल से ही होती आ रही है। वर्तमान समय में देश के लगभग 30–35 प्रतिशत बाग पुराने हो चुके हैं जिनका उत्पादन बहुत ही कम हो गया है। अतः इन्हें रख पाना किसानों के लिए लाभदायक नहीं रह गया है। ऐसी परिस्थिति में किसान या तो पुराने बाग को काटकर नये बाग स्थापित करें जिसमें 5–6 वर्षों में फल आना प्रारम्भ होता है और तब तक किसानों को लगभग 80–90 हजार रूपये प्रति हेक्टेयर का खर्च आता है या फिर पुराने ही पौधों का जीर्णोद्धार करने पर किसानों को 40–50 हजार रूपये प्रति हेक्टेयर की अतिरिक्त आमदनी जलावन लकड़ी से मिल जाती है जिसमें सब्जी, दलहन एवं तिलहन का फसल अर्न्तसस्यन भी किया जा सकता है।

जीर्णोद्धार क्या है?

जीर्णोद्धार का अर्थ पौधों को नया जीवन प्रदान करना है। जो पौधे अधिक पुराने या किसी कारण से कम फल देने लगते हैं तथा आर्थिक दृष्टि से उपयोगी नहीं रह जाते हैं उन्हें वैज्ञानिक तरीकों द्वारा फल देने योग्य बना लिया जाता है।

जीर्णोद्धार क्यों ?

1. वर्तमान में आम की उत्पादकता वृक्षों की क्षमता के अनुसार संतोषजनक नहीं है जिसके अनेक कारण है, जैसे आम के बागों का वैज्ञानिक प्रबन्धन करना, अनियमित फलन, पौधों में कटाई–छंटाई न करने के कारण बगीचों का अधिक घना हो जाना, विश्वसनीय किस्मों के बाग न लगाना, बीमारियों तथा कीटों से ग्रसित पौधों की तरफ कोई ध्यान न देना इत्यादि।
2. अन्य फलदार वृक्षों की तरह आम के पौध भी एक निश्चित आयु के बाद उपज कम देने लगते हैं। प्रायः ऐसा देखा गया है कि 45–50 साल बाद आम के बाग बहुत घने हो जाते हैं। फलस्वरूप पौधों को सूर्य का प्रकाश पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाता इनमें कीट एवं बीमारियों का प्रकोप काफी बढ़ जाता है और उत्पादन में भारी गिरावट आ जाती है। ऐसे बगीचों में आवश्यक कटाई–छंटाई करने से नये कल्ले निकलते हैं जिनमें अगले 2–3 वर्ष में पुष्पन एवं फलन शुरू हो जाता है।

जीर्णोद्धार कब एवं कैसे?

जिन वृक्षों का जीर्णोद्धार करना है उनकी मुख्य शाखाओं को जमीन से 4 मीटर ऊँचाई पर चिन्हित कर लेते हैं। दिसम्बर माह में इन शाखाओं को चिन्हित स्थान से काटते हैं। कटाई करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि शाखाओं को फटने से बचाने के लिए चिन्हित जगह पर नीचे (झुकाव) की तरफ 10–15 सेमी. गहरा सीधा काट दें। तत्पश्चात् उसी निशान पर उपर से कटाई करें। ठीक इसी प्रकार एक दूसरे पर चढ़ी हुई या कीट तथा रोग ग्रसित शाखाओं को भी काट कर निकाल दें। कटाई के तुरन्त बाद फफूंदी नाशक दवा (कॉपर ऑक्सीक्लोराइड) को करन्ज के तेल में मिलाकर शाखाओं के कटे हुए भाग पर लेप लगा दें। बराबर मात्रा में गोबर एवं चिकनी मिट्टी के मिश्रण से तौयार लेप का भी प्रयोग कटे शाखाओं पर कर सकते हैं। इससे सूक्ष्म जीवाणुओं एवं रोगों का संक्रमण रोका जा सकता है।

खाद, उर्वरक एवं सिंचाई : छंटाई करने के बाद प्रत्येक वृक्ष में 2 कि.ग्रा. यूरिया, 2 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट, 1.5 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश एवं 50 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद गोलाई में नाली विधि से दें। उर्वरकों की आधी तथा गोबर खाद की पूरी मात्रा जुलाई माह में एवं शेष आधी उर्वरक की मात्रा अक्टूबर में पौधों के चारों तरफ गोलाई में डालकर गुड़ाई करना चाहिए। पौधों की मार्च एवं अक्टूबर माह में पर्याप्त सिंचाई करनी चाहिए।

अन्तः फसलें : वृक्षों की कटाई के बाद बीच में काफी खुली जगह मिल जाती है जिसमें अन्तः फसलें जैसे अदरक, हल्दी, शकरकन्द, आलू, निनुआ, खीरा आदि फसलों को उगाकर अतिरिक्त आमदनी अर्जित की जा सकती है।

नये कल्लों का विरलीकरण : काटी गई शाखाओं पर 3–4 माह बाद (मार्च–अप्रैल) बहुत से नये कल्ले निकलते हैं। उचित क्षत्रक विकास लिए इनका विरलीकरण बहुत आवश्यक होता हैं कल्लों का विरलीकरण करते समय प्रत्येक शाखा में 8–10 स्वस्थ्य कल्ले ही रखना चाहिए। ध्यान रहे इन कल्लों में उचित दूरी रखें जिससे कल्लों का विकास एवं वृद्धि अच्छा हो सकें। कल्लों की उचित वृद्धि के लिए अक्टूबर माह में 2 प्रतिशत यूरिया का पर्णीय छिड़काव करें।

कीट एवं रोग प्रबन्ध : कटाई–छंटाई के बाद आम के वृक्ष में तना भेदक कीट के नियंत्रण पर विशेष ध्यान देना चाहिए। यह कीट वृक्ष की छाल के अन्दर रहकर लकड़ी को कुतरकर बुरादा छेद से बाहर गिराता है। नियंत्रण के लिए कीडों द्वारा बनाये गये सुराख को लोहे के मार से साफ करके उसमें कीटनाशी दवा नुआन या किरोसिन या पेट्रोल में रूई भिंगोकर ठूँसकर छेद की गीली मिट्टी से बन्द कर दें। नयी कल्लों पर पत्ती काटनेवाली कीड़ों का बहुत प्रकोप होता है इसके नियंत्रण के लिए विरलीकरण के पश्चात् जुलाई माह में कार्बोरिल (सेविन) दवा का 3 ग्राम प्रति लीटर पानी के दर से घोल बनाकर 10–12 दिन के अन्तर पर 2–3 छिड़काव किया जा सकता है।

आम के वृक्षों की कटाई–छंटाई के लगभग 2–3 वर्ष अच्छी वानस्पतिक वृद्धि हो जाती है जिसमें

पुष्पन एवं फलन आने लगते हैं। इस प्रकार यदि पुराने बगीचों का जीर्णोद्धार किया जाय तो लगभग 5–6 वर्षों बाद उनसे 50–60 कि.ग्रा. फल प्रति वृक्ष की दर से प्राप्त किया जा सकता है।

जीर्णोद्धार प्रक्रिया का माहवार विवरण

प्रथम वर्ष

दिसम्बर-जनवरी-

- अनुत्पादक बाग का चुनाव।
- डालियों की चिन्हित करना।
- डालियों की कटाई तथा कटी हुई डालियों को हटानां
- कटे भाग पर गाय का गोबर या कापर आक्सीक्लोराइड का पेस्ट लगाना।

फरवरी-मार्च-

- पूरे तने पर गाय के गोबर का लेप लगाना या चूने में कापर आक्सीक्लोराइड मिलकर पुताई करना।
- पौधों के नीचे गुड़ाई करके थाला बनाना।
- खाली पड़ी जमीन को जायद की फसल के लिये तैयार करना।

अप्रैल-मई-

- पौधों की सिंचाई करना तथा थालों में 1 कि.ग्रा. यूरिया डालकर जुड़ाई करना।
- जायद का फसल लगाना।
- पौधों में यदि तना छेदक का प्रभाव दिखे तो उसका नियंत्रण करना।

जून-जुलाई-

- कल्लों का विरलीकरण करना तथा कटे हुए भाग पर कापर–आक्सीक्लोराइड का लेप लगाना।
- पौधों में नाली विधि से खाद एवं उर्वरक प्रयोग करना।
- पौधों के कटे हुए शिरों पर पालीथीन बाँधना।

अगस्त - सितम्बर-

- तना छेदक कीट का समय पर नियंत्रण करना।
- पत्तियों पर आने वाले कीड़ों तथा बीमारियों पर नियंत्रण करना।
- चुने हुए कल्लों के अतिरिक्त अन्य कल्लों को निकालना।
- खरीफ की फसल की बुवाई करना।

अक्टूबर-नवम्बर-

- पत्तियों पर आने वाले कीड़ों तथा बीमारियों को रोकथाम करना।
- उर्वरक की बाकी बची मात्रा को थालों में देकर गुड़ाई करना तथा मेंड़ बनाना।

- थालों में पुआल की पलवार बिछाना।
- रबी फसल की बुवाई करना।

द्वितीय वर्ष

दिसम्बर-जनवरी-

- चुने हुए कल्लों के अतिरिक्त अन्य निकलने वाले कल्लों की कटाई।
- तना छेदक एवं पत्ती खाने वाले कीटों का समुचित नियंत्रण।

फरवरी-मार्च-

- पत्तियों पर लगने वाले कीड़ों तथा बीमारियों का नियंत्रण।
- पौधों की सिंचाई करना।
- जायद की फसल के लिए तैयारी करना।

अप्रैल-मई-

- थालों की गुड़ाई करने पलवार को मिट्टी में मिलाना।
- पौधों की सिंचाई करना।
- अधिक घने क्षत्रक वाले पौधों में अन्दर की तरफ वाली कुछ शाखाओं को निकालना।

जून-जुलाई-

- खाद एवं उर्वरक का प्रयोग करके थाला बनाना।
- खरीफ फसल के लिए तैयारी करना।

अगस्त - सितम्बर-

- नये पत्तियों पर आने वाले कीड़ों तथा बीमारियों पर नियंत्रण करना।
- थालों कें कल्तार का प्रयोग करना।

अक्टूबर-नवम्बर-

- धान के पुआल की पलवार बिछाना।
- पौधों में सिंचाई रोक देना।
- जिंक सल्फेट 2 ग्राम/लीटर पानी की दर से छिड़काव करना।

तृतीय वर्ष

दिसम्बर-जनवरी-

- पौधों में सिंचाई रोक देना।
- चुने हुए कल्लों के अतिरिक्त अन्य कल्लों को निकाल देना।
- रबी की फसल लगाना।

फरवरी-मार्च-

- मंजर निकलते समय कैराथेन (0.2%) तथा क्लोरोपायरीफास (0.05%) कर एहतियाती छिड़काव करना।

अप्रैल-मई-

- फल लग जाने के बाद कैराथेन तथा क्लोरोपायरीफास का दूसरा छिड़काव करना।
- फल झड़ने से बचाने के लिए प्लैनोफिक्स (2 मिली./5ली.) का छिड़काव करना।

जून-जुलाई-

- पौधों की सिंचाई तथा फलों की तोड़ाई करना।
- खरीफ फसल के लिए तैयारी करना।
- तोड़ाई के बाद पौधों में खाद देना।

अगस्त - सितम्बर-

- पौधों में खाद देना तथा थाला बनाना।
- कल्तार की निर्धारित मात्रा का प्रयोग करना।
- सूटगाल सिला से प्रभावित डालियों को काट कर हटाना।

अक्टूबर-नवम्बर-

- धान के पुआल की पलवार बिछाना।
- पौधों का उचित रखरखाव करना।

इस प्रकार यदि आम के पुराने बागीचों का जीर्णोद्धार किया जाय तो उनसे आने वाले 25–30 वर्षों तक अच्छी उपज ली जा सकती है।

लीची

लीची के फल अपने आकर्षक रंग, स्वाद और गुणवत्ता के कारण भारत में ही नहीं बल्कि विश्व में अपना विशिष्ट स्थान बनाए हुए हैं। लीची उत्पादन में भारत का विश्व में चीन के बाद दूसरा स्थान है। पिछले कई वर्षों में इसके निर्यात की अपार संभावनाएँ विकसित हुई हैं, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में बड़े एवं समान आकार तथा गुणवत्ता वाले फलों की ही अधिक मांग है। अतः अच्छी गुणवत्ता वाले फलों के उत्पादन की तरफ विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इसकी खेती के लिए एक विशिष्ट जलवायु की आवश्यकता होती है, जो सभी स्थानों पर उपलब्ध नहीं है। अतः लीची की बागवानी मुख्य रूप से उत्तरी बिहार, देहरादून की घाटी, उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र तथा झारखंड प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में की जाती है। इसके अतिरिक्त पश्चिम बंगाल, पंजाब, हरियाणा व उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में इसके सफल उत्पादन का प्रयास किया जा रहा है। फलों की गुणवत्ता के आधार पर उत्तरी बिहार के लीची उत्पादन में अपना विशिष्ट स्थान बना रखा है। इसके फल 10 मई से लेकर जुलाई के अन्त तक देश के विभिन्न भागों में पक कर तैयार होते है एवं उपलब्ध रहते हैं। सबसे पहले लीची के फल त्रिपुरा में पक कर तैयार होते हैं। इसके बाद क्रमशः राँची एवं पूर्वी सिंहभूम (झारखंड), मुर्शीदाबाद (पं. बंगाल), मुजफ्फरपुर एवं समस्तीपुर (बिहार), उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र, पंजाब, उत्तरांचल के देहरादून एवं पिथौरागढ़ की घाटी में फल पक कर तैयार होते हैं। बिहार की लीची अपनी गुणवत्ता के लिए देश–विदेश में प्रसिद्ध हो रही हैं। लीची के फल पोषक तत्वों से भरपूर एवं स्फूर्तिदायक होते हैं। इसके फल में शर्करा (11%), प्रोटीन (0.7%), वसा (0.3%), एवं अनेक विटामिन प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। लीची का फल मरीजों एवं वृद्धों के लिए भी उपयोगी माना गया है।

लीची के फल मुख्यतः ताजे रूप में ही खाए जाते हैं। इसके फलों से अनेक प्रकार के परिरक्षित पदार्थ जैसे–जैम, पेय पदार्थ (शरबत, नेक्टर, कार्बोनेटेड पेय) एवं डिब्बा बंद फल बनाए जाते हैं। लीची का शर्बत अपने स्वाद एवं खुशबू के लिए लोकप्रिय होता जा रहा है। 'लीची–नट', फलों को सुखाकर बनाया जाता है जो कि चीन इत्यादि देशों में बड़े चाव से खाया जाता है। लीची के अपरिपक्व खट्टे फलों को सुखाकर खटाई के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है।

लीची का बढ़ता निर्यात

अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में नवम्बर से मार्च तक आस्ट्रेलिया से फरवरी से मार्च तक मारीशस से नवम्बर से जनवरी तक दक्षिण अफ्रीका और मेडागास्कर से लीची के फल उपलब्ध होते हैं। भारत से लीची का ताजा फल मई से जुलाई तक उपलब्ध होता है जिसे अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में निर्यात करके विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है। चूंकि जब भारत में लीची तैयार होती है उस समय अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में लीची फलों का अभाव रहता है। अतः भारत अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में मुख्य निर्यातक के रूप में स्थापित हो सकता है। भारत से लीची निर्यात को बढ़ावा देने के लिए एपीडा की भूमिका प्रमुख है। एपीडा के

रिपोर्ट के अनुसार 2000–2001 वर्ष में भारत से लगभग 1.52 करोड़ रुपये मूल्य का लीची का निर्यात किया गया जो मुख्य रूप से बेल्जियम, सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, बहरीन, आमान कुवैत एवं नार्वे देशों को हुआ।

भूमि एवं जलवायु

लीची की खेती के लिए सामान्य पी.एच.मान वाली गहरी बलुई दोमट मिट्टी अत्यन्त उपयुक्त होती है। उत्तरी बिहार की कलकेरियस मृदा जिसकी जल धारण क्षमता अधिक है इसकी खेती के लए उत्तम मानी गई है। लीची की खेती हल्की अम्लीय एवं लेटराइट मिट्टी में भी सफलतापूर्वक की जा रही है। अधिक जलधारण क्षमता एवं ह्यूमस मिट्टी में इसके पौधों में अच्छी बढ़वार एवं फलोत्पादन होता है। जल भराव वाले क्षेत्र लीची के लिए उपयुक्त नहीं होते अतः इसकी खेती जल निकास युक्त उपरवार भूमि में करने से अच्छा लाभ प्राप्त होता है।

समशीतोष्ण जलवायु लीची के उत्पादन के लिए बहुत ही उपयुक्त पायी गई हैं ऐसा देखा गया है कि जनवरी–फरवरी माह में आसमान साफ रहने, तापमान में वृद्धि एवं शुष्क जलवायु होने से लीची में अच्छी मंजर आता है जिसमें ज्यादा फूल एवं फल लगते हैं। मार्च एवं अप्रैल में गर्मी कम पड़ने से लीची के फलों का विकास अच्छा होता है, साथ ही अप्रैल–मई में वातावरण में सामान्य आर्द्रता रहने से फलों में गूदे का विकास एवं गुणवत्ता में सुधार होता है। समआर्द्रता से फलों में चटखन भी कम हो जाती है। फल पकते समय वर्षा होने से फलों का रंग एवं गुणवत्ता प्रभावित होती है।

किस्में

परिपक्वता के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर लीची की किस्मों की संस्तुति नीचे तालिका में की गई है:

पक्वता वर्ग	**परिपक्वता अवधि**	**किस्में**
अगेती	15–30 मई	शाही, त्रिकोलिया, अझौली, ग्रीन, देशी
मध्यम	01–20 जून	रोज सेन्टेड, डी–रोज, अर्ली बेदाना, स्वर्ण रूपा,
पछेती	10–15 जून	चाइना, पूर्वी, कसबा।

कुछ प्रमुख किस्मों की संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है :–

1. **शाही :** यह देश की एक व्यावसायिक एवं अग्रेती किस्म है जो दिन–प्रतिदिन लोकप्रिय होती जा रही हैं। इस किस्म के फल गोल एवं गहरे लाल रंग वाले होते हैं जो 15–30 मई तक पक जाते हैं। फल में सुगन्धयुक्त गूदे की मात्रा अधिक होती है जो इस किस्म की प्रमुख विशेषता है। फल विकास के समय उचित जल प्रबन्ध से पैदावार में वृद्धि होती है। इस किस्म के 15–20 वर्ष के पौधे से 80–100 कि.ग्रा. उपज प्रति वर्ष प्राप्त की जा सकती है।

2. **चाइना :** यह एक देर से पकने वाली लीची की किस्म है जिसके पौधे अपेक्षाकृत बौने होते हैं। इस किस्म के फल बड़े, शक्वाकार तथा चटखन की समस्या से मुक्त होते हैं। फलों का रंग गहरा लाल तथा गूदे की मात्रा अधिक होने के कारण इसकी अत्यधिक मांग है। परंतु इस किस्म में एकान्तर फलन की समस्या देखी गई है। एक पूर्ण विकसित पेड़ से लगभग 60–80 कि.ग्रा. उपज प्राप्त होती है।

पौधा प्रवर्धन

लीची की व्यावसायिक खेती के लिए गूटी विधि द्वारा तैयार पौधा का ही उपयोग किया जाना चाहिए। बीजू पौधों में पैतृक गुणों के अभाव के कारण अच्छी गुणवत्ता के फल नहीं आते हैं तथा उनमें फलन भी देर से होता है। गूटी तैयार करने के लिए मई–जून के महीने में स्वस्थ एवं सीधी डाली चुन कर डाली के शीर्ष से 40–50 से.मी. नीचे किसी गांठ के पास गोलाई में 2 से.मी. चौड़ा छल्ला बना लेते हैं। छल्ले के ऊपरी सिरे पर आई.बी.ए. के 2000 पी.पी.एम. पेस्ट का लेप लगाकर छल्ले को नम मॉस घास से ढककर ऊपर से 400 गेज की सफेद पालीथीन का टुकड़ा लपेट कर सुतली से कसकर बाँध देना चाहिए। गूटी बाँधने के लगभग 2 माह के अन्दर जड़े पूर्ण रूप से विकसित हो जाती है। अतः इस समय डाली की लगभग आधी पत्तियों को निकालकर एवं मुख्य पौधे से काटकर नर्सरी में आंशिक छायादार स्थान पर लगा दिया जाता है। मॉस घास के स्थान पर तालाब की मिट्टी (40 कि.ग्रा.), सड़ी हुई गोबर की खाद (40 कि.ग्रा.), जूट के बोरे का सड़ा टुकड़ा (10 कि.ग्रा.), अरण्डी की खली (2 कि.ग्रा.), यूरिया (200 ग्रा.) के सड़े हुए मिश्रण का भी प्रयोग कर सकते हैं। पूरे मिश्रण को अच्छी तरह मिलाकर एवं हल्का नम करके एक जगह ढेर कर देते हैं तथा उसे जूट के बोरे या पॉलीथीन से 15–20 दिनों के लिए ढक देते हैं। जब गूटी बांधनी हो तब मिश्रण को पानी के साथ आँटे के तरह गूँथ कर छोटी–छोटी लोई (200 ग्रा) बना ले जिसे छल्लों पर लगाकर पॉलीथीन से बांध दें इस प्रकार गूटी बाँधने से जड़े अच्छी निकलती है एवं पौध स्थापना अच्छी होती है।

पौधा रोपण

लीची का पूर्ण विकसित वृक्ष आकार में बड़ा होता है। अतः इसे औसतन 10×10 मी. की दूरी पर लगाना चाहिए। लीची के पौध की रोपाई से पहले खेत में रेखांकन करके पौधा लगाने का स्थान सुनिश्चित कर लेते हैं। तत्पश्चात चिन्हित स्थान पर अप्रैल–मई माह में 90×90×90 से.मी. आकार के गड्ढे खोद कर ऊपर की आधी मिट्टी को एक तरफ तथा नीचे की आधी मिट्टी को दूसरे तरफ रख देते हैं। वर्षा प्रारम्भ होते ही जून के महीनें में 2–3 टोकरी गोबर की सड़ी हुई खाद (कम्पोस्ट), 2 कि.ग्रा. करंज अथवा नीम की खली, 1.0 कि.ग्रा. हड्डी का चूरा अथवा सिंगल सुपर फास्फेट एवं 50 ग्रा. क्लोरपाइरीफास, 10% धूल/20 ग्रा. फ्यूराडान–3 जी/20 ग्रा. थीमेट–10 जी को गड्ढ़े की ऊपरी सतह की मिट्टी में अच्छी तरह मिलाकर गड्ढ़ा भर देना चाहिए। गड्ढ़े को खेत की सामान्य सतह से 10–15 से.मी. ऊँचे भरना चाहिए। वर्षा ऋतु में गड्ढ़े की मिट्टी दब जाने के बाद उसके बीचों बीच में खुरपी की सहायता से पौधे की पिंडी के आकार की जगह बनाकर पौधा लगा देना

चाहिए। पौधा लगाने के पश्चात् उसके पास की मिट्टी को ठीक से दबा दें एवं पौधे के चारों तरफ एक थाला बनाकर 2–3 बाल्टी (25–30 ली.) पानी डाल देना चाहिए। तत्पश्चात् वर्षा न होने पर पौधों के पूर्णस्थापना होने तक पानी देते रहना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

प्रारम्भ के 2–3 वर्षों तक लीची के पौधों को 30 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद, 2 कि.ग्रा. करंज की खली, 250 ग्रा. यूरिया, 150 ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट तथा 100 ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति पौधा प्रति वर्ष की दर से देना चाहिए। तत्पश्चात् पौधे की बढ़वार के साथ–साथ खाद की मात्रा में वृद्धि करते जाना चाहिए। इस प्रकार 5 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद 250 ग्रा. व 150 ग्रा. करंज की खली, 150 ग्रा. यूरिया, 200 ग्रा., सु.सु.फा., एवं 0.6 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति पौधा प्रति वर्ष की दर से देना चाहिए। करंज की खली एवं कम्पोस्ट के प्रयोग से लीची के फल की गुणवत्ता एवं पैदावार में वृद्धि होती है। लीची के पौधों में फल तोड़ाई के बाद नए कल्ले आते हैं जिनपर अगले वर्ष फलन आती है। अतः अधिक ओजपूर्ण एवं स्वस्थ कल्लों के विकास के लिये खाद, फॉस्फोरस एवं पोटश की सम्पूर्ण एवं नेत्रजन की दो तिहाई मात्रा जून–जुलाई में फल की तोड़ाई एवं वृक्ष के काट–छांट के साथ–साथ देना चाहिये। परीक्षण से यह देखा गया है कि पूर्ण विकसित पौधों के तनों से 250–200 से.मी. की दूरी पर गोलाई में 60 से.मी. गहरी मिट्टी के मिश्रण से भर दें। इस प्रक्रिया से पौधों में नई शोषक जड़ों (फीडर रूट्स) का अधिक विकास होता है और खाद एवं उर्वरक का पूर्ण उपयोग होता है। खाद देने के पश्चात् यदि वर्षा नहीं होती है तो सिंचाई करना आवश्यक है। लीची के फलों के तोड़ाई के तुरन्त बाद खाद दे देने से पौधों में कल्लों का विकास अच्छा होता है एवं फलन अच्छी होती है। शेष नत्रजन की एक तिहाई मात्रा फल विकास के समय जब फल मटर के आकार का हो जाएँ सिंचाई के साथ देना चाहिए। अम्लीय मृदा में 10–15 कि.ग्रा. चूना प्रति वृक्ष 3 वर्ष के अन्तराल पर देने से उपज में वृद्धि देखी गई है। जिन बगीचों में जिंक की कमी के लक्षण दिखाई दे उनमें 150–200 ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति वृक्ष की दर से सितम्बर माह में अन्य उर्वरकों के साथ देना लाभकारी पाया गया है।

सिंचाई एवं जल संरक्षण

लीची के छोटे पौधों में स्थापना के समय नियमित सिंचाई करनी चाहिये। जिसके लिये सर्दियों में 5–6 दिनों तक गर्मी में 3–4 दिनों के अन्तराल पर थाला विधि से सिंचाई करनी चाहिए। लीची के पूर्ण विकसित पौधे जिनमें फल लगना प्रारम्भ हो गया हो उसमें फूल आने के 3–4 माह पूर्व (नवम्बर से फरवरी) पानी नहीं देना चाहिए। लीची के पौधों में फल पकने के छः सप्ताह पूर्व (अप्रैल के प्रारम्भ) से ही फलों का विकास तेजी से होने लगता है। अतः जिन पौधों में फलन प्रारम्भ हो गया है उनमें इस समय उचित जल प्रबन्ध एवं सिचाई की आवश्यकता पड़ती है। पानी की कमी से फल का विकास रूक जाता है एवं फल चटखने लगते हैं। अतः उचित जल प्रबन्ध से गूदे का समुचित विकास होता है तथा फल चटखने की समस्या कम हो जाती हैं विकसित पौधों में छत्रक के नीचे छोटे–छोटे फव्वारे

लगाकर लगातार नमी बनाए रखा जा सकता है। शाम के समय बगीचे की सिंचाई करने से पौधों द्वारा जल का पूर्ण उपयोग होता है। बूँद–बूँद सिंचाई विधि द्वारा प्रतिदिन सुबह एवं शाम चार घंटा पानी (40–50) लीटर देने से लीची के फलों का अच्छा विकास होता है। लीची के सफल उत्पादन के लिए मृदा में लगातार उपयुक्त नमी का रहना अति आवश्यक है। जिसके लिए सिंचाई के साथ–साथ मल्चिंग द्वारा जल संरक्षण करना लाभदायक पाया गया है। पौधे के मुख्य तने के चारों तरफ सूखे खरपतवार या धान के पुआल की अवरोध परत बिछाकर मृदा जल को संरक्षित किया जा सकता है। इससे मृदा के भौतिक दशा में सुधार, खरपतवार नियंत्रण एवं उपज अच्छी होती है।

पौधों की देख-रेख एवं काट-छाँट

लीची के पौधे लगाने के पश्चात् शुरूआत के 3–4 वर्षों तक समुचित देख–रेख करने की आवश्यकता पड़ती है। खासतौर से ग्रीष्म ऋतु में तेज गर्म हवा (लू) एवं शीत ऋतु में पाले से बचाव के लिए कारगर प्रबन्ध करना चाहिए। प्रारम्भ के 3–4 वर्षों में पौधों की अवांछित शाखाओं को निकाल देना चाहिए जिससे मुख्य तने का उचित विकास हो सके। तत्पश्चात् चारों दिशाओं में 3–4 मुख्य शाखाओं को विकसित होने देना चाहिए जिससे वृक्ष का आकार सुडौल, ढांचा मजबूत एवं फलन अच्छी आती है। लीची के फल देने वाले पौधें में प्रतिवर्ष अच्छी उपज के लिए फल तोड़ाई के समय 15–20 से. मी. डाली सहित तोड़ने से उनमें अगले वर्ष अच्छे कल्ले निकलते हैं। तथा उपज में वृद्धि होती है। पूर्ण विकसित पौधों में शाखाओं के घने होने के कारण पौधों के आन्तरिक भाग में सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच पाता है जिससे अनेक कीड़ों एवं बीमारियों का प्रकोप देखा गया है। अध्ययन से यह भी देखा गया है कि लीची के पौधें में अधिकतम फलन नीचे के एक तिहाई छत्रक से होती है तथा वृक्ष के ऊपरी दो तिहाई भाग से अपेक्षाकृत कम उपज प्राप्त होती है। अतः पूर्ण विकसित पौधों के बीच की शाखाएँ जिनका विकास सीधा ऊपर के तरफ हो रहा है, को काट देने से उपज में बिना किसी क्षति के पौधों के अन्दर धूप एवं रोशनी का आवागमन बढ़ाया जा सकता है। ऐसा करने से तना वेधक कीड़ों का प्रकोप कम होता है तथा पौधों के अंदर के तरफ भी फलन आती है। फल तोड़ाई के पश्चात् सूखी, रोगग्रसित अथवा कैची शाखाओं को काट देना चाहिए। पौधों की समुचित देख–रेख, गुड़ाई तथा कीड़े एवं बीमारियों से रक्षा करने से पौधों का विकास अच्छा होता है एवं उपज बढ़ती है।

पूरक पौधो एवं अन्तरशस्यन

लीची के वृक्ष को पूर्ण रूप से तैयार होने में लगभग 15–16 वर्ष का समय लगता है। अतः प्रारम्भिक अवस्था में लीची के पौधों के बीच की खाली पड़ी जमीन का सदुपयोग अन्य फलदार पौधों एवं दलहनी फसलों/सब्जियों को लगाकर किया जा सकता है। इससे किसान भाइयों को अतिरिक्त लाभ के साथ–साथ मृदा की उर्वराशक्ति का भी विकास होता हैं शोध कार्यों से यह पता चला है कि लीची में पूरक पौधों के रूप में अमरूद, शरीफा एवं पपीता जैसे फलदार वृक्ष लगाए जा सकते हैं। ये पौधे लीची के दो पौधों के बीच में रेखांकित करके 5×5 मी. की दूरी पर लगाने चाहिए। इस प्रकार एक

हेक्टेयर जमीन में लीची के 100 पौधे तथा 300 पूरक पौधे लगाए जा सकते हैं। अन्तरशस्यन के रूप में दलहनी, तिलहनी एवं अन्य फसलें जैसे बोदी, फ्रेंचबीन, भिण्डी, मूँग, कुल्थी, सरगुजा, महुआ एवं धान आदि की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है।

पुष्पन एवं फलन

गूटी द्वारा तैयार लीची के पौधों में चार से पाँच वर्षों के बाद फूल एवं फल आना आरम्भ हो जाता है। प्रयोग से यह देखा गया है कि फूल आने के संभावित समय से लगभग तीन माह पहले पौधों में सिंचाई बंद करने से मंजर बहुत ही अच्छा आता है। लीची के पौधों में तीन प्रकार के फूल आते हैं। शुद्ध नर फूल सबसे पहले आते हैं जो मादा फूल आने के पहले ही झड़ जाते हैं। अतः इनका उपयोग परागण कार्य में नहीं हो पाता है। कार्यकारी नर फूल जिनमें पुंकेसर भाग अधिक विकसित तथा अंडाशय भाग विकसित नहीं होता है, मादा फूल के साथ ही आते हैं। इन्हीं नर पुष्पों से मधुमक्खियों द्वारा परागण होता है। लीची में उभयलिंगी मादा फूलों में ही फल का विकास होता है। इन फूलों में पुंकेसर अंडाशय के नीचे होता है अतः स्वयं परागण न होकर कीटों द्वारा परागण की आवश्यकता होती है इसलिये अधिक फलन के लिये मादा फूलों का समुचित परागण होना चाहिए और परागण के समय कीटनाशी दवाओं का छिड़काव नहीं करना चाहिए इससे फलन प्रभावित होती है।

अच्छी फलन एवं गुणवत्ता के लिये सुझाव

लीची के बगीचे में अच्छी फलन एवं उत्तम गुणवत्ता के लिये निम्नलिखित बिन्दुओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए :

1. मंजर आने के सम्भावित समय से तीन माह पहले पौधों में सिंचाई न करें तथा अन्तरशास्यन फसल न लगाएँ।
2. मंजर आने के 30 दिन पहले पौधों पर जिंक सल्फेट (2 ग्रा./लीटर) के घोल का पहला एवं 15 दिन बाद दूसरा छिड़काव करने से मंजर एवं फूल अच्छे आते हैं।
3. फूल आते समय पौधों पर कीटनाशी दवा का छिड़काव न करें तथा बगीचे में पर्याप्त संख्या में मधुमक्खी के छत्ते रखें।
4. फल लगने के एक सत्पाह बाद प्लैनोफिक्स (2 मि.ली./4.8 ली.) या एन.ए.ए. (20मि.ग्रा./ली.) का एक छिड़काव करके फलों को झड़ने से बचाएँ।
5. फल लगने के 15 दिन बाद से बोरिक अम्ल (4 ग्रा./ली.) या बोरेक्स (5ग्र./ली.) के घोल का 15 दिनों के अन्तराल पर तीन छिड़काव करने से फलों का झड़ना कम हो जाता है, मिठास में वृद्धि होती है तथा फल के आकार एवं रंग में सुधार होने के साथ–साथ फल फटने की समस्या भी कम हो जाती है।

समस्याएँ एवं निदान

1. **फलों का फटना :** फल विकसित होने के समय भूमि में नमी तथा तेज गर्म हवाओं से फल अधिक फटते हैं। यह समरूप फल विकास की द्वितीय अवस्था (अप्रैल के तृतीय सप्ताह) में आती है जिसका सीधा संबंध भूमि में जल स्तर तथा नमी धारण करने की क्षमता से है। सामान्य तौर पर जल्दी पकने वाली किस्तों में फल चटखन की समस्या देर से पकने वाली किस्मों की अपेक्षा अधिक पायी जाती है। इसके निराकरण के लिए वायु रोधी वृक्षों को बाग के चारों तरफ लगाएँ तथा अक्टूबर माह में पौधों के नीचे मल्चिंग करें। मृदा में नमी बनाए रखने के लिए अप्रैल के प्रथम सप्ताह से फलों के पकने एवं उनकी तोड़ाई तक बाग की हल्की सिंचाई करें और पौधों पर जल छिड़काव करें। परीक्षणों से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि पानी के उचित प्रबन्ध के साथ–साथ फल लगने के 15 दिनों के बाद से 15 दिनों के अन्तराल पर पौधों पर बोरेक्स (5 ग्रा./ली.) या बोरिक अम्ल (4 ग्रा./ली.) के घोल का 2–3 छिड़काव करने से फलों के फटने की समस्या कम हो जाती है एवं पैदावार अच्छी होती है।

2. **फलों का झड़ना :** भूमि में नेत्रजन एवं पानी की कमी तथा गर्म एवं तेज हवाओं के कारण लीची के फल छोटी अवस्था में ही झड़ने लगते हैं। खाद एवं जल की उचित व्यवस्था करने से फल झड़ने की समस्या नहीं आती है। फल लगने के एक सप्ताह पश्चात् प्लैनोफिक्स (2 मि.ली./4. 8ली.) या एन.ए.ए. (20 मि.ग्रा./ली.) के घोल का एक छिड़काव करने से फलों को झड़ने से बचाया जा सकता है।

3. **लीची की मकड़ी (लीची माइट) :** सूक्ष्मदर्शी मकड़ी के नवजात और वयस्क दोनों ही कोमल पत्तियों की निचली सतह, टहनियों तथा पुष्पवृंतों से चिपक कर लगातार रस चूसते रहते हैं, जिससे पत्तियों की निचली सतह, टहनियों तथा पुष्पवृंतों से चिपक कर लगातार रस चूसते रहते हैं, जिससे पत्तियाँ मोटी एवं लंबी होकर मुड़ जाती है और उनपर मखमली (भेल्वेटी) रूआँ सा निकल जाता है जो बाद में भूरे या काले रंग में परिवर्तित हो जाता है तथा पत्ती में गड्ढ़े बन जाते हैं। पत्तियाँ परिपक्व होने के पहले ही गिरने लगती हैं, पौधे कमजोर हो जाते हैं और टहनियों में फलन बहुत कम हो जाता है। इसकी रोकथाम के लिए समय–समय पर ग्रसित पत्तियों एवं टहनियों को काटकर जला देना चाहिए। सितम्बर–अक्तूबर में नई कोपलों के आगमन के समय केलथेन (1.25 मि.ली./लीटर) का घोल बनाकर 7–10 दिन के अंतराल पर दो छिड़काव लाभप्रद पाया गया है।

4. **टहनी छेदक (शूट बोरर) :** इसके पिल्लू पौधों की नई कोपलों के मुलायम टहनियों से प्रवेश कर उनके भीतरी भाग को खाते हैं। इससे टहनियाँ मुरझा कर सूख जाती हैं और पौधों की बढ़वार रूक जाती है। इसके निराकरण के लए प्रभावित टहनी को तोड़कर जला देना चाहिए एवं सायपरमेथ्रिन (1.0 मि.ली/ली.) या पाडान (2 ग्रा.ली) घोल का कोपलों के आने के समय 7 दिनों के अंतराल पर दो छिड़काव करना चाहिए।

5. **फल एवं बीज बेधक (फ्रूट एवं सीड बोरर) :** फल परिपक्व होने के पहले यदि मौसम में अच्छी नमी का समावेश होता है तो फल वेधक के प्रकोप की संभावना बढ़ जाती है। इसके पिल्लू लीची के गूदे के ही रंग के होते हैं जो डंठल के पास से फलों में प्रवेश कर फल को खाकर उन्हें हानि पहुँचाते हैं। अतः फल खाने योग्य नहीं रहते। इसके प्रकोप से बचाव के लिए फल तोड़ाई के लगभग 40–45 दिन पहले से सायपरमेथ्रिन का दो छिड़काव 15 दिनों के अन्तराल पर करें।

6. **लीची बग :** अक्सर मार्च–अप्रैल एवं जुलाई–अगस्त के महीने में पौधों पर लीची बग का प्रकोप देखा जाता है। इसके नवजात और वयस्क दोनों ही नरम टहनियों, पत्तियों एवं फलों के रस चूसकर उन्हें कमजोर कर देते हैं। व फलों की बढ़वार रूक जाती है। वृक्ष के पास जाने पर एक विशेष प्रकार की दुर्गन्ध से इस कीड़े के प्रकोप का पता लगाया जाा सकता है। इससे बचाव के लिए नवजात कीड़ों के दिखाई देते ही मेटासिस्टाक्स (1.0 मि.ली./ली.) या फॉस्फामिडान (1.25 मि.ली./ली.) के घोल का दो छिड़काव 10–15 दिनों के अन्तराल पर करें।

7. **छिलका खाने वाले पिल्लू (बार्क इटिंग कैटरपिलर) :** ये पिल्लू बड़े आकार के होते हैं जो पेड़ों के छिलके खाकर जीवन निर्वाह करते हैं एवं छिपकर रहते हैं। तनों में छेदकर अपने बचाव के लिए टहनियों के ऊपर अपनी विष्टा की सहायता से जाला बनाते हैं। इनके प्रकोप से टहनियाँ कमजोर हो जाती हैं। और कभी भी टूटकर गिर सकती है। इसका रोकथाम भी जीवित छिद्रों में पेट्रोल या नुवान या फार्मलीन से भिगी रूई ठूँसकर चिकनी मिट्टी से बंद करके किया जा सकता है। इन कीड़ों से बचाव के लिए बगीचे को साफ रखना श्रेयस्कर पाया गया है।

उपज

लीची के पौधों में जनवरी–फरवरी में फूल आते हैं एवं फल मई–जून में पक कर तैयार हो जाते हैं। फल पकने के बाद गहरे गुलाबी रंग के हो जाते हैं और उनके ऊपर के छोटे–छोटे उभार चपटे हो जाते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में लीची के पौधों से उपज कम मिलती है। परन्तु जैसे–जैसे पौधों का आकार बढ़ता है फलन एवं उपज में वृद्धि होती है। पूर्ण विकसित 15–20 वर्ष के लीची के पौधों से औसतन 70–100 कि.ग्रा. फल प्रति वृक्ष प्रतिवर्ष प्राप्त किये जा सकते हैं।

लीची पौधों के उचित काट-छाँट द्वारा फलन में सुधार

लीची झारखण्ड प्रदेश का एक महत्वपूर्ण फल होता जा रहा है। यहाँ की जलवायु एवं मिट्टी लीची की खेती के लिए सर्वथा उचित हैं। पूर्व में ऐसा मानना था कि लीची केवल उत्तरी बिहार में ही हो सकता है, परन्तु अनुसंधानों से यह स्पष्ट हो गया है कि झारखण्ड की लीची उत्तरी बिहार के लीची से किसी मामले में कम नहीं हैं यहाँ की लीची अन्य स्थानों में कम नहीं है। यहाँ की लीची अन्य स्थानों की तुलना में 15–20 दिन पहले पक कर तैयार हो जाती है तथा उनमें मिठास और गुणवत्ता भी अच्छी होती हैं अतः झारखण्ड में लीची के बगीचों में विभिन्न कृषि क्रियाओं को सही समय और उचित तरीके से करना चाहिए। छोटे नवजात पौधों की उचित कांट छाँट तथा ढांचा निर्माण एवं फल देने वाले

पौधा में कांट–छाँट अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रक्रिया है अतः इस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

छोटे पौधों में काट-छाँट

लीची के नवजात पौधों में काट–छाँट का मुख्य उद्देश्य ढांचा निर्माण होता हैं जिससे पौधे लम्बे समय तक सतत् रूप से फल दे सकें। प्रारम्भ के 3–4 वर्षों तक पौधों के मुख्य तने की अवांछित शाखाओं को निकाल देने से मुख्य तनों का अच्छा विकास होता है और अन्तरशस्यन में भी आसानी रहती है। जमीन से लगभग 1 मी. ऊँचाई पर चारों दिशाओं में 3–4 मुख्य शाखाएँ रखने से पौधों का ढांचा मजबूत एवं फलन अच्छी होती है। समय'–समय पर कैंची व सीधा ऊपर की ओर बढ़ने वाली शाखाओं को काटते रहना चाहिए।

फल देने वाले पौधों में काट छाँट

लीची के फलों की तोड़ाई के बाद उसमें नये कल्ले निकलते हैं जिन पर दिसम्बर–जनवरी में मंजर और फूल आते हैं। यदि फलों की तोड़ाई करते समय किसी तेज धारदार औजार से गुच्छे के साथ–साथ 15–20 से.मी. टहनियों को भी काट दिया जाय तो उन्हीं डालियों से जुलाई–अगस्त में औजपूर्ण एवं स्वस्थ कल्लों का विकास होता है जिस पर फलन अच्छी होती है।

लीची एक सदाबहार फलदार वृक्ष है जिसके पूर्ण विकसित पौधों में शाखाओं के घने होने के कारण एक तरफ तो पौधों के भीतरी भाग में सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच पाता वहीं दूसरी तरफ पौधों पर अनेक कीड़ों और बीमारियों का प्रकोप बढ़ जाता है। लीची की अधिकतम फलन क्षत्रक के निचले एक तिहाई भाग में होता है। क्षत्रक के ऊपरी भाग पर लगने वाले फल या तो चिड़ियों द्वारा नष्ट कर दिये जाते हैं या फट जाते हैं जिससे कोई व्यावसायिक उपज नहीं मिल पाती। अतः पूर्ण विकसित पौधों के बीच की शाखाएँ जिनका विकास सीधा ऊपर के तरफ हो रहा है, इसे काट देने से पौधों के भीतरी भाग में धूप एवं रोशनी का आवागमन बढ़ाया जा सकता है साथ ही साथ क्षत्रक के अन्दर के तरफ भी गुच्छे लगने से उपज में बढ़ोत्तरी होती है। लीची के शाही किस्म के पौधों के बीच वाले भाग से शाखाओं को काट देने से उसमें 74 प्रतिशत कल्लों में मंजर आये और प्रति गुच्छे में फलों की संख्या 7.2 फल/गुच्छा रही। बिना काट–छांट किये हुए पौधों में केवल 11.1 प्रतिशत कल्लों में मंजर लगे और औसतन 0.2 फल/मंजर प्राप्त हुए।

इसके अतिरिक्त लीची के पौधों के अन्दर की पतली, सूखी तथा न फल देने वाली शाखाओं को उनके निकलने के स्थान से काट देने से अन्य शाखाओं में कीड़ों एवं बीमारियों का प्रकोप कम हो जाता है। कटाई के बाद शाखाओं के कटे भाग पर कॉपर–ऑक्सीक्लोराइड तथा करंज के मिश्रण तेल का लेप लगा देने से किसी भी प्रकार के संक्रमण की समस्या नहीं रहती है। काट–छाँट के पश्चात् पौधों की समुचित देखरेख, खाद एवं उर्वरक प्रयोग तथा पौधों के नीचे गुड़ाई करने से पौधों में अच्छे कल्लों का विकास होता है तथा उपज भी बढ़ती है।

अच्छी फलत के लिए लीची बाग प्रबन्ध का माहवार कार्यक्रम

1. नये बगीचों का प्रबन्ध :

लीची के नये बाग को लगाने से लेकर उनके फलन में आने तक समुचित बाग प्रबन्धन करना आवश्यक होता है। रेखांकन के पश्चात उचित स्थान पर एवं ठीक ठंग से पौधा लगाने से पूर्व मिट्टी की जाँच करा कर उसके अनुरूप खाद देने तथा समय–समय पर संस्तुत कृषि क्रियायें करने से बाग से निरन्तर एवं भरपूर पैदावार ली जा सकती है। नये बगीचों के लिए संस्तुत की गयी कृषि क्रियाओं का माहवार विवरण इस प्रकार है।

जनवरी

- पौधों की एक सप्ताह के अन्तराल पर हल्की सिंचाई करते रहें।
- दीमक का नियंत्रण करें। इसके लिए 2.0 मि.ली. क्लोरोपायरीफास (डर्सबान/डरमेट) दवा को प्रति लीटर पानी में मिलाकर आवश्यकतानुसार सिंचाई करें।

फरवरी

- पौधों की सिंचाई एवं दीमक नियंत्रण का कार्यक्रम जारी रखें।
- लीफ माइनर कीट से बचाव के लिए नुवान (1.5 मि.ली./ली.) के घोल का छिड़काव करें।

मार्च

- पौधों के ऊपर शीत लहर से बचाव के लिए लगाये गये छप्पर को हटा दें एवं पौधों को उचित ढाँचा देने के लिए आवश्यक काट–छाँट करें।
- पौधों के चारो तरफ गुड़ाई करके थालों में गोबर की सड़ी हुई खाद (20 कि.ग्रा.) एवं करंज की खली (500 ग्रा.) दें एवं आवश्यकतानुसार सिंचाई करें।
- लीची में बग का प्रकोप होने पर मेटासिस्टॉक्स (1 मि.ली./ली.) या रोगर (1 मि.ली./ली.) या फॉसफामिडान (1.25 मि.ली./ली.) के घोल का 10 दिनों के अन्तराल पर आवश्यकतानुसार दो से तीन छिड़काव करें।

अप्रैल

- पोषण तत्व की उपलब्धता जानने के लिए मिट्टी तथा पत्तों की जाँच करायें।
- नया बाग लगाने के लिए खेत की तैयारी करें। रेखांकन करके गड्ढा तैयार कर गड्ढ़ों को 15 दिन खुला छोड़ने के बाद मिट्टी एवं खाद के मिश्रण से भर दें।
- यदि मार्च में पौधों की काट–छांट न की गई हो तो पौधों को उचित ढाँचा देकर सिंचाई करें एवं लू से बचाव के लिए पौधों पर छप्पर लगावें।

- लीची में बग को नियंत्रित करने के लिए छिड़काव करें।

मई

- मिट्टी तथा पत्तों की जांच यदि न किया गया हो तो उसे अवश्य करा लें।
- नया बाग लगाने के लिए रेखांकन का कार्य यथाशीघ्र पूर्ण कर लें।
- पौधों को तेज गर्म हवा (लू) से बचाने के लिए छप्पर देकर अच्छी तरह गुड़ाई करें।

जून

- बगीचों में खरपतवार नियंत्राण हेतु जुताई करके मिट्टी को खुला छोड़ दें।
- नया बाग लगाने के लिए रेखांकन का कार्य यथाशीघ्र पूर्ण कर लें।
- पौधों को तेज गर्म हवा (लू) से बचाने के लिए छप्पर देकर अच्छी तरह गुड़ाई करें।

जुलाई

- बरसात होने के बाद नये बाग लगाने के लिए पौध रोपण करें।
- यदि जून में खाद एवं उर्वरक न दिया गया हो तो उसे प्रथम सप्ताह में अवश्य दे दें।
- लीची बग का प्रकोप होने पर नियंत्रण करें।
- नये कोपलों पर लगने वाले लीफ कटिंग वीविल के नियंत्रण के लिए नुवान (1.5 मि.ली./ली.) के घोल का दो छिड़काव 15 दिनों के अन्तराल पर करें।
- थालों की गुड़ाई करें तथा खरपतवार को जड़ समेत निकाल दें।

अगस्त

- पौधों की गुड़ाई करके थाला बनायें एवं खरपतवार नियंत्रण करें।
- लीची माइट के लक्षण दिखाई देते ही केलथेन या फासफामिडान (1.25 मि.ली./ली.) घो का 10 दिनों के अन्तराल पर 2 से 3 छिड़काव करें।

सितम्बर

- लीची माइट के पूर्ण नियंत्रण के लिए आवश्यकतानुसार एक अतिरिक्त छिड़काव करें तथा ग्रसित टहनियों को काट कर जला दें।
- पौधों के उचित ढाँचा विकास के लिए आवश्यक काट–छांट करें।
- तना वेधक तथा छाल खाने वाले पिल्लू के नियंत्रण के लिए छिद्रों में पेट्रोल या नुवान या फार्मलीन से भीगी रूई ठूंस कर चिकनी मिट्टी से लेप करके छिद्रों को बन्द कर दें।

अक्टूबर

- बगीचे में खरपतवार नियंत्रण हेतु जुताई करें।
- पौधों के थालों की निकाई–गुड़ाई करें तथा पुआल या सूखी घास की पलवार (मिल्विंग) बिछा दें।

- लीची माइट का नियंत्रण करें।

नवम्बर

- शूट बोरर का प्रकोप होते ही साइपरमेथ्रिन (1.0 मि.ली./ली.) या पाडाल (2 ग्रा./ली.) के घोल का दो छिड़काव 7–10 दिनों के अन्तराल पर करें।
- आवश्यकतानुसार दीमक के प्रकोप को नियंत्रित करें।
- ठंडे (पाला) से बचाव के लिए पौधों पर घास की झोपड़ी बनायें एवं हल्की सिंचाई करें।

दिसम्बर

- पौधों की हल्की सिंचाई करें।
- झोपड़ी यदि न बनाया जा सका हो तो उसे अवश्य बना दें।

2. फल देनेवाले बगीचों का प्रबन्ध :

लीची के पौधे जब फल देना प्रारम्भ कर देते हैं तब उनका विशेष ध्यान रखना चाहिए। समय–समय पर उचित मात्रा में खाद में उर्वरक का प्रयोग, काट–छांट, कीट बीमारियों का नियंत्रण एवं दैहिक विकारों को दूर करने से फलोत्पादन में वृद्धि एवं गुणवत्ता में सुधार होता है। फल देने वाले बगीचों में विभिन्न कृषि क्रियाओं का माहवार विवरण इस प्रकार है।

जनवरी

- बाग की गुड़ाई करें तथा सिंचाई बिल्कुल न करें।
- जिंक सल्फेट (2 ग्रा./ली.) के घोल का पहला छिड़काव करें।
- ली माइट ग्रसित शाखाओं को काट कर जला दें।

फरवरी

- पत्तों की जाँच करायें।
- पहले छिड़काव के 15 दिन पश्चात् जिंक सल्फेट का दूसरा छिड़काव करें।
- अच्छे फलत के लिये फूल खिलते समय मधुमक्खी के छत्ते (बॉक्स) रखें।

मार्च

- लीची बग के नवजात कीड़ों के दिखाई देते ही रोगर (1 मि.ली./ली.) या फॉसफामिडान (1.25 मि. ली./ली.) के घो का 2 छिड़काव 10–15 दिनों के अन्तराल पर करें।
- फूल से फल विकसित होने के एक सत्पाह बाद प्लैनोफिक्स (2 मि.ली./5ली.) या एन.ए.ए. (20 मि. ग्रा./ली.) के घोल का छिड़काव करें।
- फल लगाने के 15 दिन बाद छोटे फलों पर बोरेक्स (4 ग्रा./ली.) के घोल का एक छिड़काव करें।

- फल लगने की प्रक्रिया पूर्ण होने के पश्चात् नत्रजन की एक तिहाई मात्रा दें एवं बाग की 5–7 दिनों के अन्तराल पर नियमित सिंचाई करें।

अप्रैल

- बोरान के प्रथम छिड़काव के 15 दिन बाद दूसरा तथा 30 दिन बाद तीसरा छिड़काव करें।
- लीची बग का समुचित नियंत्रण करें।
- आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें। सिंचाई की टपकन (ड्रिप) एवं छिड़काव (स्प्रिंकलर) विधि अधिक लाभकारी है।
- फल एवं बीज वेधक कीट से बचाव के लिए फल तोड़ाई के लगभग 40–45 दिन पहले साइपरमेथ्रिन (1.0 मि.ली. / ली.) के घोल का दो छिड़काव 10–15 दिन के अन्तराल पर करें।

मई

- फल पकने तक नियमित अन्तराल पर पौधों की सिंचाई करते रहे।
- फलों में गहरे लाल रंग होने एवं अच्छी मिठास (TSS 19.00%) विकसित होने पर ही तोड़ाई करें। सुबह का समय फल तोड़ाई के लिए सबसे उपयुक्त होता है। अतः धूप होने से पहले फलों की तोड़ाई करके ग्रेडिंग एवं पैकिंग के लिए पैक हाउस में यथा शीघ्र ले आवें।
- फल तोड़ाइ के समय गुच्छे को 15–20 से.मी. टहनी सहित काटें। रोग / कीट ग्रसित टहनियों तथा अवांछित शाखाओं को निकाल दें। वृक्षाों की कटाई छंटाई करके यह सुनिश्चित करें कि उनके क्षत्रक का आकार एक निश्चित सीमा से अधिक न बढ़े। पौधों की ऊँचाई 4 से 5 मीटर से अधिक न होने दें तथा काट–छांट द्वारा क्षत्रक के संपूर्ण भाग में सूर्य के प्रकाश तथा वायु संचार का समुचित प्रबन्ध करें।
- खाद एवं उर्वरक के प्रयोग के लिए मिट्टी तथा पत्तों की जांच करावें।

जून

- यदि काट–छांट की प्रक्रिया एवं मिट्टी तथा पत्तों की जाँच पूर्ण न हुई हो तो उसे अवश्य पूरा कर लें।
- मध्य एवं देर से पकने वाली किस्मों की तोड़ाई करें।
- खेत की जुताई करें तथा पौधों के क्षत्रक के नीचे पावर टिलर या छोटे ट्रैक्टर से पत्तियों एवं मल्चिंग के अवशेष को मिट्टी में अच्छी तरह मिला दें।
- क्षत्रक के नीचे पौधों के मुख्य तने से 150–200 से.मी. दूरी पर गोलाई में 60 से.मी. गहरी नाली बनाकर 5–6 दिन खुला छोड़ दें। तत्पश्चात् नाली को खाद, उर्वरक एवं मिट्टी के मिश्रण से भर दें। यह क्रिया प्रत्येक तीसरे वर्ष करें। अन्य वर्षों में क्षत्रक के नीचे थाले में खाद एवं उर्वरक फैलाकर मिट्टी में गुड़ाई कर मिला दें।

जुलाई

- अति देर से पकने वाली किस्मों की तोड़ाई करें।
- यदि काट–छांट की प्रक्रिया तथा खाद एवं उर्वरक का प्रयोग पूरा न हो सकता हो तो उसे प्रथम सप्ताह में अवश्य पूरा कर लें।
- लीफ कटिंग वीविल के नियंत्रण के लिए रोग (1.25 मि.ली./ली.) या नुवान (1.5मि.ली./ली.) के घोल का छिड़काव करें।
- खेत की जुताई करें तथा मिट्टी में कीटनाशी (क्लोरोपायरीफॉस 10 प्रतिशत धूल) का प्रयोग करें।

अगस्त

- लीची माइट के प्रकोप होते ही उसके नियंत्रण के लिए केलथेन या फॉसफामिडान (1.25 मि.ली./ली.) के घोल का छिड़काव करें।

सितम्बर

- लीची माइट के नियंत्रण के लिए पहले छिड़काव से 10–15 दिन बाद दूसरा छिड़काव करें।
- खर पतवार नियंत्रण एवं मृदा में सुधार के लिए खेत की जुताई करें।

अक्टूबर

- खेत की जुताई करें तथा पौधों के नीचे जल संरक्षण एवं खरपतवार नियंत्रण के लिए पुआल या सूखी घास से मल्चिंग करें।
- यदि माइट का प्रकोप दिखाई दे तो नियंत्रण करें।

नवम्बर

- शूट बोरर के रोकथाम के लिए कार्बरिल (2 ग्रा./ली.) साइपरमेथ्रीन (1.0 मि.ली./ली.) या पाड़ान (2 ग्रा./ली.) के घोल का 7 दिनों के अन्तराल पर 2 छिड़काव करें।

दिसम्बर

- माईट ग्रसित टहनियों को काट कर नष्ट कर दें।
- बागीचे में खाद एवं पानी का प्रयोग बिल्कुल न करें।

पपीता

पपीता उष्ण एवं शीतोष्ण कटिबंधीय (Tropical and Sub Tropical) क्षेत्रों का प्रमुख फल है। झारखण्ड राज्य पपीते की खेती के लिए वर्षों से जाना जाता रहा है। यहाँ पर पपीते के किस्मों में अपार विविधता देखी गयी है जिसके परिस्करण के अनेक किस्मों का भी विकास किया गया है। पपीते के पके फल सम्पूर्ण उष्ण एवं शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में खाए जाते हैं। पपीते का उपयोग जैम, पेय पदार्थ आइसक्रीम एवं सीरप इत्यादि बनाने में किया जाता है। इसके बीज भी औषधीय गुणों के लिए महत्वपूर्ण हैं। कच्चे फल सब्जी के रूप में उपयोग किए जाते हैं। ओक्सी (1931) के अनुसार पपीते 'अपरिपक्त्व पत्ते' सब्जी के रूप में 'जावा' नामक स्थान पर काम में लाए जाते हैं।

पपीते के अधपके फलों के सूखे लेटेक्स (सफेद तरल पदार्थ) से पपेन तैयार किया जाता है। यह एक प्रोटियो लिटिक एन्जाइम (पाचक एन्जाइम) है जो पेपसीन की तरह कार्य करता है। इसका उपयोग माँस को मुलायम करने, च्युंइग–गम (Chewing gum) तथा सौन्दर्य प्रसाधन बनाने में किया जाता है। इसे पाचकी औषधि के रूप में काम में लाया जाता है। इसमें पाये जानेवाले प्रमुख तत्वों का विवरण निम्न तालिका में दिया जा रहा है।

नमी	–	89.6 प्रतिशत	विटामिन ए.	–	220 आई.यू./100 ग्राम
प्रोटीन	–	0.5 प्रतिशत	विटामिन बी.2	–	0.04 मिलीग्राम/100 ग्राम
वसा	–	0.1 प्रतिशत	विटामिन सी.	–	40 मिलीग्राम/100 ग्राम
कार्बोहाइड्रेट	–	9.5 प्रतिशत	निकोटिनिक एसिड	–	0.2 मिलीग्राम/100 ग्राम
कैलसियम	–	0.01 प्रतिशत	राइबोफ्लेविन	–	250 मिलीग्राम/100 ग्राम
फास्फोरस	–	0.01 प्रतिशत	कैलोरी	–	40 मिलीग्राम/100 ग्राम
लौह तत्व	–	0.4 प्रतिशत			

उत्पत्ति एवं प्रसार :

पपीता, दुनिया के उष्ण एवं शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों का एक महत्वपूर्ण फल है। इसकी उत्पत्ति 'उत्तरी अमेरिका' में हुई है तथा भारत में इसे 'सोलहवीं सदी में लाया गया है। वर्त्तमान में इसकी खेती सभी उष्ण एवं शीतोष्ण कटिबंधीय देशों जैसे आस्ट्रेलिया, हवाई ताइवान, पेरू, फ्लोरिडा, टेक्सास, केलिफोर्निया, गोल्ड कोस्ट, मध्य एवं दक्षिण अफ्रीका के बहुत सारे भाग, पाकिस्तान, बंग्लादेश एवं भारत में की जाती है।

उन्नत किस्में :

वाशिंगटन : फल गोल से अण्डाकार होते हैं। इनका आकार मध्यम से बड़ा हो सकता है जो लगभग 20 से.मी. लम्बा और 40 से.मी. गोलाकार तथा एक फल का वनज 1 किलो तक हो सकता है।

हनूड्यू : यह किस्म उत्तरी भारत में काफी प्रचलित है। इसके एक वृक्ष में फलों की संख्या काफी अधिक होती है जिसमें बीजों की संख्या काफी कम होती है तथा स्वादिष्ट होते हैं।

सी.ओ-1 : यह राँची किस्म से चुना गया है। फल गोल एवं अंडाकार होते हैं जिसके रंग सुनहरे पीले हाते हैं तथा गुद्दे नारंगी रंग के होते हैं।

सी.ओ-2 : यह स्थानीय किस्मों से चुनी गई प्रजाति है। जिसके पौधों की ऊँचाई मध्यम से लेकर लम्बी हो सकती है।

सी.ओ-3 : यह एक संकर प्रजाति है जो सी.ओ.–2 × सनराइज सोलो के क्रॉसिंग के द्वारा तैयार की गई है। इसके पौधे लम्बे तथा स्वस्थ होते हैं।

सी.ओ.-4 : यह भी एक संकर प्रजाति है जो सी.ओ–1 × वाशिंगटन के क्रॉसिंग के द्वारा तैयार की गई है। इसके फल बड़े एवं गुदे मोटे होते हैं। इसे काफी दिनों तक रखा जा सकता है।

पूसा जायेन्ट : यह एक डायोसियस प्रजाति है तथा पौधों में फल एक मीटर की उंचाई पर लगते हैं।

पूसा ड्वार्फ : पौधों में फल 25 से 30 मी. की ऊँचाई पर लगने शुरू हो जाते हैं। अण्डाकार फल लगभग 1–2 कि.ग्रा. के होते हैं। यह प्रजाति सघन बागवानी, पोषक वाटिका तथा गृह वाटिका के लिए उपयुक्त हैं।

पंत पपीता-1 : यह किस्म जी.वी. पंत कृषि एवं तकनीक विश्वविद्यालय, पंतनगर द्वारा निकाला गया है। यह एक बौनी प्रजाति है जिसका फल गोलाकार, मध्यम आकार एवं चिकनी त्वचा वाले होते हैं, जिसमें फल 40–45 से.मी. पौधे की ऊँचाई पर लगते हैं। फलों का औसत एवं चिकनी त्वचा वाले होते हैं, जिसमें फल 40–50 फल प्रति पौधे होता है। यह प्रजाति पपीते के सघन बागवानी के लिए उपयुक्त हैं।

पंत पपीता-2 : यह भी पंतनगर से निकाली गई प्रजाति है। इसके पौधे मध्यम ऊँचाई के होते हैं जिसमें फल 50–60 से.मी. की ऊँचाई पर लगते हैं। फल लम्बे आकार के होते हैं तथा उनका औसत वजन 1.5 कि.ग्रा. होते हैं। प्रति पौधा फलों की संख्या 30–35 तक हो सकती हैं।

सभी पूसा प्रजातियाँ : आई.ए.आर.आई के क्षेत्रीय स्टेशन, पूसा बिहार से निकाली गई है।

अन्य प्रजातियाँ : रेड फ्रेश्ट, फिलिपाइंस, मधुबिंदु, बाखानी, राँची इत्यादि।

मिट्टी : पपीता एक सदाबहार पौधा है तथा इसके लिए जैविक खाद युक्त उर्वरक मिट्टी उपयुक्त होती है जिसमें जलनिकास का उचित प्रबंध हो। इसके पौधे के जड़ में पानी का जमाव नहीं होना चाहिए।

जलवायु : उष्णकटिबंधीय जलवायु पौधे के लिए लाभदायक है। यह बहुत अंश तक गर्मी भी सहन कर सकता है लेकिन निम्न तापमान इसके फलों की बढ़ोत्तरी एवं पकने की क्षमता को कम कर देता हैं पाला पड़ने से पपीते की फसल अधिक प्रभावित होती है अतः पाला प्रभावित क्षेत्राों में इसकी खेती नहीं करनी चाहिए।

क्षेत्रफल एवं उत्पादन : दुनिया के अनेक देशों में पपीता की खेती की जा रही है। भारत वर्ष में पपीता की खेती अनेक राज्यों में की जाती है। झारखण्ड राज्य में राँची, सिमडेगा, गुमला, हजारीबाग, लोहरदगा आदि जिलों में व्यवसायिक स्तर पर पपीता की खेती की जा सकती है। भारत में पपीता मुख्यतः केरल, तमिलनाडु, असम, गुजरात तथा महाराष्ट्र में लगाए जाते हैं।

भारत के विभिन्न राज्यों में पपीते उत्पादन का क्षेत्र एवं क्षमता निम्नांकित है :–

राज्य	क्षेत्र (000 हे.)	उत्पादन (000 टन)
असम	4.15	66.71
गुजरात	3.30	165.00
कर्नाटक	0.90	2.00
केरल	9.67	61.10
लक्ष्यद्वीप	0.04	0.30
मेघालय	0.36	4.43
राजस्थान	0.29	–
पं॰ बंगाल	1.30	32.50

पौध प्रसारण : 1. पपीते का प्रसार बहुधा बीज के द्वारा किया जाता है यह एक पर परागित (क्रॉस पॉलिनेटेड) फसल है। अतः इसका बीज उत्पादन सावधनीपूर्वक करना चाहिए।

बीजदर : एक हेक्टेयर में पौधा लगाने के लिए 500 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है। फरवरी से अगस्त के अंत तक बिचड़े तैयार करने का सही समय है। बीज में अंकुरण 15–20 दिनों में शुरू हो जाता है।

पपीते का प्रसार डाल काट कर भी किया जा सकता है परन्तु इसमें मेहनत और खर्च ज्यादा पड़ते हैं। इसें अधिक संख्या में पौधों की आवश्यकता होती है जिससे उम्दा किस्म के बीज रहित फल वाले वृक्षों का चुनाव कर उससे कटिंग तैयार किए जाते हैं।

बीज के बिचड़ा तैयार करना : पके फलों से बीज एकत्रित किया जाना चाहिए। बीज बोने के लिए खास तौर पर जमीन तैयार करनी चाहिए और क्यारी की मिट्टी को हल्की करने के बाद बीज बोना चाहिए। क्यारी में नमी की भरपूर मात्रा होनी चाहिए और उसे खर–पतवार से ढककर रखना चाहिए, जिससे की मृदा की नमी बनी रहे। जब पौधे 3–4 इंच के हो जाएँ तो उन्हें उखाड़कर एक दूसरे से 6 इंच की दूरी

पर अलग क्यारी में लगाया जाना चाहिए। आवश्यकतानुसार सिंचाई अवश्य की जानी चाहिए। जब ये पौधे 9 इंच के हो जाएँ तो इन्हें उखाड़कर निश्चित स्थान में लगाया जाना चाहिए। डाइओसिओस किस्म के पौधे लगाते समय एक स्थान पर 3 बिचड़ों को लगाना चाहिए।

गड्ढे का आकार एवं खाद की मात्रा : गड्ढे का आकार – 45 × 45 × 45 सेंमी.

खाद की मात्रा : वृक्षारोपण के समय प्रति पौधा उर्वरक देना चाहिए, नाईट्रोजन– 150–200 ग्राम, फॉस्फोरस–200–250 ग्राम, पोटाशियम–100–150 ग्राम। तीनों उर्वरक 2–3 खुराक में वृक्ष लगाने से पहले फूल आने के समय तथा फल लगने के समय दे देना चाहिए।

बिचड़े लगाने का समय : मार्च से सितम्बर। नर पौधे एक पोलिनेटर के रूप में कार्य करते हैं। प्रत्येक 20 मादा पौधों के साथ एक नर पपीते का पौधा लगाना चाहिए। (5–10 प्रतिशत तक नर पौधे लगाए जा सकते हैं)।

सिंचाई : नमी की कमी और अधिकता के कारण फल उत्पादन कम हो जाता है, इसलिए जाड़े के दिनों में 15 दिन के अंतराल पर तथा गर्मी के दिन में 7–10 दिन के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। जब पेड़ फल से लदा हो तो उस समय सिंचाई करना अति आवश्यक है।

निकाई-गुड़ाई : जिस खेत में पपीता लगा हो, वहाँ के खरपतवार को हटा देना चाहिए, क्योंकि पपीता की जड़ ऊपरी सतह में छितरायी रहती है। ऐसा नहीं करने से फल उत्पादकता घट सकती है। प्रथम वर्ष गहरी जुताई बहुत जरूरी है क्योंकि खरपतवार ज्यादा होने से पानी खेत में जम जाता है और पौधे मर जाते हैं।

मिट्टी चढ़ना : वर्षा शुरू होने से पहले प्रति पेड़ गड्ढा में 30 से.मी. व्यास से मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए जिससे पेड़ सीधा रहे।

तुड़ाई : परिपक्व फल, एक दिन के अंतराल पर पक जाते हैं तथा उसके छिलके का रंग हरे से पीलेपन में परिवर्तित हो जाते हैं। जब फल का तरल पदार्थ (लेटेक्स) पानी की तरह हो जाए तो समझ लेना चाहिए कि फल तैयार हो गया है। 12–14 महीने के अन्दर फल की पहली तुड़ाई हो जाती है। उत्तरी भारत में, फल बसंत ऋतु एवं गर्मी में तैयार हो जाता है। पहाड़ी क्षेत्रों में फरवरी से मई के महीनों में फल तैयार होते हैं।

उपज : पहले दो वर्ष, हमें अधिक उपज प्राप्त होती है वनस्पति, तीसरे वर्ष के। नायक (1949) के अनुसार– 30 से 50 फल प्रत्येक (वजन 450 ग्राम से 7.2 किलो)। 40–45 फल प्रत्येक पेड़ (विश्वास 1981)। वजन 1.2 ग्राम से 3.4 कि.ग्रा। हवाई में 30 से 80 टन/एकड़–सोलो पपीते की उपज प्राप्त की गई। राम (1983) के अनुसार, पूसा में, पूसा नन्हा किस्म से 60–65 टन प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त की गयी जिसमें दूरी 1.25 × 1.25 से.मी. दी गई थी।

पैकिंग एवं भण्डारण : इसके फल को एक सतही कार्टून बक्से में पैक किया जाता है जिसके अन्तर्गत

दो फलों के बीच पेकेजिंग मेटेरियल को रखकर पैक किया जाता है। फलों के पकने तथा स्टोरेज (भण्डारण) के लिए लगभग 20 डि.से. तापमान उपयुक्त होता है।

पपेन : अपपिरक्व पपीते में दूधिया तरल पदार्थ पाया जाता है जिसके सूखे स्वरूप को 'पपेन' कहा जाता है। औद्योगिक क्षेत्र में इसकी काफी महत्ता है जैसे औषधि मिल एवं टैनिन उद्योग में। इसका उपयोग क्रीम, दंतमंजन, सिल्क तथा रेऑन के कपड़ों को डिगमिंग करने में होता है। अमाशय तथा आंत के कैंसर को पता लगाने में भी पपेन का उपयोग होता है। यह डिपथेरिया के इलाज में भी सहायक होता है।

पपीते से पपेन उत्पादन

पपेन उत्पादन विभिन्न कारकों द्वारा प्रभावित होता है। जो इस प्रकार है–

1. **फल का आकार :** पपेन निकालने में फल का आकार एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता हैं यह पाया गया है कि अण्डाकार फलों में पपेन की मात्रा अधिक होती है। 14'3 से.मी. लम्बे तथा 10'9 सें.मी. चौड़े फल में पपेन की सबसे अधिक मात्रा पायी गयी है।
2. **फलों की परिपक्वता :** अधपके परन्तु पूर्ण रूप से तैयार फल में अत्यधिक पपेन की मात्रा होती है। ढाई महीने या 75 दिन पुराने फल में पपेन की मात्रा अधिक पायी जाती है।
3. **मौसम :** बेकर (1950) ने पाया कि तरल पदार्थ (लेटेक्स) का प्रवाह न्यूनतम तापमान (10 डि.से.) में अधिक होता है। केन्द्रीय खाद्य तकनीक अनुसंधान संस्थान (मैसूर) से रिपोर्ट के अनुसार, पपेन की मात्रा अक्टूबर महीने में अधिक पायी जाती है।
4. **प्रजाति :** पपेन की मात्रा, पपीते की प्रजाति पर भी निर्भर करती है। माधवराय (1977 ए.) के अनुसार सी.ओ–2 नामक पपीते की प्रजाति में 100–120 कि.ग्रा. पपेन प्रति एकड़ पाया जाता है। 6 महीने के अंतराल में सी.ओ–2 प्रजाति द्वारा लगभग 686.29 ग्राम प्रति (700 ग्राम) पौधे पपेन निकाला जाता है।
5. **इथरेल का प्रभाव :** वैज्ञानिकों ने पाया कि कुर्ग हनीड्यू नामक पपीते की प्रजाति में 200 पी.पी.एम इथरेल का छिड़काव, तरल पदार्थ (लेटेक्स के प्रवाह को 172 प्रतिशत तक बढ़ा देता है।
6. **पपेन उत्सर्जन :** पपीते के वैसे फल जो करीब 90–100 दिन पुराने हो (पूर्णतः परिपक्व परन्तु पके नहीं) को चुन लिया जाता है। सुबह के समय लगभग 10.00 बजे पपीते को काटकर इसके लेटेक्स को एक बर्त्तन में जमा कर लिया जाता है, जिसे धूप में (50–55 डि.सें.) पर सुखा जाता हैं सुखाने से पहले पोटैशियम मेटाबाइसल्फेट (0.05 प्रतिशत) : लेटेक्स में मिलाया जाता है ताकि उसके भंडारण अवधि बढ़ जाए। सूखे पपेन को चूर्ण कर उसे बर्त्तन में संरक्षित कर लिया जाता है।
7. **पपेन की मात्रा (उपज) :** एक पपीते का पेड़ 227 ग्राम तक पपेन देता है। प्रति एकड़ 45.4 कि.ग्रा. पपेन का उत्पादन होता है।

पपीता की मुख्य समस्याएँ

पपीता में मुख्य रूप से नर पौधों की अधिकता तथा पौधों पर रिंग स्पाट वायरस या पपीता मोजैक वायरस तथा कालर राट की समस्या आती है। बगीचे में ज्यादा पेड़ों के लिए डायोसियस किस्मों को लगाते समय एक स्थान पर 3 पौधे लगायें। इनमें से मादा पेड़ों को छोड़कर नर पौधों को निकाल दें। परागण के लिए 10 प्रतिशत नर पौधों को छोड़ दें। अन्यथा गाइनोडायोसियस किस्मों का प्रयोग करें। रिंग स्पाट वायरस तथा मोजैक के नियंत्रण के लिए पौधों के छोटी अवस्था में ही वायरस तथा मोजैक के नियंत्रण के लिए पौधों के छोटी अवस्था में ही वायरस फैलाने वाले कीटों (एफिड) के नियंत्रण के लिए इमदाक्लोरपीड़ 0.3 मि.ली./ली. का 2–3 छिड़काव करें। वायरस के प्रकोप से बचने के लिए पौधों को भरपूर पोषण दें और एक स्थान पर एक साल ही फसल लें। पपीते की खेती स्थानों को बदल बदल कर लगायें तथा पिछले फसल के अवशेषों एवं रोग ग्रसित पौधों को नष्ट करते रहें। कालर राट के प्रकोप से पौधे जमीन के सतह से ठीक ऊपर गल कर गिर जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए पौधशाला से पौधों को रिडोमिल (2 ग्रा./ली.) दवा का छिड़काव करें, खेत में जलभराव न होने दें और जरूरत पड़ने पर खड़ी फल में भी रिडोमिल (2 ग्रा./ली.) के घोल से जड़ सिंचन करें।

केला

हमारे देश के फलों में केले का प्रमुख स्थान है। इसकी खेती पूर्वी उत्तर प्रदेश में बढ़ती जा रही हैं केले का फल बहुत पोष्टिक होता है। इसमें शर्करा एवं खनिज लवण जैसे फास्फोरस तथा कैल्शियम प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इसकी खेती निम्न बातों को ध्यान में रखकर की जाये तो आर्थिक दृष्टि से लाभकारी होगा।

भूमि

दोमट भूमि जिसका जल निकास अच्छा हो और भूमि का पी॰एच॰ मान 6 से 7.5 के बीच हो।

गड्ढे की खुदाई

गड्ढे की लम्बाई, चौड़ाई एवं गहराई $60 \times 60 \times 60$ से॰मी॰

खुदाई का समय अप्रैल–मई

गड्ढे की भराई

गोबर या कम्पोस्ट की सड़ी खाद (20–25 कि.ग्रा. या 2–3 टोकरी) तथा 100 ग्राम बी.एच.सी. प्रति गड्ढ़ा, ऊपरोक्त पदार्थों को गड्ढे की ऊपर की मिट्टी में मिश्रित करके जमीन की सतह से लगभग 10 से.मी. ऊँचाई तक भरकर सिंचाई कर देनी चाहिए जिससे मिट्टी मिश्रण गड्ढे में अच्छी तरह से बैठ जाए।

पौधों की दूरी एवं संख्या

पौधों एवं कतार की दूरी 1.5 × 1.5 मीटर, 4400 पौधे प्रति हेक्टेयर

लगाने का समय

15 मई से 15 जुलाई

जून का महीना सबसे उपयुक्त है।

किस्में

केले के अनेक किस्में हैं जो इस क्षेत्र में उगायी जा सकती है, जैसे– ड्वार्फ कैवेन्डिश, रोबस्टा, मालभोग, चिनिया, चम्पा, अल्पान, मुठिया/कुठिया तथा बत्तीसा। इन किस्मों के विषय में कुछ जानकारी नीचे दी जा रही है :–

1. **ड्वार्फ कैवेन्डिश :** यह सबसे प्रचलित एवं पैदावार देनेवाली किस्म है। इस पर पनामा उक्ठा नामक रोग का प्रकोप नहीं होता है। इस प्रजाति के पौधे बौने होते हैं व औसतन एक घौंद (गहर) का वजन 22–25 कि.ग्रा. होता है जिसमें 160–170 फलियाँ आती हैं। एक फली का वजन 150–200 ग्रा. होता है। फल पकने पर पीला एवं स्वाद में उत्तम होता है। फल पकने के बाद जल्दी खराब होने लगता है।

2. **रोबेस्टा :** इस किस्म का पौधा लम्बाई में ड्वार्फ कैवेन्डिश से ऊँचा होता है और इसकी घौंद या गहर का वजन अपेक्षाकृत अधिक और सुडौल होता है। यह किस्म प्रर्वचित्ती रोग से अधिक प्रभावित होती है। परन्तु पनामा उकठा के प्रति पूर्णतया प्रतिरोधी है।
3. **मालभोग :** यह जाति अपने लुभावने रंग, सुगन्ध एवं स्वाद के लिये लोगों को प्रिय हैं। लेकिन पनामा उक्ठा रोग के प्रकोप से फसल को हानि होती है। इनके पौधे बड़े होते हैं। फल का आकार मध्यम और उपज औसतन होती है।
4. **चिनिया चम्पा :** यह भी खाने योग्य स्वादिष्ट किस्म है जिससे पौधे बड़े किन्तु फल छोटे होते हैं। इस किस्म को परिवार्षिक फसल के रूप में उगाया जाता है।
5. **अल्पान :** यह वैशाली क्षेत्र में उगाये जाने वाली मुख्य किस्म है। इस जाति के पौधे बड़े होते हैं जिसपर लम्बी घौंद लगती है। फल का आकार छोटा होता है। फल पकने पर पीले एवं स्वादिष्ट होते हैं जिसे कुछ समय के लिये बिना खराब हुए रखा जा सकता है।
6. **मुठिया/कुठिया:** यह सख्त किस्म है। इसकी उपज जल के अभाव में भी औसतन अच्छी होती है। फल मध्यम आकार के होते हैं जिनका उपयोग कच्ची अवस्था में सब्जी हेतु एवं पकने पर खाने के लिये किया जाता है। फल का स्वाद साधारण होता है।
7. **बत्तीसा :** यह किस्म सब्जी के लिये काफी प्रचलित है जिसकी घौंद लम्बी होती है और एक गहर में 250–300 तक फलियाँ आती हैं।

पुत्तियों का चुनाव

2–3 माह पुरानी, तलवारनुमा पुत्तियां हों

टीसू कल्चर से प्रवर्धित पौधे रोपण के लिए सर्वोत्तम होते हैं क्योंकि इनमें फलत शीघ्र तथा समय पर होती है।

खाद एवं उर्वरक

300 ग्राम नाइट्रोजन, 100 ग्राम फासफोरस तथा 300 ग्राम पोटाश प्रति पौधा प्रति वर्ष नाइट्रोजन को पाँच, फासफोरस को दो तथा पोटाश को तीन भागों में बाँट कर देना चाहिए। जिसका विवरण निम्नवत् है–

पौध रोपण के समय	:	फासफोरस 50 ग्राम
पौध रोपण के एक माह बाद	:	नाइट्रोजन 60 ग्राम
पौध रोपण के दो माह बाद	:	नाइट्रोजन (60 ग्राम) + फासफोरस (50 ग्राम) + पोटाश (100 ग्राम)
पौध रोपण के तीन माह बाद	:	नाइट्रोजन (60 ग्राम) + पोटाश (100 ग्राम)
फूल आने के दो माह पहले	:	नाइट्रोजन 60 ग्राम
फूल आने के एक माह पहले	:	नाइट्रोजन (60 ग्राम) + पोटाश (100 ग्राम)

खाद एवं उर्वरक को पौधे के मुख्य तने से 10–15 से.मी. की दूरी पर चारों तरफ गुड़ाई करके मिट्टी में मिला देना चाहिए और पौधे की तुरन्त सिंचाई कर देनी चाहिए।

सिंचाई

सामान्यतः बरसात में (जुलाई–सितम्बर) सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। गर्मियों में (मार्च से जून तक) सिंचाई 5–6 दिन के अंतराल पर करनी चाहिए, सर्दियों में (अक्टूबर से फरवरी तक) 12–13 दिन के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए।

अवरोध परत (मल्चिंग)

पौधों के नीचे पुआल अथवा गन्ने की पत्ती की 8 से.मी. मोटी पर्त अक्टूबर माह में बिछा देनी चाहिए। इससे सिंचाई की संख्या में 40 प्रतिशत की कमी हो जाती है, खर पतवार नहीं उगते तथा उपज एवं भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ जाती है।

पुत्ती निकलना

पौधे के बगल से निकलने वाली पुत्तियों को 20 से.मी. तक वृद्धि करने के पहले ही भूमि की सतह से काट कर निकालते रहना चाहिए। मई–जून के महीने में एक पुत्ती हर पौधे के पास अगले वर्ष पेड़ी की फसल के लिए छोड़ देना चाहिए।

नर फूल से गुच्छे काटना

फल टिकाव हो जाने पर घार के अगले भाग पर लटकते नर फूल के गुच्छे को काट देना चाहिए।

सहारा देना

घार निकलते समय बांस/बल्ली की कैंची बनाकर पौधों को दो तरफ से सहारा देना चाहिए।

मिट्टी चढ़ाना

बरसात से पहले एक पंक्ति के सभी पौधों को दोनों तरफ से मिट्टी चढ़ाकर बाँध देना चाहिए।

कीट एवं रोग नियंत्रण

पत्ती विटिल : यह कीट कोमल पत्तों तथा ताजे बने फलों के छिलके को खाता है। इसका प्रकोप अप्रैल–मई से प्रारम्भ होकर सितम्बर–अक्टूबर तक रहता है। रोकथाम के लिए कार्वरिल 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर पहला छिड़काव फूल आने के तुरन्त बाद तथा दूसरा इसके 15 दिन बाद करना चाहिए।

केले का घुन (बनाना विविल) : इस कीट के प्रौढ़ तथा सुंडियाँ दोनों हानिकारक होते हैं। इसक प्रकोप बरसात में अधिक होता है। भूमि सतह के पास तने अथवा प्रकन्द में छेद बनाकर मादा अंडे देती है। इनसे सुंडियाँ निकलकर तने में छेद करके खाती रहती हैं। इसके फलस्वरूप सड़न पैदा हो जाती है तथा पौधा कमजोर होकर गिर जाता है।

इसकी रोकथाम हेतु–

(क) स्वस्थ कन्द लगाने चाहिए,

(ख) कंदों को लगाने से पहले साफ करके एक मि.ली. क्वीनालफॉस इमल्शन प्रति लीटर पानी के बने घोल में 12 घंटे तक डुबो कर उपचारित कर लेना चाहिए।

(ग) अधिक प्रकोप होने पर एक मि.ली. फासफेमिडान प्रति 3 लीटर पानी अथवा डाईमेथियोयेट 1.0 मि.ली. अथवा आक्सीडीमेटान मिथाइल 1.25 मि.ली. का प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर 15–20 दिन बाद यह छिड़काव दुबारा कर देना चाहिए।

पनामा विल्ट : यह कवक के कारण होता है। इसके प्रकोप से पौधे की पत्तियाँ पीली पड़कर डंठल के पास से नीचे झुक जाती है। अंत में पूरा पौधा सूख जाता है। रोकथाम के लिए प्रोपिकोनाज़ोल के 1.0 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल से पौधों के चारों तरफ की मिट्टी को 20 दिन के अंतर से दो बार तर कर देना चाहिए।

तना गलन (सूडोहर्ट राट) : यह रोग फफूंदी के कारण होता है। इसके प्रकोप से निकलने वाली नई पत्ती काली पड़कर सड़ने लगती है। इससे पौधे की वृद्धि रूक जाती है और पौधा पीला पड़कर सूखने लगता हैं रोकथाम हेतु डाइथेन एम.–45 के 2 ग्राम अथवा बैवेस्टीन के 1.0 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल का 2–3 छिड़काव आवश्यकतानुसार 10–15 दिन के अन्तर से करना चाहिए।

लीफ स्पाट : यह रोग कवक के कारण होता है। पत्तियों पर पीले भूरे रंग के धब्बे बनते हैं। पौधा कमजोर हो जाता है तथा बढ़वार रूक जाती है। रोकथाम हेतु डाईथेन एम.–45 के 2 ग्राम अथवा कापर आक्सीक्लोराइड के 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल 2–3 छिड़काव 10–15 दिन के अंतर से करना चाहिए।

बन्चीटाप : यह विषाणु द्वारा होता है तथा माहू द्वारा फैलता है। रोगी पौधों की पत्तियाँ छोटी होकर गुच्छे का रूप धारण कर लेती हैं। पौधों की वृद्धि रूक जाती है तथा फलत नहीं होती है। रोकथाम हेतु प्रभावित पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए। अगली फसल के रोपण हेतु रोग प्रभावित बाग से पुत्तियाँ नहीं लेनी चाहिए। माहू के नियन्त्रण के लिए दैहिक रसायन जैसे इमिडाक्लोरपिंड 0.3 मि.ली. प्रति लीटर पानी घोल का छिड़काव करना चाहिए।

फलत एवं तोड़ाई

केले में रोपण के लगभग 12 माह बाद फल आते हैं। इसके लगभग 3½ माह बाद घार काटने योग्य हो जाती है। जब फलियाँ तिकोनी न रहकर गोलाई ले लें तो इन्हें पूर्ण विकसित समझना चाहिए।

उपज

एक हेक्टेयर बाग से 60–70 टन उपज प्राप्त की जा सकती है जिससे शुद्ध आय 60–70 हजार तक मिल सकती है।

अमरूद

अमरूद भारत वर्ष का एक प्रमुख फल है जिसकी 1,51,501 हे. भूमि में खेती से 1,63,140 मि. टन (1997–98) उपज प्राप्त हुई। इसके निर्यात से लगभग 10 करोड़ रूपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई। इसकी खेती प्रमुख रूप से उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद, लखनऊ, आगरा, बस्ती, फैजाबाद के साथ–साथ आंध्र प्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र, महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र, गुजरात के उत्तरी एवं मध्य क्षेत्रों तथा झारखंड में सफलतापूर्वक की जाती है। अमरूद का फल ताजे रूप में खाने के अलावा परिरक्षित पदार्थ (जैसी रक्वेश, नेक्टर, साइडर तथा जूस निकालने के बाद बचे गूदे से टॉफी) बनाने के लिए भी प्रयोग किया जाता है। अमरूद के फलों में विटामिन 'सी', लौह एवं अन्य खनिज तत्व प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

भूमि एवं जलवायु

अमरूद की सफल खेती के लिए उचित जल निकासयुक्त बलुई–दोमट मिट्टी अत्यधिक उपयुक्त पायी गई है। झारखंड क्षेत्र की उपरवार मिट्टी जिसका पी.एच.मान सामान्य से थोड़ा कम है अमरूद की खेती के लिए उपयुक्त साबित हो रही है।

यह एक उपोष्ण कटिबन्धीय फल वृक्ष है जो झारखंड के कम आर्द्रता वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। उपोष्ण जलवायु के कारण इस क्षेत्र में अमरूद लम्बे समय तक मिलता रहता है, परन्तु हस्त बहार के फल जो शरद ऋतु में पककर तैयार होते हैं सबसे अच्छे माने जाते हैं। झारखंड की उपोष्ण जलवायु में अमरूद के पौधों में फूल मध्य मार्च से आने प्रारम्भ हो जाते है। जो रूक–रूक कर सितम्बर तक आते रहते हैं एवं इसके फल अगस्त के मध्य से मार्च के अन्त तक प्राप्त होते रहते हैं। इस प्रकार की संभावनायें देश के अन्य जगहों पर संभवतः बहुत कम पायी जाती हैं। यदि नवम्बर से मार्च तक अमरूद में सिंचाई की व्यवस्था की जाये तो इसके फल गुणवत्ता में इलाहाबाद के समतुल्य देखे गये हैं।

किस्में

सरदार (लखनऊ-49) : इस किस्म के वृक्ष मध्य ऊँचाई एवं फैलाव वाले होते हैं। यह एक व्यावसायिक किस्म है जिसके फल अण्डाकार, हल्के हरे से पीले तथा कभी–कभी चित्तीदार होते हैं। इसमें गूदा अधिक एवं बीज कठोर होता है।

इलाहाबाद सफेद : इसके वृक्ष मध्यम आकार और अधिक फैलावदार होते हैं। फल का आकार गोल से चपटा गोल होता है, जो पकने पर हल्के पीले रंग का हो जाता है। इस किस्म के फलों में बीज मुलायम तथा मिठास अधिक होती है। यह एक व्यवसायिक किस्म है जो इलाहाबाद के गंगीय मैदान में बहुत प्रचलित है।

आर्का मृदुला : यह इलाहाबाद सफेदा के बीजू पौधे से चयनित किस्म है। इसके वृक्ष छोटे, मध्यम आकार वाले एवं फैलावदार होते हैं। इस किस्म के फल गोल एवं चपटे आकार के होते हैं जिसमें बीज कम एवं मुलायम होता है। इसका गूदा अधिक मुलायम, मीठा एवं स्वादिष्ट होता है।

अमरूद के प्रमुख किस्मों का तुलनात्मक विवरण निम्नवत् हैं :–

किस्म	फल वजन (ग्रा.)	फल की लंबाई (से.मी.)	फल की चौड़ाई (से.मी.)	कुल घुलनशील ठोस (ब्रिक्स)	अम्लता (%)	विटामिन 'सी' (मि.ग्रा.) 100 ग्रा.	बीज का गुण
लखनऊ–49	235	6.2	6.7	9.5	0.77	150.6	कटोर
इलाहाबाद सफेदा	210	5.0	5.9	11.6	0.98	120.4	मुलायम
अर्का मृदुला	225	5.7	6.0	11.9	0.91	115.8	अति मुलायम
चित्तीदार	285	6.2	7.0	10.5	0.70	149.2	कठोर
एपल कलर	255	5.2	5.9	8.2	0.91	10.0	कठोर
बनारसी	170	5.6	5.0	10.0	0.84	110.5	मुलायम
संगम	145	4.2	4.5	9.2	0.98	100.6	कठोर
बेहद कोकोनेट	210	4.2	6.2	11.2	0.84	120.0	कठोर
पियर शेप्ड	175	4.4	5.0	9.0	0.91	115.0	कठोर
मुस्तफापुर	145	5.4	5.9	9.0	0.98	150.0	कठोर

पौधा प्रवर्धन

व्यावसायिक खेती के लिए अमरुद के पौधे वानस्पतिक विधि से तैयार किये जाते हैं। इस विधि से तैयार पौधे फलन जल्दी देते हैं और किस्म की सत्यरूपता बनी रहती है। इस विधि में गूटी लगाना, दाबा लगाना (स्टूल लेयरिंग) तथा चश्मा बाँधना (पैचबंडिंग) प्रमुख हैं।

गूटी द्वारा : गूटी तैयार करने के लिए जून–जुलाई के महीने में चुनी हुई डाली पर शीर्ष से 40–50 से.मी. पहले गांठ के पास 2 से.मी. की छाल उतार कर छल्ला बनाते है। छल्ले के ऊपरी शिरे पर 1000 पी.पी. एम. आई.बी.ए. का लेप लगाकर छल्ले को नम मॉस घास से ढककर 300 गेज की पॉलीथीन का टुकड़ा लपेट कर सुतली से कस कर बांध देते हैं। गूटी बांधने के करीब 2 माह के अन्दर जड़ें निकल आती हैं। अतः इस समय डाली की लगभग आधी पत्तियों को निकाल कर एवं मुख्य पौधे से काटकर पौधशाला में आंशिक छायादार स्थान पर लगा दिया जाता है। मॉस घास के स्थान पर तालाब की मिट्टी (40 कि. ग्रा.), सड़ी हुई गोबर की खाद (40 कि.ग्रा.), जूट के बोरे का सड़ा हुआ टुकड़ा, (10 कि.ग्रा.) तथा करंज की खली (2 कि.ग्रा.) के सड़े मिश्रण का भी प्रयोग कर सकते हैं।

स्टूल लेयरिंग : स्टूल लेयरिंग करने के लिए गूटी द्वारा तैयार पौधे की 2×2 मी. की दूरी पर नर्सरी में लगाते हैं। जब पौधा एक से दो वर्ष पुराना हो जाये तो उसे मार्च–अप्रैल में जमीन के बराबर काट देते हैं। काटने के बाद उससे कई नये कल्ले निकलते हैं। इन कल्लों पर जमीन से 5–6 से.मी. की ऊँचाई पर गूटी की भांति ही छल्ला बनाकर आई.बी.ए. पेस्ट लगाते हैं। तत्पश्चात गोबर की सड़ी खाद तथा मिट्टी को अच्छी तरह मिलाकर छल्ले को एक देते हैं। पौधे को आवश्यकतानुसार समय–समय पर सिंचाई

करते रहते हैं। स्टूल लेयरिंग में 2 माह के अन्दर जड़ें निकल आती हैं जिनको मुख्य पौधे से अलग करके छायादार स्थान पर लगा दिया जाता है। स्टूलिंग करते समय एक 'नर्स शूट' (बिना छल्ला की हुई) छोड़ देते हैं जो पौधे को भोजन देता रहता है।

पैंच बडिंग : पैच बडिंग द्वारा पौधा तैयार करने के लिए एक साल पुराने बीजू पौधों को मूलवृन्त के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस केन्द्र पर किये गये अध्ययन में मई–जून का महीना अमरूद में पैच बडिंग के लिए सबसे उपयुक्त पाया गया है।

पौधा रोपण एवं देखरेख

अमरूद का पौधा अपेक्षाकृत छोटे कद का होता है। अतः इसे 5×5 मी. की दूरी पर लगाना चाहिए। झारखंड में अमरूद के पौधों को आम, लीची, आँवला और कटहल के बाग में पूरक पौधों के रूप में भी लगाया जा सकता है। प्रति इकाई क्षेत्रफल में अधिक फल पैदा करने के लिए अमरूद को 2.5×2.5×5 मी. की दूरी पर 'डबल हेज रो' तरीके से लगाया जा सकता है। इस क्षेत्र में पौधा लगाने के लिए जुलाई से सितम्बर का समय अत्यंत उपयुक्त पाया गया है। जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो वहाँ फरवरी–मार्च में भी पौध रोपण किया जा सकता है। पौधा लगाने के एक माह पहले निर्धारित दूरी पर 60 × 60 × 60 से.मी. आकार के गड्ढ़े तैयार कर लेना चाहिए। गड्ढ़े को 15 दिन तक खुला छोड़ दें। तत्पश्चात् गड़ढ़े के ऊपर की भुरभुरी मिट्टी में 15–20 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद, 1 कि.ग्रा. करंज/नीम की खली तथा 60 ग्राम एन.पी.के. का मिश्रण मिलाकर गड्ढे को अच्छी तरह भर दें। एक बरसात के बाद जब गड़ढे की मिट्टी दब जाये तब जुलाई के महीने में पौधों की गड्ढे के बीचोबीच में लगाये। पौधा लगाने के बाद उसके चारों किनारों की मिट्टी से अच्छी तरह दबा दें। पौधे के चारों तरफ एक थाला बनाकर 10–15 ली. पानी दे दें एवं पौधों की पूर्ण रूप से स्थापना तक पानी देते रहें।

अमरूद के पौधों में सुन्दर एवं मजबूत ढांचा देने के लिए 2–3 वर्ष तक कटाई–छंटाई की जाती है। ढांचा देते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि जमीन से 30–40 से.मी. तक मुख्य तने पर कोई शाखा न हो। इसी ऊँचाई पर मुख्य तने से 3–4 शाखाओं को चारों तरफ समान रूप से निकलने देनी चाहिए। तदोपरान्त पौधे के आकार को नियमित रखने एवं अच्छी पैदावार के लिए समय–समय पर आवश्यक काट–छांट करते रहना चाहिए।

अमरूद के छोटे में नियमित सिंचाई करते रहना चाहिए। सर्दियों में 20–25 दिन तथा गर्मियों में 10–15 दिन के अन्तराल पर परिवर्तित थाला विधि से सिंचाई करते रहने से पौधों का विकास अच्छा होता है। सिंचाई के बाद समय–समय पर गुड़ाई एवं घास निकालते रहना चाहिए। जब पौधा फलन में आ जाता है तो निर्धारित मौसम की फसल लेने के लिए आवश्यकतानुसार सिंचाई करने से अच्छी उपज प्राप्त होती है। झारखंड क्षेत्र में यह देखा गया है कि यदि अक्तूबर माह में पौधों के थालों में पुआल या घास की पलवार बिछा दी जाये तो फल उपज और गुणवत्ता पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

खाद एवं उर्वरक

अमरूद के बाग से अच्छी गुणवत्तायुक्त अधिक फलोत्पादन के लिए संतुलित मात्रा में खाद एवं उर्वरक का प्रयोग आवश्यक होता है। इस क्षेत्र के लिए पौधों के उम्र के अनुसार निम्नलिखित खाद एवं उर्वरक की मात्रा संस्तुत की गयी है जिसे दो भागों में बांट कर पहला भाग जून–जुलाई तथा दूसरा भाग अक्तूबर माह में देना चाहिए। जून–जुलाई में गोबर की सड़ी खाद, फास्फोरस तथा पोटश की पूरी मात्रा तथा यूरिया की आधी मात्रा तने से एक मी. दूरी पर पौधों के क्षत्रक के नीचे गोई में 15 से.मी. गहरी नाली/खाई में देकर मिट्टी से ढक दें। यूरिया की बची आधी मात्रा को अक्तूबर में पेड़ों के क्षत्रक के नीचे देकर मिट्टी में मिला दें। यदि बरसात न हो रही हो तो खाद के बाद पानी देना आवश्यक होता है जिससे नमी बनी रहे।

पौधे की आयु (वर्ष)	गोबर की सड़ी खाद (कि.ग्रा.)	यूरिया (ग्रा.)	सुपरफास्फेट (ग्रा.)	पोटेशियम सल्फेट सल्फेट (ग्रा.)
1	15	260	375	100
2	30	500	750	200
3	45	780	1125	300
4	60	1050	1500	400
5 वर्ष और अधिक	75	1300	1975	500

फसल प्रबन्धन

साधारणतः अमरूद के पौधों में साल में तीन बार फूल और फल लगते हैं। पहली फसल के फूल फरवरी– मार्च में आते हैं, जिनके फल मई–जून में पककर तैयार होते हैं। इसे 'अम्बे बहार' कहा जाता है। जिन स्थानों पर सिंचाई की समुचित व्यवस्था हो वहाँ पर 'अम्बे बहार' की फसल से अच्छा लाभ कमाया जा सकता है। दूसरी फसल के फूल मई–जून में आते हैं जिसे 'मृग बहार' कहा जाता है। इस बहार के फल बरसात के मौसम में पककर तैयार होते हैं जिसके कारण फलों की गुणवत्ता अच्छी नहीं होती है और उसमें फल छेदक कीट के साथ–साथ बिमारियों का भी प्रकोप अधिक होता है। तीसरी फसल के फूल अक्टूबर–नवम्बर में आते हैं जिसे 'हस्त बहार' कहा जाता है। इस फसल के फल जाड़े में (जनवरी–फरवरी) तैयार होते हैं इस फसल में अपेक्षाकृत अधिक उपज एवं गुणवत्ता वाले फल प्राप्त होते हैं। झारखंड प्रदेश की जलवायु में 'हस्त बहार' की फसल के किसानों को अन्य किसी भी फसल की अपेक्षा अधिक गुणवत्ता के फल एवं ज्यादा उपज प्राप्त होती है। ऐसा देखा गया है कि 'मृग बहार' की फसल को नियंत्रित करने से 'हस्त बहार' की फसल अच्छी होती है। जिसके लिए एक फसल नियमन तकनीक का भी विकास किया गया है जो व्यवसायिक दृष्टि से सरल एवं लाभप्रद है। इसके अन्तर्गत अप्रैल–मई में 10 दिनों के अन्तराल पर पौधों पर यूरिया के 15 प्रतिशत घोल का दो छिड़काव कर दिया जाता है जिससे आने वाले फूल एवं पत्तियाँ गिर जाती हैं। तत्पश्चात् पर्णीय शक्ति से 'हस्त बहार' की फसल में अधिक फूल और फल आते हैं। जिससे उपज में वृद्धि होती है।

उपज एवं विपणन

अमरूद के फल अधपके अवस्था में ही पसन्द किये जाते हैं अतः फलों के रंग एवं गूदे की कठोरता के अनुसार ही तुड़ाई करना चाहिए। दो पत्ती सहित फलों की तुड़ाई 2–3 दिनों के अन्तराल पर करने से बाजार में अच्छी कीमत प्राप्त होती है। फलों को बांस या अरहर के टोकरियों में अमरूद की पत्ती या अखबार के एक तह पर रखकर बाजार में भेजा जा सकता है।

अमरूद का पौधा लगाने के दो वर्ष बाद फल देने लगता है। पाँच वर्ष के एक पौधे के औसतन 30–40 कि.ग्रा. तथा 10 वर्ष पुराने पौधे से 70–80 कि.ग्रा. फल प्रति वर्ष प्राप्त हो जाता है। यदि अच्छी देखरेख की जाये तो अमरूद के बाग से 15–25 वर्ष तक फल का उपज प्राप्त कर सकते हैं।

कीट, रोग एवं नियंत्रण

फल-मक्खी : इस कीट के नवजात भीतरी भाग को खाते हैं। इसकी मादा परिपक्व फलों को छेदकर अंडे देती है। 2–3 दिन बाद अंडे से सूंडी निकल कर गूदे को खाना शुरू कर देती है। प्रभावित फल सड़कर गिर जाते हैं। सूंडी 12–15 दिन बाद फलों के अन्दर या भूमि में प्यूपा में बदल जाती है और बाद में मक्खी बनकर उड़ जाती है। बरसात के फलों को फल मक्खी अधिक प्रभावित करती है। फल–मक्खी के नियंत्रण के लिए डायाफेनथिरोन 1 ग्राम/ली. की दर से पानी में घोल बनाकर फल परिपक्वता के पूर्व 10 दिनों के अन्तर पर 2–3 छिड़काव करें। प्रभावित फलों को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए तथा बागीचे में फल मक्खी के वयस्क नर को फंसाने के लिए फेरोमोन ट्रेप लगाने चाहिए।

तना वेदक : यह अमरूद का एक हानिकारक कीट है जिसका प्रकोप उन बागों में अधिक होता है जिनकी देख–रेख ठीक से नहीं की जाती है। इस कीट की सूंडी मुलायम प्रारोहों के ऊपरी भाग को छेद कर नुकसान पहुँचीती है। इसके रोकथाम हेतु तनें के छिद्रों को साफ कर नुवान (2 मि.ली./ली. पानी) के घोल में रूई थीगा कर छिद्रों में भर कर गीली मिट्टी से बन्द कर देते हैं।

उकठा रोग : उकठा रोग फफूँद के प्रभाव से होता है। रोगग्रस्त पौधे 2–4 सप्ताह में मुरझा कर मर जाते हैं। कभी–कभी आंशिक मुरझा क्लान्ति से कुछ डाल सूख जाते हैं तथा कुछ हरे रहते हैं, पर ऐसे पेड़ भी अगले वर्ष पूर्ण रूप से सूख जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए कालीसेना (एस्पर्जिलस नाइजर के व्यवसायिक स्वरूप) नामक जैव कीटनाशी का पौधरोपण के समय प्रयोग करने से आंशिक सफलता मिली है। इस जैव कीटनाशी की 50 ग्रा. मात्रा व 5 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद के साथ गड्ढ़े में मिलाकर पौध रोपाई करें। पौधों में पोटेशियम एवं करंज की खली के प्रयोग से उकठा रोग की उग्रता में कमी पायी गयी है।

जस्ता की कमी : जस्ता तत्व की कमी होने से पत्तियों का पीला पड़ना, छोटा होना तथा पौधे की बढ़वार कम हो जाने के लक्षण मिलते हैं। इसके नियंत्रण के लिए 2 प्रतिशत जिंक सल्फेट का छिड़काव अथवा 300 ग्राम जिंक सल्फेट (कृषि ग्रेड) का पौधों की जड़ों में देना लाभप्रद पाया गया है।

आँवला

आँवला युफोरबिएसी परिवार का पौधा है। यह भारतीय मूल का एक महत्वपूर्ण फल है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में इसे विभिन्न नामों, जैसे, हिन्दी में 'आँवला', संस्कृत में 'धात्री' या 'अमलकी', बंगाली एवं उड़ीया में, 'अमला' या 'अमलकी', तमिल एवं मलयालम में, 'नेल्ली', तुलगु में 'अमलाकामू', गुरूमुखी में, 'अमोलफल', तथा अंग्रेजी में 'ऐम्बलिक', 'माइरोबालान' या इन्डियन गूजबेरी के नाम से जाना जाता है। अपने अद्वितीय औषधीय एवं पोषक गुणों के कारण, भारतीय पौराणिक साहित्य जैसे वेद, स्कन्दपुराण, शिवपुराण, पद्मपुराण, रामायण, कादम्बरी, चरक संहिता, सुश्रुत संहिता में इसका वर्णन मिलता है। महर्षि चरक ने इस फल को जीवन दात्री अथवा अमृतफलन के समान लाभकारी माना है। अतः इसे अमृत फल तथा कल्प वृक्ष के नाम से भी जाना जाता हैं आँवले की विशेषतायें हैं, प्रति इकाई उच्च उत्पादकता (15–20 टन/हेक्टेयर), विभिन्न प्रकार की भूमि (उसर, बीहड़ खादर, शुष्क, अर्धशुष्क, कान्डी, घाड़) हेतु उपयुक्तता, पोषण एवं औषधीय (विटामिन सी, खनिज, फिनॉल टैनिन) गुणों से भरपूर तथा विभिन्न रूपों में (खाद्य, प्रसाधन, आयुर्वेदिक) उपयोग के कारण आँवला 21वीं सदी का प्रमुख फल हो सकता है। धर्म परायण हिन्दू इसके फलों एवं वृक्ष को अत्यन्त पवित्र मानते हैं तथा इसका पौराणिक महत्व भी है। ऐसा कहा जाता है कि यदि कार्तिक मास में इसके वृक्ष के नीचे बैठ कर विष्णु की पूजा की जाये तो स्वर्ग की प्राप्ति होती है। यदि तुलसी का पौधा नहीं मिले तो भगवान विष्णु की पूजा आँवले के वृक्ष के नीचे बैठ कर की जा सकती है। हिन्दू धर्म में ऐसी मान्यता है कि आँवले के वृक्ष के नीचे पिण्ड दान करने से पितरों को मुक्ति प्राप्त होती है। हिन्दू धर्म के अनुसार कार्तिक मास मे कम से कम एक दिन आँवले के वृक्ष के नीचे भोजन करना अत्यन्त शुभ माना जाता है, जब इसके फल परिपक्व होते हैं। हिन्दू धर्म के अनुसार आँवले के फल का लगातार 40 दिनों तक सेवन करते रहने वाले व्यक्ति में नई शारीरिक स्फूर्ति आती है तथा कायाकल्प हो जाता है।

क्षेत्र एवं वितरण

आँवले को प्राकृतिक रूप से उगे वृक्ष भारत, श्रीलंका, क्यूबा, पोर्ट रिको, हवाई, फ्लोरिडा, ईरान, इराक, जावा, ट्रिनीडाड, पाकिस्तान, मलया, चीन, और पनामा में पाये जाते हैं। परन्तु इसकी खेती भारतवर्ष के उत्तर प्रदेश प्रान्त में ज्यादा प्रचलित है। आज कल आँवले का सघन वृक्षारोपण उत्तर प्रदेश के लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं वाले बीड़ एवं खादर वाले जिलों, जैसे आगरा, मथुरा, इटावा एवं फतेहपुर एवं बुन्देलखण्ड के अर्ध शुष्क क्षेत्रों में सफलतापूर्वक कया जा रहा है। इसके अलावा आँवले के क्षेत्र अन्य प्रदेशों जैसे, महाराष्ट्र गुजरात, राजस्थान, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु के अर्ध शुष्क क्षेत्रों में, हरियाणा के अलावली क्षेत्रों में, पंजाब, उत्तरांचल एवं हिमाचल में तेजी से बढ़ रहे हैं। एक नये आँकड़े के अनुसार भारतवर्ष में आँवले का क्षेत्रफल लगभग 50,000 हेक्टेयर तथा कुल उत्पादन लगभग 1.5 लाख टन आँका गया है।

झारखण्ड राज्य के शुष्क एवं अर्धशुष्क जिलों जैसे– लातेहार, डाल्टरगंज, चतरा, कोडरमा, गिरिडीह, देवघर आदि में आँवला उत्पादन की अपार संभावनाएँ मौजूद हैं।

उपयोग

आँवले के पौधों के प्रत्येक भाग का आर्थिक महत्व है। इसके फलों में विटामिन 'सी' की अत्यधिक मात्रा पायी जाती हैं इसके अतिरिक्त इसके फल लवण, कार्बोहाइड्रेट, फास्फोरस, कैल्शियम, लोहा, रेशा एवं अन्य विटामिनों के भी धनी होते हैं। इसमें पानी 82.2% प्रोटीन 0.50%, वसा 0.10%, रेशा 3.40%, कार्बोहाइड्रेट 14.00%, कैल्शियम 0.05%, फॉस्फोरस 0.02%, लोहा 1.20 (मिली ग्रा. / 100 ग्रा.) पाये जाते हैं। भारत में औषधीय गुणों से युक्त फलों में आँवले का अत्यन्त महत्व है। शायद यह फल ही एक ऐसा फल है जो आयुर्वेदिक औषधि के रूप में पूर्ण स्वास्थ्य के लिए प्रयुक्त होता है। हिन्दू शास्त्र के अनुसार ऐसा कहा जाता है कि तुलसी एवं आँवले के फलों से सिक्त जल से स्नान करना गंगा जल के स्नान करने के तुल्य है।

इसका फल तीक्ष्ण शीतलता दायक एवं मूत्रक और मृदुरेचक होता है। एक चम्मच आँवले के रस को यदि शहद के साथ मिला कर सेवन किया जाय तो इससे कई प्रकार के विकार जैसे क्षय रोग, दमा, खून का बहना, स्कर्वी, मधुमेह, खून की कमी, स्मरण शक्ति की दुर्बलता, कैंसर अवसाद एवं अन्य मस्तिष्क विकार, इन्फ्जलुएन्जा, ठंडक, समय से पहले बुढ़ापा एवं बालों का झड़ना एवं सफेद होने से बचा जा सकता है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि यदि एक चम्मच रोज आँवले का रस, एक कप करेले के रस में मिश्रित करके दो महीने तक प्रातः काल सेवन किया जाय तो प्राकृतिक इन्सुलिन का श्राव बढ़ जाता है। इस प्रकार यह मधुमेह रोग में रक्त मधु को नियंत्रित करके शरीर को स्वस्थ करता है। साथ ही रक्त की कमी, सामान्य दुर्बलता तथा अन्य कई परेशानियों से मुक्ति दिलाता है। इसका प्रतिदिन प्रातः सेवन करने से कुछ ही दिनों में शरीर में नई स्फूर्ति आती है। यदि ताजे फल प्राप्त न हों तो इसके सूखे चूर्ण को शहद के साथ मिश्रित करके सेवन किया जा सकता है। त्रिफला, च्यवनप्राश, अमृतकलेश ख्याति प्रापत स्वदेशी आयुर्वेदिक औषधियाँ हैं, जो मुख्यतः आँवले के फलों से बनायी जाती हैं। आँवला के इन्हीं गुणों के कारण इसे 'रसायन' एवं 'मेखा रसायन' (बुद्धि का विकास करने वाला) की श्रेणी में रखा गया है। आँवले के फलों का प्रयोग लिखने की स्याही एवं बाल रंगने के द्रव्य में भी किया जाता है। इसकी पत्तियों को पानी में उबालने के पश्चात् उस पानी से कुल्ला करने पर मुँह के छाले ठीक हो जाते हैं। ऐसा इसकी पत्तियों में व़िद्यमान टैनिन एवं फिनोल की अधिकता के कारण होता है। यही नहीं, आँवले के फूल को यदि खाया जाय तो वह मृदुरेंचक (पेट साफ) का कार्य करता है एवं इसकी जड़ का सेवल पीलिया रोग को दूर करने में सहायक होता है। हिन्दू पौराणिक साहित्य में आँवले एवं तुलसी की लकड़ी की माला पहनना काफी शुभ माना गया है। इस प्रकार आँवला की लकड़ी भी उपयोगी है।

जलवायु

आँवला एक शुष्क उपोष्ण (जहाँ जाड़ा एवं गर्मी स्पष्ट रूप से पड़ती है) क्षेत्र का पौधा है परन्तु इसकी

खेती उष्ण जलवायु में भी सफलतापूर्वक की जा सकती हैं भारत में इसकी खेती समुद्र तटीय क्षेत्रों से 1800 मीटर ऊँचाई वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जा सकती है। जाड़े में आँवले के नये बगीचों में पाले का हानिकारक प्रभाव पड़ता है परन्तु एक पूर्ण विकसित आँवले का वृक्ष 0–46° सेंटीग्रेड तापमान तक सहन करने की क्षमता रखता है। गर्म वातावरण, पुष्प कलिकाओं के निकलने हेतु सहायक होता है जबकि जुलाई–अगस्त माह में अधिक आर्द्रता का वातावरण सुसुप्त छोटे फलों की वृद्धि हेतु सहायक होता है। वर्षा ऋतु में शुष्क काल में छोटे फल अधिकता में गिरते हैं तथा नए छोटे फलों के निकलने में देरी होती है।

भूमि

आँवला एक सहिष्णु फल है और बलुई भूमि से लेकर चिकनी मिट्टी तक में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। गहरी उर्वर बलुई दोमट मिट्टी इसकी खेती हेतु सर्वोत्तम पायी जाती है। बंजर, कम अम्लीय एवं उस भूमि (पी.एच. मान 6.5–9.5, विनिमय शील सोडियम 30–35 प्रतिशत एवं विद्युत चालकता 9.0 म्होज प्रति से.मी. तक) में भी इसकी खेती सम्भव है। भारी मृदायें तथा ऐसी मृदायें जिनमें पानी का स्तर काफी ऊँचा हो, इसकी खेती हेतु अनुपयुक्त पायी गई हैं।

किस्में

पूर्व में आँवला की तीन प्रमख किस्में यथा बनारसी, फ्रान्सिस (हाथी झूल) एवं चकैइया हुआ करती थी। इन किस्मों की अपनी खूबियाँ एवं कमियाँ रही हैं। बनारसी किस्म में फलों का गिरना एवं फलों का कम भण्डारण क्षमता, फ्रान्सिस किस्म में यद्यपि बड़े आकार के फल लगते हैं परन्तु उत्तम क्षय रोग अधिक होता है। चकैइया के फलों में अधिक रेशा एवं एकान्तर फलन की समस्या के कारण इन किस्मों के रोपण को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। पारम्परिक किस्मों की इन सब समस्याओं के निदान हेतु नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, फैजाबाद ने कुछ नयी किस्मों का चयन किया है जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न है :–

कंचन (एन ए-4)

यह चकइया किस्म से चयनित किस्म है। इस किस्म में मादा फूलों की संख्या अधिक (4–7 मादा फूल प्रति शाखा) होने के कारण यह अधिक फल नियमित रूप से देती है। फल मध्यम आकार के गोल एवं हल्के पीले रंग के व अधिक गूदायुक्त होते हैं। रेशेयुक्त होने के कारण यह किस्म गूदा निकालने हेतु एवं अन्य परिरक्षित पदार्थ बनने हेतु औद्योगिक इकाइयों द्वारा पसन्द की जाती हैं यह मध्यम समय में परिपक्व होने वाले किस्म हैं। (मध्य नवम्बर से मध्य दिसम्बर) तथा महाराष्ट्र एवं गुजरात के शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगायी जा रही है।

कृष्णा (एन.ए-5)

यह बनारसी किस्म से चयनित एक अगेती किस्म है जो अक्टूबर से मध्य नवम्बर में पक कर तैयार हो

जाती है। इस किस्म के फल बड़े ऊपर से तिकोने, फल की सतह चिकनी, सफेद हरी हल्की पीली तथा लाल धब्बेदार होती है। फल का गूदा गुलाबी हरे रंग का, कम रेशायुक्त तथा अत्यधिक कसैला होता है। फल मध्यम भण्डारण क्षमता वाले होते हैं। अपेक्षाकृत अधिक मादा फूल आने के कारण, इस किस्म की उत्पादन क्षमता बनारसी किस्म की अपेक्षा अधिक होती है। यह किस्म मुरब्बा, कैण्डी एवं जूस बनाने हेतु अत्यन्त उपयुक्त पायी गयी है।

नरेन्द्र आँवला-6

यह चकैइया किस्म से चयनित किस्म है जो मध्यम समय (मध्य नवम्बर से मध्य दिसम्बर) में पक कर तैयार हो जाती है। पेड़ फैलाव लिए अधिक उत्पादन देने वाले होते हैं। (फलों का आकार मध्यम से बड़ा गोल, सतह चिकनी, हरी पीली, चमकदार, आकर्षक) गूदा लगभग रेशाहीन एवं मुलायम होता है। यह किस्म मुरब्बा, जैम एवं कैण्डी बनाने हेतु उपयुक्त पायी जाती है।

नरेन्द्र आँवला-7

यह फ्रांसिस (हाथीझूल) किस्म के बीजू पौधों से चयनित किसम है। यह शीघ्र फलने वाली, नियमित एवं अत्यधिक फलन देने वाली किस्म है। इस किस्म में प्रति शाखा में औसत मादा फूलों की संख्या 9.7 तक पायी जाती है। यह मध्यम समय (मध्य नवम्बर से मध्य दिसम्बर) तक पक कर तैयार हो जाती है। यह किस्म उत्तक क्षय रोग से मुक्त है। फल मध्यम से बड़े आकार, के ऊपर तिकोने, चिकनी सतह तथा हल्के पीले रंग वाले होते हैं। गूदे में रेशे की मात्रा एन ए–6 किस्म से थोड़ी अधिक होती है। इस किस्म की प्रमुख समस्या अधिक फलत के कारण इसकी शाखाओं को टूटना है। अतः फल वृद्धि के समय शाखाओं में सहारा देना उचित होता है यह किस्म च्यवनप्राश, चटनी, अचार, जैम एवं स्क्वैश बनाने हेतु अच्छी पायी गयी है। इस किस्म को राजस्थान, बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तरांचल तथा तमिलनाडु के क्षेत्राों में अच्छी तरह अपनाया गया है।

नरेन्द्र आँवला-10

यह किस्म बनारसी किस्म के बीजू पौधों से चयनित अधिक फलन देने वाली किस्म है। फल देखने में आकर्षक, मध्यम से बड़े आकार वाले, चपटे गोल होते हैं। सतह कम चिकनी, हल्के पीले रंग वाली गुलाबी रंग लिए होती है। फलों का गूदा सफेद हरा, रेशे की मात्रा अधिक एवं फिनाल की मात्रा कम होती है। अधिक उत्पादन क्षमता, शीघ्र पकने के कारण एवं सुखाने एवं अचार बनाने हेतु उपयुक्तता के कारण यह व्यवसायिक खेती हेतु उपयुक्त किस्म है, परन्तु इस किस्म में एकान्तर फलन की समस्या पायी जाती है।

इन सब किस्मों के अलावा लक्ष्मी–52, किसान चकला, हार्प–5, भवनी सागर आनन्द–1, आनन्द–2 एवं आनन्द–3 किस्में विभिन्न शोध संस्थाओं से विकसित की गयी हैं। परन्तु इनकी श्रेष्ठता देश के अन्य भागों में अभी सिद्ध नहीं हो पाई है।

प्रवर्धन एवं मूलवृन्त

आँवले के बाग स्थापना में सबसे बड़ी समस्या सही किस्मों के पौधों का न मिलना है। हाल के वर्षों में आँवले के पौधों की माँग में कई गुना वृद्धि हुइ है। अतः कायिक प्रवर्धन की व्यवसायिक विधि का मानकीकरण आवश्यक हो गया है।

पारम्परिक रूप से आँवले के पौधों के बीच द्वारा या भेंट कलम बंधन द्वारा तैयार किये जाते थे। बीज द्वारा प्रवर्धन आसान एवं सस्ता होता है, परन्तु अपरागित होने के कारण बीज द्वारा तैयार पौधे अधिक समय में फल देते हैं एवं गुण, आकार में भी मातृ पौधों के समान नहीं पाये जाते हैं। आँवले के पौधे ऊपर की तरफ बढ़ने वाले होते हैं। अतः निचली सतह से बहुत कम शाखा निकलती हैं, जिससे भेंट कलम बंधन अधिक सफल नहीं हैं। हाल के वर्षों में आँवले के प्रवर्धन हेतु कई कायिक विधियों का मानकीकरण किया गया है। अब इसका सफल प्रवर्धन पैबंदी चश्मा, विरूपित छल्ला विधि, विनियर कलम एवं कोमल शाखा बंधन द्वारा सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

बीज निकालना

उत्तर भारत में बीज निकालने हेतु चकैइया या देशी किस्मों के फलों को जनवरी या फरवरी माह में एकत्र कर लेते हैं। फलों को धूप में सुखा लिया जाता है। पूरी तरह से सूखने के बाद फल अपने आप फट जाते हैं। और उनके अन्दर से बीज बाहर आ जाते हैं। यदि बीज अपने आप फल से नहीं निकल रहें हों तो हल्का सा दबाव दिया जा सकता है। एक फल से प्रायः छह बीज प्राप्त होते हैं। लगभग एक कुन्तल फल से एक किलोग्राम बीज प्राप्त होता है।

बीज का जमना

बीज को बोने से 12 घंटे पहले पानी में भिगो देना चाहिए। जो बीज पानी में तैरने लगे उन बीजों को फेंक देना चाहिए। मार्च–अप्रैल के महीने में बीजों को जमीन की सतह से थोड़ी उठी हुई क्यारियों में बोना चाहिए। पाली हाउस में बीजों को जल्दी (फरवरी माह में) भी बोया जा सकता है। देर (मई एवं जून माह में) से बोये गये बीजों से उत्पन्न पौधे कलिकायन हेतु उपयुक्त होते हैं। मार्च–अप्रैल में बोये गये बीजों का जमाव करीब दो सप्ताह में हो जाता है तथा बुवाई के बाद 10 से.मी. ऊँची पौध करीब 35–40 दिनों में तैयार हो जाती हैं इस प्रकार की पौध को खोद कर तीन दिनों तक छाया में रख कर पुनः लगाने से अधिकांश पौधे स्थापित हो जाते हैं।

कलिकायन

छह मास से एक वर्ष तक की पौध (मूलवृन्त) कलिकायन के लिए उपयुक्त होती हैं। शाँकुर शाखा का चुनाव ऐसे मातृवृक्ष से करना चाहिए जो अधिक फलत देने वाला हो तथा कीड़ों एवं व्याधियों के प्रकोप से मुक्त हो। उत्तर भारतीय दशाओं में पैबन्दी चश्मा तथा विरूपित छल्ला विधि से मई से सितम्बर माह तक चश्मा करने से 60 से 90 प्रतिशत तक सफलता प्राप्त होती है, जबकि दक्षिण भारतीय दशाओं में ग्रीन

हाउस एवं नेट हाउस की सहायता से आँवले का प्रवर्धन साल के आठ से दस माह तक किया जा रहा है। कलिकायन के अतिरिक्त आँवला का प्रवर्धन वीनियर कलम, कोमल शाखा बंधन के द्वारा 70 प्रतिशत सफलता के साथ किया जा सकता है, लेकिन कलिकायन की सफलता एवं क्षमता को देखते हुए आँवला प्रवर्धन हेतु यह विधि सर्वोत्तम पायी गयी है।

आँवले के प्रवर्धन के लिए पॉलीथीन के थैले, पाली ट्यूब्स, रूट ट्रेनर या स्व–स्थाने बाग स्थापन (मूल रूप से सूखा ग्रस्त क्षेत्र हेतु) आदि विधियों का भी मानकीकरण किया गया है, परन्तु उनके व्यापक प्रसार की आवश्यकता है। आँवले की शाँकुल शाखों को भीगी हुई मॉस घास या अखबार के टुकड़ों में लपेट कर 5–7 दिनों तक परिवहन/भण्डारण किया जा सकता है।

पौध रोपण

कलम बंधन या कलिकायन के द्वारा तैयार पौधों को जुलाई–अगसत या फरवरी के महीने में 8–10 मीटर की दूरी पर रोपाई करते हैं। पौधों की रोपाई वर्गाकार विधि से करते हैं, जिसमें पौधों से पौधों एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी बराबर रखी जाती हैं प्रत्येक पौधों के वर्ग के बीच में एक अन्य पौधा भी लगाया जा सकता है। इस विधि को पूरक विधि या क्विनकन्स भी कहते हैं। इससे बागवान अधिक लाभ के अलावा खाली पड़े क्षेत्र का भी सही उपयोग कर सकते हैं। इस विधि हेतु अन्य फलों में बेर, अमरूद, नींबू, करौंदा एवं सहजन को पूरक पौधें के रूप में लगाना काफी अच्छा साबित हुआ है। कई स्थानों का पौधा रोपण झाड़ीनुमा पंक्ति में भी किया गया है। इस विधि में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 8 मीटर एवं पौधों से पौधों की दूरी घटा कर 4–5 मीटर तक रखते हैं। परती (खाली) भूमि में पौध रोपण से दो मास पूर्व एक घन मीटर का गड्ढा खोद लेते हैं। गड्ढे से निकली मिट्टी को दो भागों में बाँट देते हैं। ऊपरी आधी मिट्टी में तीन से चार टोकरी (25–40 किलोग्राम) सड़ी गोबर की खाद एवं एक किलोग्राम नीम की खली या 500 ग्राम हड्डी का चूरा मिला मिश्रण कर लेते हैं। इस प्रकार से तैयार मिश्रण को गड्ढे में इस प्रकार भरते हैं कि भरा हुआ गड्ढा 6 से 10 से.मी. सतह से उठा रहे। क्षारीय मृदाओं में यदि पौध रोपण करना है तो उपरोक्त मिश्रण में जिप्सम आवश्यकतानुसार 5 से 8 किलोग्राम या पाइराइट या उसर तोड़ खाद एवं 20 किलोग्राम बालू मिला कर गड्ढे की भराई करनी चाहिए। यदि वर्षा न हो तो इस प्रकार से भरे गड्ढ़ों के मध्य में कलमी पौधों को पिण्डी के साथ रोपित कर देना चाहिए एवं चारों तरफ की मिट्टी को अच्छी तरह से दबा देना चाहिए। तत्पश्चात्, हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए। उसर भूमि का रेखांकन करके बीजू पौधों को सीधा लगाना चाहिए तथा उपयुक्त आयु आने पर एक निश्चित ऊँचाई पर इन पर चश्मा चढ़ा देना चाहिए। इस विधि को स्व–स्थाने कलिकायन भी कहते हैं, आँवले की विभन्न किस्मों में स्व–बन्ध्यता पायी जाती है। अतः अधिक उत्पादन हेतु एकान्तर पंक्ति में दो किस्मों को लगाना चाहिए। इसके लिए सबसे उत्तम संयोग एन ए–6 एवं एन ए–7 एवं एन ए–10 या कंचन एवं कृष्णा को पाया गया है।

संधायी एवं छँटाई

आँवले के पौधों को मध्यम ऊँचाई तक विकसित करने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए। नये पौधों को जमीन की सतह से लगभग 75 से.मी. से एक मीटर तक अकेले बढ़ने देना चाहिए। तदुपरान्त शाखाओं को निकलने देना चाहिए जिससे पौधों के ढाँचे का भली प्रकार से विकास हो सके। पौधों को रूपान्तरित प्ररोह प्रणाली के अनुसार रखना चाहिए। शुरू में अधिक कोण वाली दो से चार शाखाएं विपरीत दिशाओं में निकलने देना चाहिए। अनावश्यक शाखाओं को शुरू में निरन्तर हटाते रहना चाहिए। इसके बाद चार से छह शाखाओं को चारों दिशाओं में बढ़ने देना चाहिए। आँवले के फल वाले वृक्षों में नियमित काट–छाँट की आवश्यकता नहीं होती है। आँवला अपने वृद्धि के अनुसार सारे सीमित प्ररोहों को गिरा देता है जो अगले साल की वृद्धि को प्रोत्साहित करते हैं। कमजोर, सूखी, रोग ग्रस्त, टूटी हुई, आपस में मिली हुई शाखाओं एवं मूलवृत्त से निकली हुई कलिकाओं को समय–समय पर निकालते रहना चाहिये।

शिखा रोपण

पुराने, बड़े, कम अच्छी किस्मों के पौधों (जैसी पुरानी किस्में बनारसी, फ्रान्सिस एवं देशी) का शिखा रोपण द्वारा जीणोद्धार या नयी किस्मों में परिवर्तन किया जा सकता है। इस प्रकार के पौधों को जमीन की सतह से 3–4 मीटर की ऊँचाई पर (दिसम्बर–जनवरी माह में) इस प्रकार से काटते हैं कि चारों दिशाओं में 4–6 मुख्य शाखाएँ कटी हुई रहें। इन कटे भागों पर वृक्ष लेप (गाय का गोबर+मिट्टी+पानी) या काली गाय के गोबर का लेप लगा देते हैं, जिससे इन भागों में फफूँदी का प्रकोप न होने पाये। इस प्रकार से कटी हुई मुख्य शाखाओं से 4 से 6 प्ररोह जो कि बाहर की तरू निकल रहे हों, को बढ़ने दिया जाता है। जून–जुलाई माह में इन्हीं प्ररोहों पर उन्नत किस्म की शाँकुर शाखा से कलिकायन कर दिया जाता है। इसके ऊपरान्त जब कलिका फटाव ले लेती है तब प्ररोह के शीर्ष भाग को फुटाव वाली कलिका के ऊपर से काट दिया जाता है। इस प्रकार के पौधों में कीड़े, व्याधियों एवं तेज हवा से नुकसान की अधिक सम्भावनाएं पायी जाती हैं। अतः पूर्ण सुरक्षा का ध्यान रखना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

आँवले की पोषण आवश्यकता पर क्रमबद्ध तरीके से कार्य नहीं हुआ है। खाद की मात्रा मुख्य रूप से मृदा उर्वरकता, पौधों की आयु एवं उत्पादन पर निर्भर करती है। अनुभव के आधार पर खाद एवं उर्वरक की मात्रा निम्न सारणी के अनुसार देनी चाहिए :–

पौधों की आयु (वर्ष)	नाइट्रोजन (ग्रा.)	फॉस्फोरस (ग्रा.)	पोटाश (ग्रा.)	गोबर की खाद (कि.ग्रा.)
1	100	50	100	5
2	200	100	200	10
3	300	150	300	15

पौधों की आयु (वर्ष)	नाइट्रोजन (ग्रा.)	फॉस्फोरस (ग्रा.)	पोटाश (ग्रा.)	गोबर की खाद (कि.ग्रा.)
4	400	200	400	20
5	500	250	500	25
6	600	300	600	30
7	700	350	700	35
8	800	400	800	40
9	900	450	900	45
10 तथा अधिक	1000	500	1000	50

गोबर की खाद की सम्पूर्ण मात्रा, नेत्रजन की आधी मात्रा, फास्फोरस एवं पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा जनवरी–फरवरी माह में फूल आने से पहले डाल देनी चाहिए। शेष नत्रजन की आधी मात्रा जुलाई–अगस्त के महीने में डालनी चाहिए। गोबर की खाद एवं अन्य खादों के मिश्रण को पेड़ की छाया के बराबर बने थालों में फैला कर हल्की गुड़ाई एवं सिंचाई कर देनी चाहिए। क्षारीय मृदाओं में उपरोक्त खाद के मिश्रण के अतिरिक्त 100 ग्राम बोरेक्स (सुहागा), जिंक सल्फेट एवं कॉपर सल्फेट (100 ग्रा. प्रत्येक का) प्रति पेड़, पौधों की आयु एवं ओज का ध्यान में रखते हुए डालना चाहिए। इसके अलावा सूक्ष्म तत्वों, जैसे बोरान, जिंक, कॉपर (0.4 प्रतिशत) का पर्णीय छिड़काव बुझे हुए चूने के साथ मिला कर करने से फलों का गिरना कम हो जाता है तथा फलों की गुणवत्ता में सुधार होता है।

आँवले का जैविक उत्पादन

ज्यादातर आँवले के फलों का उपयोग स्वास्थ्य सुधार एवं औषधीय गुणों के लिए किया जाता है। अतः इसका जैविक उत्पादन बड़ा महत्वपूर्ण है। इस प्रकार से उत्पादित आँवले से तैयार उत्पाद अधिक गुणवत्तायुक्त होने के कारण घरेलू एवं विदेशी बाजार में अधिक सराहे जाते हैं। आँवले के जैविक उत्पादन की दिशा में किये गये प्रारम्भिक कार्य में काफी अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। कई प्रयोग करने के पश्चात् ऐसा पाया गया है कि एक छिड़काव बी.डी.–500 का तथा 1.0 कि.ग्रा. केंचुएँ की खाद एवं 100 ग्रा. काउ पैट पिट प्रति पौधों के थालों में एवं केले की पत्ती एवं धान के पुआल से पलवार करने से काफी अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। बी.डी. पेस्टीसाइड (बी.डी. 501) के द्वारा कीड़ों एवं बीमारियों को भी सफलतापूर्वक नियंत्रित किया जा सकता है।

सिंचाई

आँवले का पौधा काफी सहिष्णु होता है। अतः इसको सिंचाई की कम आवश्यकता पड़ती है। एक पूर्ण विकसित आँवले के बाग में ज्यादातर सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती हैं प्रायः वर्षा आधरित जल से ही सिंचाई की आवश्यकता पूरी हो जाती है, यदि बाग सही किस्म की भूमि में स्थापित हो। वर्षा एवं शरद

ऋतु में सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है, परन्तु ग्रीष्म ऋतु में नये स्थापित बागों में 10–15 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। सिंचाई के लिए खारे पानी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। फल देने वाले बागानों में पहली सिंचाई खाद देने के तुरन्त बाद जनवरी–फरवरी में देनी चाहिए। फूल आने के समय (मध्य मार्च के मध्य अप्रैल तक) सिंचाई नहीं करनी चाहिए।

सिंचाई के विभिन्न तरीकों में थाला विधि से सिंचाई करना सर्वोत्तम पाया गया है। टपक सिंचाई विधि से सिंचाई करने पर किये गये आरम्भिक अध्ययन के अच्छे नतीजे प्राप्त हुए हैं। इस विधि द्वारा 60 प्रतिशत सीपीई पर सिंचाई करने से 40–60 प्रतिशत तक पानी की बचत के साथ–साथ खरपतवार नियंत्रण तथा स्वस्थ पौध वृद्धि एवं उच्च गुणवत्तायुक्त अधिक फलत प्राप्त होती है। पानी की कमी वाले क्षेत्रों में नये बागों की स्थापना में घड़ा सिंचाई विधि भी काफी सहायक सिद्ध हुई है।

अवरोध परत

आँवले बाग स्थापन में जैविक पदार्थों द्वारा अवरोध पर्त करने से अच्छे परिणाम मिले हैं। विभिन्न प्रकार के पदार्थों, जैसे पुआल, केले के पत्ते, ईख की पत्ती एवं गोबर की खाद से मल्चिंग करने पर अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। जैविक पदार्थ से कई वर्षों तक मल्चिंग करने से खरपतवार नियंत्रित रहते हैं, जड़ों का तापमान नियंत्रित रहता है, जैविक पदार्थ सड़ कर भूमि की उर्वराशक्ति तथा जल धारण करने की क्षमता को बढ़ाते हैं। इसके अतिरिक्त ये हानिकारक लवणों को जमीन की सतह पर आने से भी रोकता है। इस प्रकार, यह उसर भूमि में हानिकारक लवणों के प्रभाव को कम करते हैं, साथ ही मल्चिंग करने से पौधों की जड़ों के पास केंचुओं एवं लाभकारी सूक्ष्म जीवों की संख्या में वृद्धि भी होती है।

सहफसलें या आँवला आधारित खेती की विधियाँ

फलदार वृक्षों का, काफी समय ऊपरान्त, फलत में आना एक प्रमुख समस्या है। इसकी वजह से किसान अधिक क्षेत्र में फलों का रोपण नहीं कर पाते हैं। आँवला गहरी जड़ों वाला एवं छितरी पत्तियों वाला एक पर्णपाती वृक्ष है। साल के तीन–चार माह में पेड़ पर पत्तियाँ नहीं रहती हैं तथा शेष माह में छितरी पत्तियों के कारण भूमि पर पर्याप्त मात्र में सूर्य का प्रकाश उपलब्ध रहता है। परिणामतः इसके साथ सहफसली खेती की अनेक सम्भावनायें हैं। फलों में अमरूद रहता है। परिणामतः इसके साथ सहफसली खेती की अनेक सम्भावनायें हैं। फलों में अमरूद, करौंदा, सहजन एवं बेर, सब्जियों में लौकी, भिण्डी, फूलगोभी, धनिया, फूलों में ग्लैडियोलस एवं गेंदा एवं अन्य औषधि एवं सुगंधित पौधों, आँवले के साथ सहफसली खेती के रूप में काफी उपयुक्त पाये गये हैं। कुछ सह फसली खेती के नमून निम्नवत् हैं :–

आँवला + बेर + मोठ या मूग वला
आँवला + अमरूद + उरद या वर्षाश्रित धान्य फसलें
आँवला + बेर + फालसा (तीन पंक्ति खेती)
आँवला + ढ़ैचा + गेहूँ या जौ
आँवला + ढ़ैचा + प्याज/लहसुन + मेथी या बैंगन
आँवला + ढ़ैचा + जरमन चमोमिल

इसके अलावा तुलसी, कालमेघ, सतावर, सर्पगन्धा एवं अश्वगंधा की सह फसली खेती के भी अच्छे नतीजे प्राप्त हुए हैं। कुछ फसलें, जैसे धान एवं बरसीम, जिनको अत्याधिक पानी की आवश्यकता होती है, आँवला के साथ सह फसली खेती के रूप में बढ़ावा नहीं देना चाहिए। उसर या कम उपजाउ जमीन में कुछ सालों तक ढ़ैचा की सह फसली खेती करना काफी लाभप्रद साबित हुआ है। इससे भूमि की भौतिक एवं रसायनिक गुणवत्ता में काफी सुधार होता है।

पुष्पन एवं फल वृद्धि

आँवले में फूल सीमित शाखाओं पर जो कि असीमित शाखाओं की गाँठ से निकलती हैं, बसन्त ऋतु में आते हैं। फूलों का खिलना मार्च के अंतिम सप्ताह से शुरू होता है तथा तीन सप्ताह तक चलता है। बीजू किस्मों में पुष्पन की क्रिया पहले प्रारम्भ होती है, जबकि व्यवसायिक किस्मों में पुष्पन बाद में होता हैं। दक्षिण भारत में पुष्पन साल में दो बार होता है। पहली बार फरवरी–मार्च में और दूसरी बार जून–जुलाई में। पहली बार वाले पुष्प अच्छी फल देते हैं परन्तु दूसरी बार के पुष्प कम फलत देते हैं। सीमित शाखाओं के निचले भाग पर पत्तियों के अक्ष से नर पुष्प गुच्छों में निकलते हैं और बाद में मादा पुष्प इन्हीं शाखाओं पर निकलते हैं। सीमित शाखाओं के अर्थ दूरस्थ भाग पर साधारणतः पत्तियाँ निकलती हैं। पुष्पक्रम असीमाक्षी प्रकार के होते हैं। फूल छोटे एक लिंगाश्रयी एवं छोटे वृत्तक से जुड़े होते हैं। नर पुष्प गुच्छों में पहले प्रकट होते हैं। परिदलपूँज 6, पीले हरे रंग से लेकर गहरे गुलाबी रंग के होते हैं एवं फलों की पंखुड़िया कार्पशी रूप में जुड़ी होती हैं। पुमंग में तीन पुंकेसर होते हैं। तंतु का जुड़ाव नीचे से होता हैं एवं परागकोष युक्त कोषी होते हैं। उनमें 5–7 भाग होते हैं, लेकिन सामान्यतः 6 भाग पाये जाते हैं। अण्डाशय जायाँगधार मणिबंधिका 3–4 तीन कक्षीय, बीजांडन्यस कक्षीय एवं दो बीजांड प्रतिकोष्ठक में पाये जाते हैं। आँवला एक पर–परागित में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आँवले की किस्मों में स्व–अनिषेच्यता पायी जाती है। अतः एक से अधिक किस्मों को साथ–साथ रोपित करना चाहिए। निषेचन के तुरन्त बाद जो परागण के 36 घंटे बाद होता है, युग्मनज 120 से 130 दिनों तक एवं भ्रूणपोष नाभि में विभाजन के साथ फलों की सुसुप्तावस्था समाप्त हो जाती है। फलों में सर्वाधिक वृद्धि सितम्बर माह में होती है तथा उत्तर भारतीय दशाओं में फल नवम्बर तक परिपक्व हो जाते हैं।

आँवले का फल कैप्सूल अण्डाकार गोल से लेकर चपटे गोल आकृति के, रंग सफेद हरा छिलका चिकना से खुरदुरा, अर्धपारदर्शी, 6–8 खण्डों में विभाजित एवं फलों की सतह चिकनी या हल्की उठी हुई होत है। फल की गुठली कड़ी, गोल से लेकर त्रिकोणिय आकार की होती है। बीज की बाहरी भित्ति कड़ी, बीज 6–8 हल्के भूरे रंग से लेकर गहरे भूरे रंग के होते हैं।

पौधा संरक्षण -

(क) आँवले के रोग

आँवले की खेती सम्पूर्ण भारतवर्ष में की जाती है। यह एक ऐसी फसल है। जिसमें रोगों का प्रकोप कम होता है किन्तु आँवले के कुछ रोग महत्वपूर्ण हैं तथा आँवले की फसल के लिए अत्यन्त हानिकारक हैं।

आँवले का रस्ट रोग राजस्थान में खासतौर पर अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इससे फल तथा पत्तियाँ ग्रसित होती हैं तथा अत्यन्त हानि होती है। अन्य प्रमुख रोग हैं आँवले की विभिन्न प्रकार की फलों की सड़न। चूंकि आँवले के फल शीघ्र खराब हो जाते हैं अतः फलों पर साधारण सी भी चोट भण्डारण तथा परिवहन के दौरान फलों को नुकसान पहुँचाती है। आँवले के कुछ रोगों का विवरण निम्नवत है :

रस्ट (रेवेलिया इम्बलिकी)

आँवले का रस्ट रोग आँवले की एक महत्वपूर्ण समस्या है। खासतौर से राजस्थान के उदयपुर जिले में यह अत्यंत गंभीर है। हाल में लखनऊ तथा प्रतापगढ़ क्षेत्र में आँवले की देसी किस्मों में फलों तथा पत्तियों पर इस रोग को पाया गया।

फलों पर आरंभ में काले छोटे उभार दिखाई देते हैं जो बाद में एक दूसरे से मिल कर घेरे के रूप में विकसित हो जाते हैं। धब्बे एक दूसरे से जुड़ कर फल का काफी क्षेत्र घेर लेते हैं। इन धब्बों के ऊपर कागजनुमा चमकीली झिल्ली दिखाई देती है। यह बाद में फट जाती हैं। जिससे काले बीजाणु बाहर बिखर जाते हैं। फल खराब दिखते हैं तथा बाजार में इनकी कीमत नहीं मिलता है। पत्तियों पर आरम्भ में गुलाबी भूरे छोटे–छोटे उभार नजर आते हैं जो अलग–अलग या समूह में विकसित होते हैं। बाद में इसका रंग गहरा भूरा हो जाता है। ऐसा समझा जाता है कि रोग फल से पत्तियों पर तथा पत्तियों से फल पर नहीं जाता है। फफूँदी रेवेनेलिया इम्बलिकी के टीलियोस्पोर फल तथा पत्तियों पर रोग पैदा करते हैं। घुलनशील गंधक (0.4%) या क्लोरथैलोनिल (0.2%) का तीन छिड़काव एक माह के अन्तराल पर जुलाई से करने पर रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

उकठा (विल्ट)

हाल में आँवले के पौधों के सूखने की समस्या राजस्थान में देखी गई। राजस्थान में काफी संख्या में आँवले के पौधों में छालों का फटना, पत्तियों का झड़ा तथा पौधों के सूखने की समस्या देखी गई है। पेड़ के सूखने की समस्या ऐसे तो मुख्य रूप से पाले के कारण समझी जा रही है किन्तु ऐसे पौधों में फ्यूजेरियम जाति की फफूँद भी संबंधित पाई गई है। नियंत्रण के लिए –

1. पाले के समय छोटे पौधों को ढकना चाहिए तथा सिंचाई की व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे पाले का असर न हो।
2. थालों में घास–फूस या काली पॉलीथीन बिछाने तथा तने पर गाय के गोबर का लेप लगाने से रोग में कमी पाई गई। चूँकि पाले से रोग बढ़ता है, अतः पौधों को पाले से बचाने की पूरी व्यवस्था करनी चाहिए।

काली फफूँद

ऐसे आँवले के पौधों जिनमें स्केल कीट का प्रकोप होता है उनमें काली फहूँद का भी प्रकोप होता है। आँवले की काली फफूदी रोग में कई प्रकार की फफूँदी देखी गई है। काली फफूँद रोग (सूटी मोल्ड) में

पत्तियों, टहनियों तथा फूलों पर मखमली काली फफूँदी विकसित होती है। जो कीट द्वारा चिपचिपे पदार्थ के ऊपर विकसित होती है। यह फफूँदी सतह तक ही सीमित रहती हैं तथा पत्तियों टहनियों, फूल आदि में अन्दर इसका प्रकोप नहीं होता है। काली फफूँद के प्रकोप को 2 प्रतिशत स्टार्च के छिड़काव के द्वारा रोका जा सकता है। यदि प्रकोप अधिक हो तो स्टार्च में 0.05 प्रतिशत एजाडीरेक्टिन तथा 0.2 प्रतिशत घुलनशील गंधक मिला कर छिड़काव करना चाहिए।

नीली फफूँद (पेनीसीलियम सिट्रिनम)

सर्वप्रथम आँवले की नीली फफूँदी को वाराणसी में देखा गया किन्तु यह रोग आँवले का एक ऐसा रोग है जो सभी आँवला उगाने वाले क्षेत्रों में आम है। आरम्भ में फलों पर भूरे जलसिक्त धब्बे बनते हैं। रोग के बढ़ने फलों पर फफूँद के तीन प्रकार के रंग एक के बाद एक दिखाई देते हैं। पहले चमकीला पीला रंग फिर भूरा रंग तथा अंत में हरा नीला रंग विकसित होता है जो सतह पर उभरती फफूँद के कारण होता है। फल की सतह पर पीली बँदें भी दिखाई देती हैं। फलों से बुरी बदबू निकलती है। पूरा फल बाद में दानेदार नीली हरी फफूँद से ढका नजर आता है। प्रबंधन के लिए

1. फलों की तुड़ाई अत्यन्त सावधानीपूर्वक करनी चाहिए जिससे उसमें किसी प्रकार की चोट न लगे। चोट लगने से फलों पर नीली फहूँद का प्रकोप होने की संभावना रहती है।
2. भण्डारण में साफ–सफाई का पूरा ध्यान रखना चाहिए तथा भंडारण स्थल को ओजोन गैस से शोधित करना चाहिए।
3. फलों को बोरेक्स या नमक से उपचारित करने से रोग को रोका जा सकता है।
4. फलों को कोर्बेन्डाजिम या थायोफनेट मिथाइल 0.1 प्रतिशत से उपचारित करके भी रोग नियंत्रित किया जा सकता है।
5. फलों के ऊपर मेंथा के तेल के हल्के लेप से भी रोग को रोका जा सकता है।

एन्थ्रेकनोज (कालिटोट्राइकम ग्लीयोस्पोराइडिस या ग्लोमेरेला सिंगूलाटा)

एन्थ्रेकनोज, आँवले की पत्तियों व फलों पर अगस्त–सितम्बर माह में दिखाई देता है। सर्वप्रथम इसे उदयपुर में देखा गया। पत्तियों पर पहले छोटे, गोल, भूरे, पीले किनारों वाली धब्बे नजर आते हैं। धब्बों का मध्य भाग हल्का भूरा तथा काले पिन के सिरे से उभार सहित दिखाई देता है। फलों पर धंसे हुए भूरे धब्बे बनते हैं, जिनके मध्य में पिन के सिरे से गोलाई में गहरे काले उभार दिखाई देते हैं। धब्बे विभिन्न आकार एवं साइज के बनते हैं। अधिक नमी होने पर धब्बे से बीजाणु अधिक मात्रा में निकलते हैं, साथ ही फल सिकुड़े से नजर आते हैं और फिर सड़ जाते हैं।

मृदु सड़न : (फोमोप्सिस फाइलेन्थाई)

आँवले की मृदु सड़न दिसम्बर से फरवरी के मध्य अधिक देखी जा सकती है। धुंए से भूरे काले, गोल धब्बे फलों पर 2–3 दिनों में विकसित होते हैं। संक्रमित भाग पर जलसिक्त भूरे रंग का धब्बा बनाता है, जो पूरे फल को करीब 8 दिनों में आच्छादित कर फल के आकार को विकृत कर देता है। ऐसे तो रोग

छोटे तथा परिपक्व फल, दोनों को प्रभावित करता है, किन्तु परिपक्व फलों में इसका प्रकोप अधिक होता है। इस रोग के बढ़ने के लिए फलों में इसका प्रकोप अधिक होता है। इस रोग के बढ़ने के लिए फलों में चोट आवश्यक होती है। तुड़ाई ऊपरांत फलों को डाइफोलेटान (0.15 प्रतिशत), डाइथेन एम–45 या बैवेस्टीन (0.1 प्रतिशत) से उपचारित करके भण्डारित करने से रोग की रोक थाम की जा सकती है।

फल सड़न : (पेस्टेलोशिया क्रुएन्टा)

यह रोग नवम्बर माह में आमतौर पर देखा जाता है। इस रोग में धब्बे अधिकतर अनियमिताकार तथा भूरे रंग के होते हैं। आरम्भ में भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जो धीरे–धीरे बढ़ते हैं। बाद में ये धब्बे सूखे भूरे हो जाते हैं जिनके किनारे हल्के भूरे होते हैं तथा ग्रसित भाग पर रूई की तरह सफेद फफूँद दिखाई देती है। संक्रमित फल का अन्दर का हिस्सा सूखा, गहरा भूरा नजर आता है।

फल सड़न : (अल्टरनेरिया अल्टरनेटा)

गिरे हुए फलों में अल्टरनेरिया अल्टरनेटा द्वारा सड़न पैदा होती है। फल सड़न को रोकने के सामान्य तरीकों में :–

1. फल तोड़ने के 15 दिनों पूर्व 0.1 प्रतिशत क्लोरोथालोनिल का छिड़काव करना चाहिए।
2. फल तुड़ाई पूरी सावधानी से करनी चाहिए, जिससे फलों में किसी प्रकार की चोट न लगे।
3. फूलों को स्वच्छ पात्रों में भण्डारित करना चाहिए।
4. फलों के भण्डारण तथा परिवहन के समय पूर्ण स्वच्छता बरतनी चाहिए।
5. भण्डारण स्थान स्वच्छ होना चाहिए तथा उसे ओजोन से उपचारित किया जाना चाहिए।
6. फलों का उपचार बोरेक्स या नमक से करना चाहिए जिससे रोग का प्रकोप न हो।

(ख) आँवले के विकार

आन्तरिक सड़न

आन्तरिक सड़न आँवले के फलों में देखी गयी है। आँवले की प्रजाति फ्रान्सिस में यह रोग सबसे अधिक होता है। बनारसी प्रजाति में भी इसका प्रकोप पाया गया है। जब अन्तः उतक कड़ी लगती है तब यह सबसे पहले अन्दर की ओर से भूरा होना आरम्भ करती है। बाद में मध्य उत्तक तथा अन्त में बाहरी भूरी काली नजर आती है। आमतौर पर सितम्बर के दूसरे तथा तीसरे सप्ताह में यह दिखाई देती है। रोग के बढ़ने पर ये भाग कार्कनुमा कड़ा हो जाता है तथा रिक्त स्थान बनते हैं, जो गोंद से भरे होते हैं। चकइया, एन.ए.–6 तथा एन.ए.–7 में यह रोग नहीं देखा गया है। अतः इन प्रजातियों को लगाने हेतु बढ़ावा देना चाहिए। प्रबंधन के लिए जिंक सल्फेट (0.4:) कापर सल्फेट (0.4:) तथा बोरेक्स (0.4:) का छिड़काव सितम्बर–अक्टूबर माह में करना लाभप्रद होता है।

(ग) आँवले के नाशीकीट

छालभक्षी कीट (इन्डरबेला टेट्राओनिस)

यह कीट पूरे देश में पाया जाता है और बहुत से फल, फूलों वाले एवं वन वृक्षों को क्षति पहुंचाता है। आँवले के बागों में यह सामान्यतः पाया जाता है। साधारणतः जिन बागों की ठीक से देख–भाल नहीं

होती, उनमें इस कीट का प्रकोप अधिक होता है। कीट का प्रकोप अप्रैल महीने से मॉथ निकलने के साथ प्रारम्भ होता है। इसके लार्वे प्ररोहों, शाखाओं एवं मुख्य तने की छाल को खाते एवं उनमें छेद करते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पेड़ों की वृद्धि रूक जाती है एवं पुष्पन और फल प्रभावित होती है।

इसके प्रकोप की पहचान लार्वे द्वारा प्ररोहों, शाखाओं एवं तनों पर बनायी गयी अनियमित सुरंगों से होता है, जो रेशमी जालों, जिसमें चबायी हुई छाल के टुकड़े और इनके मल सम्मिलित होते हैं, से ढकी होती है। इनके आवासीय छिद्र विशेष कर प्ररोहों एवं शाखाओं के जोड़ पर देखे जा सकते हैं। प्ररोह सूख कर मर जाते हैं, जिससे पेड़ बीमार सा दिखता है।

प्रबंधन के लिए

1. बाग को साफ–सुथरा और स्वस्थ रखना चाहिए।
2. समय–समय पर बागों में जाकर नये सूखे प्ररोहों की जाँच करनी चाहिए ताकि समय रहते ही इस कीट का पता लग जाए।
3. प्रकोप के शुरूआत में ही, आवासीय छिद्रों को साफ कर, उनमें तार डाल कर लार्वे को नष्ट कर देना चाहिए।
4. अधिक प्रकोप होने पर सुरंगों एवं आवासीय छिद्रों को साफ कर रूई के फाये को 0.025 प्रतिशत डाइक्लोरवॉस के घोल में भिगो कर छिद्रों में रख कर, गीली मिट्टी से बन्द कर देना चाहिए।
5. इसके लार्वे बेवेरिया बैसिआना नामक फफूँद से प्राकृतिक रूप से ग्रसित होते हैं। इसका प्रयोग जैविक नियंत्रण के लिए किया जा सकता है।

प्ररोह पिटिका या शूट गाल बनाने वाला कीट (बेटूसा स्टाइलोफोरा)

इस कीट का प्रकोप नर्सरी के पौधों एवं पुराने फलदार वृक्षों में अधिक होता है। यह कीट जून से दिसम्बर माह तक क्रियाशील रहता है। इस कीट के लार्वे बढ़ते हुए तनों, प्ररोहों के आगे भाग में सुरंग बनाते हैं। और यह भाग फूल कर गॉल (पीटिका) आकार ले लेता है। जब लार्वा इसके अन्दर क्रियाशील रहता है। तो इसके एक सिरे से लाल रंग का बुरादा सा निकलता दिखायी पड़ता है। नयी पिटिका जून से अगस्त के दौरान बनती हैं। पूर्ण विकसित पिटिका या गॉल 2.3 से 2.5 से.मी. लम्बी एवं 1 से 1.5 से.मी. चौड़ी होती है। गर्मी के मौसम के शुरूआत में यह लार्वा बाहर आ जाता है और पर्णकों (लीफलेट) के बीच प्यूपा में मार्तत हो जाता है। यह कीड़ा महत्वपूर्ण है क्योंकि इसका गम्भीर प्रकोप होने पर पेड़ की वृद्धि रूक जाती है, जिससे पुष्पन और फल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बचाव के दृष्टि से पेड़ बहुत घने नहीं होने चाहिए। गॉल वाले प्ररोहों काट कर कीड़ों सहित नष्ट कर देता चाहिए। जिन बागों में इसका प्रकोप लगातार होता रहा है उसमें 0.05 प्रतिशत ऐजाडीरेक्टिन कीटनाशी का छिड़काव मौसम के शुरूआत में करें। यदि आवश्यकता हो तो दूसरा छिड़काव 15 दिनों के बाद करें।

अनार तितली (ड्यूडोरिक्स (वाइरेकोला) आइसोक्रेटस)

यह अनार का प्रमुख कीट है, किन्तु आँवले और अन्य दूसरे फलों को भी हानि पहुँचाता है। इस कीट

का प्रकोप सितम्बर–अक्टूबर माह में फलों के मौसम में होता है। बैंगनी–भूरी सी मादा तितली एक–एक करके छोटे चमकदार, सफेद अंडे फलों पर देती है। इनमें से लार्वे निकल कर फल को छेद कर अन्दर चले जाते हैं एवं गुठली वाले भाग को खा कर, खोखला कर देते हैं। यह मजबूत शरीर वाला, छोटे बालों से ढ़का, चपटा, लगभग 2 से.मी. तक लम्बा होता है। यह फल के अन्दर ही या बाहर आ कर प्यूपा में परिवर्तित हो जाता है। कैटरपिलर के अन्दर घुसने एवं बाहर आने वाले छिद्रों के द्वारा अन्य विभिन्न जीवाणुओं का भी फल पर प्रकोप हो जाता है। आमतौर पर कीट द्वारा ग्रसित फल कैटरपिलर के अन्दर जाने वाले छिद्रों के पास विकृत हो जाते हैं, और ऐसे फल कमजोर होकर सड़ जाते हैं, तथा पकने से पहले ही गिर जाते हैं। ग्रसित फलों में छेद से बुरादा निकलता हुआ भी दिखायी पड़ता है। अधिक प्रकोप इन पर फलों को काफी हानि हो सकती है।

प्रबन्धन के लिए

1. आँवला के बाग के साथ, अनार का बाग नहीं लगाना चाहिए, क्योंकि यह इन फलों का मुख्य नाशीकीट है।
2. ग्रसित फलों तथा जमीन पर गिरे हुए सभी फलों को एकत्र कर, कीड़ों सहित नष्ट कर देना चाहिए ताकि इनके प्रकोप दुबारा होने से रोका जा सके।
3. इस कीट की रोकथाम के लिए 0.2 प्रतिशत कार्बारिल या 0.04 प्रतिशत ऐजाडीरेक्टिन कीटनाशी का छिड़काव फल के मटर के दाने के बराबर होने की अवस्था में करना चाहिए। दूसरा छिड़काव प्रकोप की तीव्रता पर निर्भर करता है, जिसे 15 दिनों के अन्तराल पर किया जा सकता है।

मिली बग या चूर्णी बग (नाइलीकॉकस वाइरीडिस)

इनका प्रकोप मार्च से जुलाई के मध्य होता है और अप्रैल–मई में इनकी संख्या अधिक होती है। मादा अण्डाकार होती हैं और निम्फ के बीच में आसानी से पहचानी जा सकती हैं। एक मादा सैकड़ों की तादाद में अंडे देती हैं। निम्फ पत्तियों, प्ररोहों एवं पुष्प मन्जरियों पर स्थापित हो जाते हैं और इनका रस चूसते हैं। निम्फ 15–20 दिनों में वयस्क हो जाते हैं। अधिक रस चूस जाने के कारण पत्तियाँ और फूल सूख सूख कर गिर जाते हैं। इसका प्रभाव पेड़ की बढ़वार, पुष्पन और फलत पर पड़ता है। ग्रसित नये प्ररोह झुके, मुड़े हुए से प्रतीत होते हैं एवं पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। अधिक प्रकोप होने पर टहनियाँ पत्ती रहित होकर सूखने लगती हैं। इसके द्वारा काफी मात्रा में विसर्जित मधु भी देखा जा सकता है। इससे फूल सूख कर गिर जाते हैं।

नियंत्रण के लिए

1. बाग को साफ–सुथरा और स्वस्थ रखना चाहिए।
2. प्रभावित पत्तियों एवं प्ररोहों को शुरूआत में ही काट कर कीड़ों सहित नष्ट कर देना चाहिए जिससे वे आगे और फैलने न पायें।
3. अधिक प्रकोप होने पर 0.05 प्रतिशत मोनोक्रोटोफॉस या 0.05 प्रतिशत क्वीनलफॉस का छिड़काव

करना चाहिए।

आँवला एफिड (सरसीएफिस एम्बलिका)

इन कीटों का प्रकोप जुलाई से अक्टूबर तक रहता है तथा सितम्बर माह में प्रकोप सबसे अधिक होता है। इनका प्रकोप पेड़ों में नये प्ररोहों के अग्रभाग पर होता है। निम्फ एवं वयस्क दोनों रस चूस कर क्षति पहुँचाते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पेड़ की (वृद्धि) पर प्रतिकूल असर पड़ता है जो अन्ततः पुष्पन एवं फल को प्रभावित करता है। प्रभावित पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं और सूख कर गिरने लगती हैं। प्रभावित प्ररोह के अग्रभाग झुके और मुड़े हुए से प्रतीत होते हैं। चीटियों की मौजूदगी से भी इस कीट के प्रकोप होने की पहचान होती है इसके नियंत्रण के लिए प्रकोप के शुरूआत में ही प्रभावित पत्तियों एवं प्ररोहों को काट कर कीड़ों सहित नष्ट करना चाहिए। अधिक प्रकोप होने पर 0.06 प्रतिशत थिएमेथोक्सम कीटनाशी का छिड़काव करना चाहिए।

गुठली भेदक (करक्यूलिओ जाति)

यह कीट जून से जनवरी माह तक क्रियाशील रहता है। इस कीट का वयस्क एक छोटा सा घुन होता है, जो जून माह में बरसात शुरू होने पर जमीन के अन्दर से बाहर आता है। घुन का निकलना जुलाई–अगस्त में जारी रहता है जो आँवले के फल लगने से मेल खाता है। अण्डे फल में एक छोटा सा गड्ढा बना कर वाह्य सतह से नीचे दिए जाते हैं। अण्डे देने के लिए 1.5 से.मी. से 2 से.मी. व्यास के फल पसंद किए जाते हैं। इसका लार्वा निकलने के बाद गूदे से होता हुआ गुठली को छेदता अन्दर चला जाता है और बीजों को खाकर पूर्णतः नष्ट कर देता है। पूर्ण विकसित लार्वा, फल में एक छोटा छेद करके बाहर निकल कर जमीन पर गिर जाता है और भूमि में घुस कर अगले मौसम आने तक वहीं पड़ा रहता है। इस कीट का प्रकोप देशी एवं बनारसी जाति के आँवलों पर देखा गया है।

यह घुन जिस स्थान पर फल में अण्डे देती है वहाँ एक छोटा, भूरा धब्बा से दिखायी पड़ता है। इसके अतिरिक्त फलों में कीड़े के बाहर निकलने वाले छेदों को देख कर भी इसके प्रकोप की पहचान की जा सकती है।

फल तुड़ाई के ऊपरान्त गहरी जुताई करने से जमीन के अन्दर प्रवेश किए लार्वो को नष्ट किया जा सकता है और इनकी संख्या में कमी लायी जा सकती है। अधिक प्रकोप होने पर प्रथम छिड़काव 0.2 प्रतिशत ऐजाडीरेक्टिन या 0.04 प्रतिशत थिएमेथोक्सम कीटनाशी का फलों के मटर के दाने के बराबर की अवस्था में करना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो दूसरा छिड़काव कीटनाशी बदल कर 15 दिनों के अन्तराल पर करें।

परिपक्वता, तुड़ाई, पैकिंग एवं भण्डारण

तुड़ाई का समय फल की परिपक्वता, उसकी गुणवत्ता एवं भण्डारण क्षमता का निर्धारण करती है। फलों का गिरना प्रारम्भ हो जाता है। यह समस्या बनारसी एवं फांन्सिस किस्मों में ज्यादा पायी जाती है। तुड़ाई अविलम्ब करने से अगले साल की फलत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। फलों को हाथ के द्वारा तोड़ा

जाता है। तोड़ते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए। चोटिल या खरोंच लगे फलों में भण्डारण के दौरान भूरे या काले रंग के धब्बे बनना प्रारम्भ हो जाते हैं। तुड़ाई उपरान्त नुकसान को उचित तुड़ाई, पैकिंग एवं सही भण्डारण तकनीक अपना कर कम किया जा सकता है।

परिपक्वता

आँवला के फलों की परिपक्वता कई कारकों पर निर्भर करती है, जैसे, स्थिति, जलवायु, मृदा प्रकार, नमी, इत्यादि। आँवला की व्यावसायिक किस्मों में परिपक्वता सूचकांक का निर्धारण फल लगने के ऊपरान्त – टी. एस. एस. एसिड अनुपात, आपेक्षिक घनत्व आदि के अनुसार किया जाता है। बनारसी एवं कृष्णा किस्मों में परिपक्वता फल लगने के 17–18 सप्ताह बाद आती है, जबकि कंचन और फ्रांसिस में 20 सप्ताह में लगता है। चकैइया किस्म, फल लगने के 23 सप्ताह बाद परिपक्व होते हैं। परिपक्वता के समय आपेक्षित घनत्व सभी किस्मों में 1.0 से अधिक पाया जाता है। आँवले में परिपक्वता निर्धारण का सबसे अच्छा तरीका फलों के रंग में परिवर्तन (हरे से चमकदार सफेद हरा या पीला हरा) एवं बीज के रंग में परिवर्तन (हल्के पीले सफेद से भूरे रंग में) को देख कर किया जा सकता है।

तुड़ाई

आँवले के फलों की तुड़ाई हाथ से करते हैं परन्तु यह क्रिया बड़े वृक्षों में सम्भव न होने के कारण, बाँस से बनी सीढ़ियों पर चढ़ कर तुड़ाई की जाती है। फलों को प्रातःकाल में तोड़ना चाहिए एवं प्लास्टिक के क्रेट्स में रखना चाहिए। फलों को तोड़ते समय जमीन में नहीं गिरने देना चाहिए अन्यथा चोटिल फल पैकिंग एवं भण्डारण के समय सड़ कर अन्य फलों को भी नुकसान पहुँचाते हैं।

फल

आँवले का कलमी पौधा रोपण से तीसरे साल तथा बीजू पौधा 6–8 साल बाद फल देना प्रारम्भ कर देता है। कलमी पौधा 10–12 साल बाद पूर्ण फल देने लगता है तथा अच्छे प्रकार से रख–रखाव के द्वारा 60–75 साल तक फल देता रहता है। आँवले की विभिन्न किस्मों की उपज मे भिन्नता पायी जाती है।

बनारसी कम फल देने वाली, फ्रान्सिस एवं नरेन्द्र आँवला–6 औसत फल देने वाली, कंचन एवं नरेन्द्र आँवला–7 अत्यधिक फल देने वाली किस्में हैं। आँवले की फल को कई कारक प्रभावित करते हैं जैसे किस्म की आन्तरिक क्षमता, वातावरणीय कारक एवं प्रबंधन तकनीकें इत्यादि। एक पूर्ण विकसित आँवले का वृक्ष एक से तीन कुन्तल फल देता है। इस प्रकार से 15–20 टन प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त की जा सकती है।

श्रेणीकरण

आँवले के फलों को तीन श्रेणियों में उनके आकार, भार, रंग एवं पकने के समय के आधार पर बाँटा जा सकता है। बड़े आकार के फल (व्यास 4 से.मी. से अधिक) को मुरब्बा बनाने हेतु प्रयोग किया जाता है।

मध्यम आकार के फलों को अन्य परिरक्षित पदार्थ बनाने में एवं छोटे आकार के फलों को औषधीय उत्पाद जैसे च्यवनप्राश, त्रिफला इत्यादि बनाने में प्रयोग किया जाता है। अपरिपक्व, चोटिल एवं व्याधिग्रस्त फलों को फेंक देना चाहिए।

पेटीबंदी

आँवले के फलों का अच्छी तरह से सम्भलाव एवं पेटीबन्दी न करने से लगभग 20 प्रतिशत तक का नुकसान होता है। इसलिए आँवले की पेटीबंदी करते समय अत्यधिक सावधानी रखने की आवश्यकता है। जूट की बोरियों एवं अरहर पौधों के तने की टोकरियाँ प्रायः आँवले की पेटीबंदी में प्रयुक्त की जाती हैं, जबकि इन पैकिंग पदार्थों में भार सहने की क्षमता कम होती है तथा रख–रखाव भी उपयुक्त नहीं हो पाता है। लगभग 40–50 किलोग्राम क्षमता की अरहर के तने द्वारा बनी टोकरियाँ आँवला की पैकिंग में प्रयोग की जाती हैं जिनमें अखबार की परत एवं आँवला की पत्तियों को कुशन के रूप में प्रयोग किया जाता है। आँवला को दूरस्थ स्थानों पर भेजने के लिए गत्ते (कारूगेटेट फाइबर बोर्ड) से बने डिब्बों में पैकिंग करके भेजा जा सकता है।

आय

आँवले का विक्रय मूल्य 400 रूपये से लेकर 4000 रूपये प्रति कुन्तल तक रहता है। अतः प्रति हेक्टेयर क्षेत्र से 40,000 रूपये से लेकर दो लाख रुपये प्राप्त किये जा सकते हैं।

भण्डारण

आँवले के भण्डारण का मुख्य उद्देश्य संसाधन हेतु उसकी उपलब्धता को बढ़ाना है। किस्मों के अनुसार परिपक्व फलों को 6 से 9 दिनों तक कम उर्जा वाले शीतकक्षों में रख कर बढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त आँवले के फलों को शीत तापक्रम (5–7°C) पर दो माह तक रखा जा सकता है। फलों को 15 प्रतिशत नमक के घोल में रख कर 75 दिनों तक सामान्य तापक्रम पर भण्डारित किया जा सकता है।

प्रसंस्करण

आँवले के फल अम्लीय एवं कसैले होने के कारण तुरन्त उपभोग हेतु उपयुक्त नहीं होते हैं। अतः फलों को संसाधित पदार्थ बनाने में उपयोग किया जा सकता है। संसाधित पदार्थ बनाने से इसमें विद्यमान विटामिन 'सी' के बड़े भाग का ह्रास होता है। फलों को तीन प्रकार से उपयोग में लाया जाता है। खाद्य पदार्थ के रूप रू में, स्वास्थ्य उत्पाद के रूप में। आँवले के संसोधित पदार्थों के बनाने की तकनीकों का विवरण निम्नवत् है।

गूदा

पूर्ण परिपक्व फलों को गूदा निकालने के लिए प्रयोग किया जाता है। फलों को अच्छी प्रकार से धो कर बीज निकाल कर छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजित करके प्रयोग किया जाता है या 6 से 8 मिनट तक

खौलते हुए पानी में उबालने से फलों की फाँके स्वयं अलग हो जाती हैं तथा उनका रंग भी सफेद हो जाता है। इस प्रकार से अलग ही हुई फॉकों में या कटे हुए टुकड़ों में उतनी ही मात्रा में पानी मिला कर गूदा निकालने वाली मशीन के द्वारा गूदा निकाल लिया जाता है। निकले हुए गूदे को 78°C तक गर्म करके 1000 पी.पी.एम. सल्फर डाई आक्साइड (SO_2) या 2 ग्राम पोटेशियम मेटा बाई सल्फाइट (KMS) प्रति किलो के हिसाब से मिला कर हवा अवरोधी बर्तनों में भर देते हैं।

जूस

आँवले के छोटे–छोटे टुकड़ों को फिल्टर प्रेस के द्वारा दबा कर जूस निकाला जाता है। उसको 78°c तक गर्म कर निर्जीवाणुक या जीवाणु हीन कर दिया जाता है। तैयार जूस को काँच की निर्जमीकृत बोतलों में भर देते हैं। इस प्रकार से तैयार जूस 500 पी.पी.एम. सल्फर डाई आक्साइड या 1 ग्राम पोटैशियम मेटा बाई सल्फाइट प्रति लीटर के हिसाब से मिला कर परिरक्षित किया जाता है।

स्कवैश

स्कवैश, जूस या गूदा से बनाया जाता है। स्कवैश में 35 से 40 प्रतिशत जूस में 50 प्रतिशत चीनी, 1.1 प्रतिशत साइट्रेक अम्ल एवं 350 पी.पी.एम. सल्फर डाई आक्साइड (750 मिलीग्राम KMS/किलोग्राम) मिलाते हैं। अच्छी प्रकार से मिलाने के बाद हल्की आँच पर गर्म करके, साफ की गई निर्जमीकृत बोतलों में भर कर चेक करते हैं। इस्तेमाल करते समय तीन भाग पानी में एक भाग स्क्वैश को मिला लेते हैं।

आर.ओ.एस.पेय

इस तुरन्त उपयोग हेतु तैयार पेय मे 10 प्रतिशत जूस, टी.एस.एम. 12° ब्रिक्स एवं 0.28 प्रतिशत खटास की मात्रा रखी जाती है। तैयार पेय को काँच की बोतलों में भर कर कार्क लगा कर 20 मिनट तक खौलते हुए पानी में रख कर निर्जमीकृत करते हैं। इस पेय में दो प्रतिशत अदरक के जूस को मिला कर इसका स्वाद और अच्छा बनाया जा सकता है।

मुरब्बा

बाजार में उपलब्ध आँवले के उत्पादों में मुरब्बा एक प्रमुख उत्पाद है। मुरब्बा बनाने के कई तरीके हैं। पारम्परिक रूप से मुरब्बा बनाने हेतु गूदे हुए आँवले के फलों को 2–8 प्रतिशत तक नमक के घोल या चूने के पानी में 1–1 दिनों तक रखते हैं। जिससे फलों का कसैलापन दूर हो जाता है। तदुपरान्त फलों को अच्छी प्रकार से धो कर उतनी ही मात्रा में चीनी मिला कर रात्रि भर के लिए रख देते हैं। दूसरे दिन चीनी के घोल को 70° ब्रिक्स टी.एस.एस. तक सान्द्रित करके उसमें फलों को डुबो देते हैं। इस प्रक्रिया को तीन या चार बार दोहराते हैं। अंत में तैयार मुरब्बे को साफ–सुथरे जार में 70–72° ब्रिक्स ताले शर्करा के घोल के साथ डिब्बा बंदी कर देते हैं।

मुरब्बा बनाने की एक विधि का मानकीकरण लखनउ में किया गया है। इस विधि में 4–6 मिनट तक खौलते हुए 2 प्रतिशत सोडियम हाइड्रोक्साइड (लाई) के घोल में, तदुपरान्त 1 ग्राम फिटकरी प्रति लीटर के हिसाब से इस घोल में मिलाकर एक मिनट तक गर्म करते हैं। इसके बाद पानी को निथार लेते हैं

तथा फलों को बहते हुए पानी में अच्छी तरह धोते हैं, जब तक फलों का छिलका पूरी तरह से साफ न हो जाये। फिर फलों को 20 मिनट तक 2 प्रतिशत साईट्रिक अम्ल के घोल में रखते हैं। पुनः पानी को निथार कर फलों की सतह को सुखा लेते हैं। इन फलों को खौलते हुए अम्लीकृत शर्करा के घोल 80° ब्रिक्स एवं 0.7 प्रतिशत खटास में डाल कर जार में भर देते हैं। दो दिनों बाद शर्करा के घोल को 80° ब्रिक्स तक पुनः शर्करा मिला कर गर्म कर सान्द्रित कर लेते हैं। इस प्रक्रिया की दो बार पुनरावृत्ति करके मुरब्बे को साफ–सुथरे जार में भर कर सील कर देते हैं।

शर्करा के घोल में आँवला की फाँके

यह एक नया उत्पाद है। उत्पाद इसमें आँवले में विद्यमान पौष्टिक गुणों को अधिक मात्रा में संरक्षित किया जाता है जो कि मुरब्बा बनने की जटिल प्रक्रिया के दौरान नष्ट हो जाते हैं। फलों को खौलते पानी में 6–8 मिनट तक रखते हैं। फिर ठंडा करके, फाँके अलग कर ली जाती है। इसके बाद इन फाँकों को 0.5 प्रतिशत खटास युक्त विभिन्न सान्द्रन वाले (50, 60 एवं 70° ब्रिक्स) शर्करा के घोलों में, घंटे प्रत्येक में क्रमशः रखते हैं। अंत में शर्करा के घोल को चीनी मिला कर एवं खौला कर, 70° ब्रिक्स तक सान्द्रित कर लेते हैं इन फाँकों को इस घोल में मिला कर साफ–सुथरे जार में बंद कर लेते हैं।

कैंडी

फलों को अच्छी तरह से पानी से धोने के ऊपरान्त उन्हें खौलते पानी में 6–8 मिनट तक गर्म करते हैं। फिर ठंडा करने के बाद फलों से फाँके अलग कर ली जाती है। इन फाँकों को 60° ब्रिक्स एवं 0.7 प्रतिशत अम्लीय घोल (1रू1.5) के अनुपात में रात भर डुबो कर रखते हैं ताकि परसरणी विधि द्वारा फॉकों में शर्करा तथा अम्ल को रिसाया जा सके। दूसरे दिन फाँकों को घोल से निकाल कर घोल को गर्म कर एवं उसमें शर्करा मिला कर उसकी सान्द्रता 70° ब्रिक्स तक लाते हैं। टुकड़ों को पुनः रात भर भिगो देते हैं। दूसरे दिन शर्करा के घोल से निकाल कर टुकड़ों को गुनगुने पानी से धो लेते हैं ताकि फाँकों की सतह पर लगी शर्करा घुल जाय। फिर फॉकों को 60°C तापमान पर विद्युत चालित निर्जलीकरण यंत्र में 8–10 घंटों तक न कर सुखा लेते हैं। इन सूखी फाँकों में जल की मात्रा 10 प्रतिशत तक होनी चाहिए। इस प्रकार तैयार 'कैंडी' कहलाती हैं और उन्हें पॉलीथीन की थैलियों में अथवा जार में भर कर भण्डारित करते हैं।

चूर्ण

आँवले के फल से अलग की गई फाँकों को छोटे–छोटे टुकड़ों में काट कर उन्हें विद्युत चालित यंत्र में 60°C पर 8–10 घंटे सुखाते हैं। तदुपरान्त उनको पीस कर चूर्ण बना लेते हैं। आँवले का चूर्ण बनाने हेतु प्रति 100 ग्राम चूर्ण में 8 ग्राम साधारण नमक, 16 ग्राम काला नमक, 15 ग्राम चीनी, 3 ग्राम साइट्रिक अम्ल, 2 ग्राम पिसी काली मिर्च, 1 ग्राम हींग 1 ग्राम भुना पिसा जीरा, 1 ग्राम पिसी सौंफ, 1.5 ग्राम सोंठ एवं 0.5 अजवायन मिलते हैं। अजवायन के स्थान पर 2–5 ग्राम पिसे पुदीना की पत्ती को भी मिला सकते है। तैयार चूर्ण को सूखे जार में हवा अवरोधी अवस्था में भण्डारित कर लेते हैं।

कटहल

कटहल का पौधा एक सदाबहार, 8–15 मी. ऊँचा बढ़ने वाला, फैलावदार एवं घने क्षेत्रकयुक्त बहुशाखीय वृक्ष होता है जो भारत को देशज है। भारत वर्ष में इसकी खेती पूर्वी एवं पश्चिमी घाट के मैदानों, उत्तर–पूर्व के पर्वतीय क्षेत्रों, संथाल परगना एवं छोटानागपुर के पठारी क्षेत्रों, बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बंगाल के मैदानी भागों में मुख्य रूप से की जाती है। कटहल के वृक्ष की छाया में कॉफी, इलाइची, काली मिर्च, जिमीकन्द हल्दी, अदरक इत्यादि की खेती सफलतापूर्वाक की जा सकती है।

स्वाद एवं पौष्टिकता की दृष्टि से कटहल का फल अत्यन्त ही महत्वपूर्ण माना जाता है। इसके फल बसन्त ऋतु से वर्षा ऋतु तक उपलब्ध होते हैं। बसन्त ऋतु में जब प्रायः सब्जी की अन्य प्रजातियों का अभाव रहता है, कटहल के छोटे एवं नवजात मुलायम फल एक प्रमुख एवं स्वादिष्ट सब्जी के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। जैसे–जैसे फल बड़े होते जाते हैं इनमें गुणवत्ता का विकास होता जाता है एवं परिपक्व होने पर इसके फलों में शर्करा, पेक्टिन, खनिज पदार्थ एवं विटामिन 'ए' का अच्छा विकास होता है। कटहल के फल एवं बीज में पाये जाने वाले विभिन्न पोषक तत्वों को नीचे की सारणी में दिया गया हैः

पोषक तत्व (प्रति 100 ग्रा.)	कच्चे फल	पके फल	बीज
नमी (प्रतिशत)	84.0	77.2	64.5
कार्बोहाइड्रेड (ग्रा.)	9.4	18.9	25.8
प्रोटीन (ग्रा.)	2.6	1.9	6.6
कुल खनिज पदार्थ	0.9	0.8	1.2
कैल्शियम (मि.ग्रा.)	50.0	20.0	21.0
फॉस्फोरस (मि.ग्रा.)	97.0	30.0	20.1
लौह तत्व (मि.ग्रा.)	1.5	500.0	20.1
विटामिन 'ए' (आइ.यू.)	0.0	540.0	17.0
थायमिन (मि.ग्रा.)	0.3	30.0	17.0

भूमि एवं जलवायु

कटहल के पौधे लगभग सभी प्रकार के भूमि में पनप जाते हैं परन्तु अच्छी जल निकास की व्यवस्था वाली गहरी दोमट मिट्टी इसके बढ़वार एवं पैदावार के लिए उपयुक्त होती है। मध्यम से अधिक वर्षा एवं गर्म जलवायु वाले क्षेत्र कटहल की खेती के लिए उपयुक्त होते हैं। यह देखा गया है कि छोटानागपुर एवं संथाल परगना तथा आस–पास के क्षेत्रों की टांड़ जमीन जिसमें मृदा पी.एच.मान सामान्य से थोड़ा कम, ! संरचना हल्का तथा जल का निकास अच्छा है, कटहल की खेती के लिए उपयुक्त पायी गयी है।

उन्नत किस्में

कटहल एक परपरागित फल वृक्ष होने तथा प्रमुखतः बीज द्वारा प्रसारित होने के कारण इसमें प्रचुर जैव विविधता है। अभी तक कटहल की कोई मानक प्रजाति का विकास नहीं हुआ था परन्तु फलन एवं गुणवत्ता के आधार पर विभिन्न शोध केन्द्रों द्वारा कटहल की कुछ उन्नतशील चयनित प्रजातियाँ इस प्रकार हैं :

संस्थान	विकसित प्रजातियाँ
बागवानी एवं कृषि–वानिकी नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी वि.वि., फैजाबाद केरल कृषि वि.वि., तेरूअनन्तपुरम	खजवा, स्वर्ण मनोहर, स्वर्ण पूर्ति (सब्जी के लिए) शोध कार्यक्रम, राँची एन.जे.–1, एन.जे.–2, एन.जे.–15 एवं एन.जे.–3 मत्तमवरक्का।

खजवाः इस किस्म के फल जल्दी पक जाते हैं। यह ताजे पके फलों के लिए एक उपयुक्त किस्म है।

स्वर्ण मनोहर : छोटे आकार के पेड़ में बड़े–बड़े एवं अधिक संख्या में फल देने वाली यह एक उम्दा किस्म। इसके लगभग 15 वर्ष के पेड़ की ऊँचाई 5.5. मी., तने की मोटाई 86 से.मी., क्षत्रक फैलाव 25.4 वर्ग मी. तथा पेड़ का आयतन 71.2 घन मी. होता है। मध्यम घने क्षत्रक वाले इस किस्म में फरवरी के प्रथम सप्ताह में फल लग जाते हैं जिनको छोटी अवस्था में बेचकर अच्छी आमदनी प्राप्त की जा सकती है। फूल लगने के 20–25 दिन बाद इसके एक पेड़ से 45–50 कि.ग्रा. फल सब्जी के लिए प्राप्त किया जा सकता है। इस किस्म के पूर्ण रूप से विकसित फल की लम्बाई 45.2 से.मी., परिधि 70 से.मी. तथा वजन 15–20 कि.ग्रा. होता है। इसके कोये (फलैक्स) का आकार बड़ा (6.0 × 3.9 से.मी.), संख्या अधिक (280–350 कोये / फल) तथा मिठास ज्यादा (20 डि.ब्रिक्स) होता है। यह किस्म छोटानागपुर एवं संथाल परगना तथा आस–पास के क्षेत्र के लिए अधिक उपयुक्त पाई गई है। इसकी प्रति वृक्ष औसत उपज 350–500 कि.ग्रा. (पकने के बाद) है।

स्वर्ण पूर्ति : यह सब्जी के लिए एक उपयुक्त किस्म है। इसका फल छोटा (3–4 कि.ग्रा.), रंग गहरा हरा, रेशा कम, बीज छोटा एवं पतले आवरण वाला तथा बीच का भाग मुलायम होता है। इस किस्म के फल दर से पकने के कारण लंबे समय तक सब्जी के रूप में उपयोग किये जा सकते हैं। इसके वृक्ष छोटे तथा मध्यम फैलावदार होते हैं जिसमें 80–90 फल प्रति वर्ष लगते हैं। फलों का आकार गोल एवं कोये की मात्रा अधिक होती है।

पौधा प्रसारण

कटहल मुख्य रूप से बीच द्वारा प्रसारित किया जाता है एक समान पेड़ तैयार करने के लिए वानस्पतिक

द्वारा पौधा तैयार करना चाहिए। वानस्पतिक विधि में कलिकायन तथा ग्रेफ्टिंग अधिक सफल पायी गयी है। इस विधि से पौध तैयार करने के लिए मूल वृन्त की आवश्यकता होती है जिसके लिए कटहल के बीजू पौधों का प्रयोग किया जाता है। मूल वृन्त को तैयार करने के लिए ताजे पके कटहल से बीज निकाल कर 400 गेज की 25 × 12 × 12 सें.मी. आकार वाली काली पॉलीथीन को थैलियों में बुआई करना चाहिए। थैलियों को बालू, चिकनी मिट्टी या बागीचे की मिट्टी तथा गोबर की सड़ी खाद को बराबर मात्रा में मिलाकर बुवाई से पहले ही भर देना चाहिए। चूँकि कटहल का बीज जल्दी ही सूख जाता है अतः उसे फल से निकालने के तुरन्त बाद थैलियों में 4–5 से.मी. गहराई पर बुआई कर देना चाहिए। उचित। देख–रेख करने से मूलवृन्त लगभग 8–10 माह में बंडिंग/ग्रेफ्टिंग योग्य तैयार हो जाते है।

कटहल के पौधे को पैच बडिंग या क्लेफ्ट ग्राफ्टिंग विधि द्वारा तैयार किया जा सकता है। पैच बडिंग के लिए मातृ वृक्ष से सांकुर डाली काटकर ले आते हैं जिससे 2–3 सें.मी. लम्बी कली निकाल कर मूलवृन्त पर उचित ऊँचाई पर उसी आकार की छाल हटाकर बडिंग कर देते हैं। बडिंग के बाद कली को सफेद पॉलीथीन की पट्टी (100 गेज) से अच्छी तरह बाँध देते हैं तथा मूलवृन्त का ऊपरी भाग काट देते हैं। ग्रेफ्टिंग विधि से पौधा तैयार करने के लिए मातृवृक्ष पर ही सांकुर डाली की पत्तियों को लगभग एक सप्ताह पहले पर्णवृन्त छोड़कर काट देते हैं। जब पत्ती का पर्णवृन्त गिरने लगे तब सांकुर डाली को काटकर ले आते हैं। मूलवृन्त को उचित ऊँचाई पर काट देते हैं तथा उसके बीचोबीच 3–4 से.मी. लम्बा चीरा लगा देते हैं। सांकुर डाली के निचले भाग को दोनों तरफ से 3–4 से.मी. लगा कलम बनाते हैं जिसे मूलवृन्त के चीरे में घुसाकर 100 गेज मोटाई की सफेद पॉलीथीन की पट्टी से बाँध देते हैं। छोटानागपुर क्षेत्र में बडिंग के लिए फरवरी–मार्च तथा ग्राफ्टिंग के लिए अक्टूबर–नवम्बर का महीना उचित पाया गया है।

पौधा रोपण एवं देखरेख

कटहल का पौधा आकार में बड़ा तथा अधिक फैलावदार होता है अतः इसे 10 × 10 मी. की दूरी पर लगाया जाता है। पौध रोपण के लिए समुचित रेखांकन के बाद निर्धारित स्थान पर मई–जून के महीने में 1 × 1 × 1 मीटर आकार के गड्ढे तैयार किये जाते हैं। गड्ढा तैयार करते समय ऊपर की आधी मिट्टी एक तरफ तथा आधी मिट्टी दूसरी तरफ रख देते हैं। इन गड्ढ़ों को 15 दिन खुला रखने के बाद ऊपरी मिट्टी दूसरी तरफ रख देते हैं। इन गड्ढ़ों को 15 दिन खुला रखने के बाद ऊपरी मिट्टी में 20–30 कि. ग्रा. गोबर की सड़ी हुई खाद, 1–2 कि.ग्रा. करंज की खली तथा 100 ग्रा.एन.पी. के मिश्रण अच्छी तरह मिलाकर भर देना चाहिए। जब गड्ढे की मिट्टी अच्छी तरह दब जाये तब उसके बीचोबीच में पौधे के पिण्डी के आकार का गड्ढ़ा बनाकर पौधा लगा दें। पौधा लगाने के बाद चारों तरफ से अच्छी तरह दबा दें और उसके चारों तरफ थाला बनाकर पानी दें। यदि वर्षा न हो रही हो तो पौधों को हर तीसरे दिन एक बाल्टी (15 लीटर) पानी देने से पौध स्थापना अच्छी होती है।

पौधा लगाने के बाद से एक वर्ष तक पौधों की अच्छी देख–रेख करनी चाहिए। पौधों के थालों में समय–समय पर खरपतवार निकाल कर निराई–गुड़ाई करते रहना चाहिए। पौधों को जुलाई–अगस्त में

खाद एवं उर्वरक तथा आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए। नये पौधों में 3 वर्ष तक उचित ढांचा देने के लिए काट–छाँट करना चाहिए। ढांचा देते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि तने पर 1.5–2.0 मी0 ऊँचाई तक किसी भी शाखा को नहीं निकलने दें। उसके ऊपर 3–4 अच्छी शाखाओं को चारों तरफ बढ़ाने देना चाहिए जो पौधों का मुख्य ढांचा बनाती हैं। कटहल के पौधों के मुख्य तनों एवं शाखाओं से निकलने वाले उसी वर्ष के कल्लों पर फल लगता है। अतः इसके पौधों में किसी विशेष काट–छांट की आवश्यकता नहीं होती है। फल तोड़ाई के बाद फल से जुड़े पुष्पवृन्त टहनी को काट दें जिससे अगले वर्ष अच्छी फल हो सके। पुराने पेड़ों पर पनपने वाले परजीवी जैसे बांदा (लोरेन्थस), सूखी एवं रोगग्रस्त शाखाओं को समय–समय पर निकालते रहना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

कटहल के पेड़ में प्रत्येक वर्ष फलन होती है अतः अच्छी पैदावार के लिए पौधे को खाद एवं उर्वरक पर्याप्त मात्रा में देना चाहिए। प्रत्येक पौधे को 20–25 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी हुई खाद, 100 ग्रा. यूरिया, 200 ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट तथा 100 ग्रा. म्युरेट ऑफ पोटाश प्रति वर्ष की दर से जुलाई माह में देना चाहिए। तत्पश्चात् पौधे की बढ़वार के साथ खाद की मात्रा में वृद्धि करते रहना चाहिए। जब पौधे 10 वर्ष के हो जाये तब उसमें 80–100 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 1 कि.ग्रा. यूरिया, 2 कि.ग्रा. सि.सु.फा. तथा 1 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति वर्ष देते रहना चाहिए। खाद एवं उर्वरक देने के लिए पौधे के क्षत्रक के नीचे मुख्य तने से लगभग 1–2 मी. दुरी पर गोलाई में 25–30 से.मी. गहरी खाई में खाद के मिश्रण को डालकर मिट्टी से ढक देना चाहिए।

पुष्पण एवं फलन

कटहल एक मोनोसियस पौधा है जिसमें नर एवं मादा पुष्पक्रम (स्पाइक) एक ही पेड़ पर परन्तु अलग–अलग स्थानों पर आते हैं। नर फूल, जिसकी सतह अपेक्षाकृत चिकनी होती है, नवम्बर–दिसम्बर में पेड़ की पतली शाखाओं पर आते हैं। ये फूल कुछ समय बाद गिर जाते हैं। मादा फूल मुख्य तने एवं मोटी डालियों पर जनवरी–फरवरी में आते हैं। मादा फूल अधिक ओजपूर्ण वृन्त, जिसे 'फूटस्टॉक' कहते हैं, पर एकल एवं गुच्छे में आते हैं जिनके साथ नर पुष्प भी निकलते हैं। कटहल एक परपरागित फल है। जिसमें परागण समकालीन नर पुष्प से ही होता है। यदि मादा फूल में समान परागण नहीं होता है तो फल विकास सामान्य नहीं होता है। परागण के पश्चात् पुष्पक्रम का आधार, अण्डाशय और दलाभ (पेरियन्थ) एक साथ विकसित होकर संयुक्त फल (सोरोसिस) का विकास होता है। फल जनवरी–फरवरी से जून –जुलाई तक विकसित होते रहते हैं। इसी समय में फल के अंदर बीज, कोया इत्यादि का विकास होता है और अन्ततः जून–जुलाई में फल पकने लगते हैं।

परिपक्वता एवं उपज

कटहल के फलों को विकास के साथ कई प्रकार से उपयोग में लाया जाता है अतः इसकी परिपक्वता एवं तोड़ाई को उपयोग के आधार पर कई वर्गों में बाँटा जा सकता है। अति नवजात एवं मध्यम उम्र के

फल, जिसे सब्जी के लिए प्रयोग किया जाता है, को उस समय तोड़ना चाहिए जब उसके डंठल का रंग गहरा हरा, गूदा कठोर और कोर मुलायम हो। इसके साथ–साथ बाजार में मांग के आधार पर तोड़ाई को नियंत्रित कर सकते हैं। कटहल के पूर्ण विकसित फल, पेड़ पर एवं तोड़ने के बाद भी पकते हैं। अतः ताजा फल खाने के लिए फलों को पूर्ण परिवक्वता पर तोड़ना चाहिए। साधारणतः फल लगने के 100–120 दिनों बाद तोड़ने लायक हो जाते हैं। इस समय तक डंठल तथा डंठल से लगी पत्तियों का रंग हल्का पीला हो जाता है। फल के ऊपर के काँटे विरल हो जाते हैं एवं काँटों का नुकीलापन कम हो जाता है। कटहल के कच्चे फल को छड़ी से मारने पर खट–खट एवं पके फल से धबधब की आवाज आती है। फलों को किसी तेज चाकू से लगभग 10 सेमी. डंठल के साथ तोड़ने से दूध का बहाव कम हो जाता है। तोड़ते समय फलों के सीधा जमीन पर गिरने से फल फट जाते हैं इसलिए फल के वृन्त को रस्सी से बाँध कर धीरे–धीरे नीचे सावधानीपूर्वक उतार कर किसी छायादार स्थान पर रखना चाहिए। फलों के आपस में रगड़ से छिलके के भूरे होने का भय रहता है जिससे फल की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। कटहल के बीजू पौधे में 7–8 वर्ष में फलन प्रारम्भ होता है जबकि कलमी पौधों में 4–5 वर्ष में ही फल मिलने लगते है। रोपण के 15 वर्ष बाद पौधा पूर्ण विकसित हो जाता है। ऐसा देखा गया है कि जिन वृक्षों में छोटे आकार के फल लगते हैं उनमें संख्या अधिक एव जिन वृक्षों के फल का आकार बड़ा होता है उनमें फलों की संख्या कम होती है। एक पूर्ण विकसित वृक्ष से लगभग 150 से 250 कि.ग्रा. फल प्रति वर्ष प्राप्त होता है।

कीट रोग एवं नियंत्रण

तना वेधक : इस कीट के नवजात पिल्लू कटहल के मोटे तने एवं डालियों में छेद बनाकर नुकसान पहुँचाते हैं। उग्रता की अवस्था में मोटी–मोटी शाखायें सूख जाती हैं एवं फसल को प्रभावित करती है। इसके नियंत्रण के लिए छिद्र को किसी पतले तार से साफ करके नुवाक्रान का घोल (10 मि.ली. / ली.) अथवा पेट्रोल या किरोसिन तेल के चार–पाँच बूंद रूई में डालकर गीली चिकनी मिट्टी से बन्द कर दें। इस प्रकार वाष्पीकृत गंध के प्रभाव से पिल्लू मर जाते हैं एवं तने में बने छिद्र धीरे–धीरे भर जाते है।

गुलाबी धब्बा : इस रोग में पत्तियों को निचली सतह पर गुलाबी रंग का धब्बा बन जाता है जिससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया प्रभावित होती है और फल विकास सुचारू रूप से नहीं हो पाता। इसके नियंत्रण के लिए कॉपर जनित फफूँद नाशी जैसे कॉपर आक्सीक्लोराइड या ब्लू कॉपर के 0.3% घोल का पर्णीय छिड़काव करना चाहिए।

फल सड़न रोग : यह रोग *राइजोपस आर्टीकाप* नामक फफूँद के कारण होता है जिसमें नवजात फल डंठल के पास से धीरे–धीरे सड़ने लगते हैं। कभी–कभी विकसित फल को भी सड़ते हुए देखा गया है। इसके नियंत्रण के लिए फल लगने के बाद लक्षण स्पष्ट होते ही ब्लू कॉपर के 0.3% घोल का दो छिड़काव 15–20 दिनों के अन्तराल पर करें।

काजू

काजू विदेशी मुद्रा प्राप्त करने वाली भारत की एक प्रमुख फसल है। वैसे तो काजू की व्यवसायिक एवं बड़े पैमाने पर खेती केरल महाराष्ट्र, गोवा, कर्नाटक, तामिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा एवं प.बंगाल में की जाती है परन्तु झारखण्ड राज्य के कुछ जिले जो बंगाल और उड़ीसा से सटे हुए हैं वहाँ पर भी इसकी खेती की विपुल सम्भावनाएँ हैं। प्रायः देखा गया है कि राज्य के पूर्वी सिंहभूम, प. सिंहभूम, सरायकेला खरसावां एवं अन्य कुछ जिलों में काजू के देशी प्रजातियों के पौधे पाये जाते हैं। इन पौधों से बहुत गुणवत्ता के काजू नट तो नहीं पैदा होते हैं परन्तु इससे एक संकेत जरूर मिलता है कि यदि इन क्षेत्रों में काजू की उन्नत किस्मों के बागीचे लगाये जाएं एवं उनका सही तरीके से देख रेख एवं रख रखाव किया जाय तो झारखण्ड से भी काजू का निर्यात सम्भव है। प्रस्तुत अध्याय में काजू की व्यवसायिक खेती के कुछ पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है।

भूमि एवं जलवायु

काजू एक उष्ण कटिबन्धीय फसल है जो गर्म एवं उष्ण जलवायु में अच्छी पैदावार देता है। जिन क्षेत्रों में पाला पड़ने की सम्भावना होती है या लम्बे समय तक सर्दी पड़ती है वहाँ पर इसकी खेती प्रभावित होती। 700 मी. ऊँचाई वाले क्षेत्र जहाँ पर तापमान 20° सें.ग्रे. से ऊपर रहता है काजू की अच्छी उपज होती है। 600–4500 मि मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र के लिए उपयुक्त माने गये हैं। काजू को अनेक प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता है परन्तु समुद्र तटीय प्रभाव वाले लाल एवं लेटराइट मिट्टी वाले भू–भाग इसकी खेती के लिए ज्यादा उपयुक्त होते हैं। झारखण्ड राज्य के पूर्वी एवं पश्चिमी सिंहभूम, सरायकेला खरसावां जिले काजू की खेती के लिए अत्यंत उपयुक्त पाये गये हैं। इन जिलों की मिट्टी एवं जलवायु काजू की खेती के लिए उपयुक्त हैं।

उन्नत किस्में

विभिन्न राज्यों के लिए काजू की उन्नत किस्मों की संस्तुति राष्ट्रीय काजू अनुसंधान केन्द्र (पुत्तूर) द्वारा की गई है। इसके अनुसार वैसे तो झारखण्ड राज्य के लिए किस्मों की सस्तुति नहीं है परन्तु जो किस्में उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, बंगाल एवं कर्नाटक के लिए उपयुक्त है उनकी खेती झारखण्ड राज्य में भी की जा सकती है। क्षेत्र के लिए काजू की प्रमुख किस्में वेंगुरला–4, उल्लाल–2, उल्लाल–4, बी.पी.पी.–1, बी.पी.पी.–2, टी.–40 आदि है।

खेत की तैयारी

काजू की खेती के लिए सर्वप्रथम खेत की झाड़ियों तथा घासों को साफ करके खेत की 2–3 बार जुताई कर दें। झाड़ियों की जड़ों को निकाल कर खेत को बराबर कर दें। जिससे नये पौधों को प्रारम्भिक अवस्था में पनपने में कोई कठिनाई न हो।

काजू के पौधों को 7–8 मी. की दूरी पर वर्गाकार विधि में लगाते हैं। अतः खेत की तैयारी के बाद अप्रैल–मई के महीने में निश्चित दूरी पर 60 • 60 • 60 से.मी. आकार के गड्ढे तैयार कर लेते हैं। अगर जमीन में कड़ी परत है तो गड्ढे के आकार को आवयश्कतानुसार बढ़ाया जा सकता है। गड्ढों की 15–20 दिन तक खुला छोड़ने के बाद 5 कि.ग्रा. गोबर की खाद या कम्पोस्ट, 2 कि.ग्रा. राक फॉस्फेट तथा डीएपी के मिश्रण को गड्ढे की ऊपरी मिट्टी में मिलाकर भर देते हैं। गड्ढों के आसपास ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि वहाँ पानी न रूके। अधिक सघनता से बाग लगाने के पौधों की दूरी 5 × 5 या 4 × 4 मी. रखते हैं। शेष प्रक्रियाएँ सामान्य ही रहती है।

पौधा प्रसारण

काजू के पौधों को साफ्ट वुड ग्राफ्टिंग विधि से तैयार किया जा सकता है। भेंट कलम द्वारा भी पौधों को तैयार कर सकते हैं। पौधा तैयार करने का उपयुक्त समय मई–जुलाई का महीना होता है।

पौधा रोपण

काजू के पौधों को वर्षा काल में ही लगाने से अच्छी सफलता मिलती है। तैयार गड्ढों में पौधा रोपने के बाद थाला बना देते हैं तथा थालों में खरपतवार की समय–समय पर निकाई–गुडाई करते रहते हैं। जल संरक्षण के किए थालों में सूखी घास का पलवार भी बिछाते हैं।

खाद एवं उर्वरक

प्रत्येक वर्ष पौधों को 10–15 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद, के साथ–साथ रासायनिक उर्वरकों की भी उपयुक्त मात्रा देनी चाहिए। प्रथम वर्ष में 300 ग्रा. यूरिया, 200 ग्रा. रॉक फास्फेट, 70 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति पौधा की दर से दें, दूसरे वर्ष इसकी मात्रा दुगुनी कर दें और तीन वर्ष के बाद पौधों को 1 किग्रा यूरिया, 600 ग्रा. रॉक फॉस्फेट एवं 200 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति वर्ष मई–जून और सितम्बर–अक्टूबर के महीनों में आधा–आधा बांटकर देते रहे।

काट-छांट

काजू के पौधों को प्रारंभिक अवस्था में अच्छा ढांचा देने की जरूरत होती है अतः उपयुक्त काट–छांट के द्वारा पौधों को अच्छा ढांचा के तत्पश्चात् फसल तोड़ाई के बाद सूखी, रोग एवं कीट ग्रसित तथा कैंची शाखाओं को काटते रहें।

पौधा संरक्षण

काजू में 'टी मास्कीटो बग' की प्रमुख समस्या होती है। इसके वयस्क तथा नवजात नई कोपलों, मंजरों, फलों से रस चूसकर नुकसान पहुँचाते हैं। कभी कभी इसकी समस्या इतनी गम्भीर हो जाती है कि इसके नियंत्रण के लिए पूरे क्षेत्र में एक साथ स्पेशल छिड़काव का प्रबन्ध करना पड़ता है। इसके नियंत्रण के लिए एक स्प्रे सिड्यूल बनाया गया है जो इस प्रकार है।

पहला स्प्रे	–	कल्ले आते समय	–	ऐजाडीरेक्टिन (0.05 प्रतिशत) का
दूसरा स्प्रे	–	फूल आते समय	–	थिएमेथोक्सम (0.1 प्रतिशत) का तथा
तीसरा स्प्रे	–	फल लगते समय	–	थिएमेथोक्सम (0.1 प्रतिशत) का

फसल तोड़ाई एवं उपज –

काजू में पूरे फल की तोड़ाई नहीं की जाती है केवल गिरे हुए नट को इकट्ठा किया जाता है और इसे धूप में सुखाकर तथा जूट के बोरों में भरकर ऊँचे स्थान पर रख दिया जाता है। प्रत्येक पौधे से लगभग 8 किलोग्राम नट प्रतिवर्ष प्राप्त होता है। इस प्रकार एक हेक्टेयर में लगभग 10–15 क्विंटल काजू के नट प्राप्त होते हैं। जिनको प्रसंस्करण के बाद खाने योग्य काजू प्राप्त होता है।

नींबू वर्गीय फल

झारखण्ड राज्य के कुछ जिले नींबू वर्गीय फलों की खेती के लिए उपयुक्त हैं। अर्ध शुष्क क्षेत्र में अवस्थित भूभाग जिनमें गढ़वा, चतरा, डाल्टनगंज, लातेहार जिले मुख्य रूप से आते हैं, में नींबू वर्गीय फलों की अच्छी खेती की जा सकती है। यहाँ पर सन्तरा मौसम्बी, किन्नों, नींबू आदि के बागवानी की अपार सम्भावना है। परन्तु जैसा कि देखा गया है यदि इन बगीचों की समुचित देख रेख न की जाय तो इनके पौधे उम्र से पहले ही उत्पादन देना बन्द कर देते हैं और सूखने लगते हैं। जिसे सिट्रस डिक्लाइन कहते हैं, अतः नींबू वर्गीय फल फसलों की भरपूर पैदावार के लिए उनके उचित बाग प्रबन्धन की आवश्यकता है। इसके बारे में यहाँ पर विस्तार से चर्चा की जा रही है।

भूमि एवं जलवायु

हल्की एवं मध्यम उपज वाली बलुई दोमट मिट्टी नींबू वर्गीय फलों के लिए उपयुक्त होती है। झारखण्ड राज्य की लाल लेटराईट मिट्टी जिसमें जल निकास की अच्छी व्यवस्था होती है तथा पी.एच. मान भी अम्लीय है नींबू वर्गीय फलों के लिए उपयुक्त है। इसके लिए उपोष्ण कटिबन्धीय अर्धशुष्क जलवायु अत्यंत उपयुक्त है। जिन क्षेत्रों में सर्दी लम्बे समय तक होती है और पाला पड़ने की सम्भावना रहती है इसके लिए उपयुक्त नहीं है। फल परिपक्व होते समय कम तापमान तथा शुष्क वातावरण में सन्तरा मौसम्बी, डोव, आदि में अच्छी मिठास विकसित होती है। रात एवं दिन के तापमान का सामन्जस्य फलों में अच्छे रंग, मिठास एवं गुणवत्ता के विकास में मददगार साबित होते हैं।

उन्नत किस्में

नींबू वर्गीय फलों में दो प्रकार के फल प्रमुख हैं। एक तो वे जो खट्टे फल देते हैं और दूसरे जो मीठे। फलों के लिए उगाए जाते हैं। खट्टे फलों में मुख्य रूप से लाइम और लेमन है जबकि मीठे फलों में सन्तरा, मौसम्बी, मीठा नींबू, ग्रेपफूट, डाब आदि प्रमुख हैं। झारखण्ड राज्य में विभिन्न फलों की निम्नलिखित किस्में उगाई जा सकती हैं।

खट्टा नींबू (लाइम)	– कागजी कलान, सीडलेस, रंगपुर लाइन, विक्रम, प्रोमालिनी
नींबू (लेमन)	– नेपाली ओवलांग, पन्त लेमन –1, आसाम लेमन (गन्धराज), सीडलेस, बारामासी
सन्तरा	– किन्नो, नागपुर, सन्तरा, कुर्ग सन्तरा, खासी सन्तरा
मौसमी	– माल्टा, मुसम्बी, सथगुड़ी, पाइनएप्पल, ब्लड रेड, जाफा
ग्रेपफूट	– मार्स सीडलेस, गंगानगर रेड, डन्कन, रूबी रेड
डाब	– चकोतरा, गागर, स्थानीय डाव

उपरोक्त किस्मों में से मीठे वर्ग में किन्नों और नागपुर सन्तरा, माल्टा, ब्लड रेड, संथगुडी, मौसम्बी, चकोतरा और स्थानीय डाब तथा खट्टे वर्ग में कागजी कलान, सीडलेस, नेपाली ओवलंग, पन्त लेमन–1 और गन्धराज की व्यवसायिक खेती झारखण्ड में की जा सकती है।

पौधा प्रसारण

नींबूवर्गीय फलों को मुख्यतयाः बडिंग एवं कुछ हद तक ग्राफ्टिंग विधि द्वारा प्रसारित किया जाता है। कागजी नींबू को मुख्य रूप से बीज अथवा गूटी द्वारा प्रसारित किया जाता है। लेमन के पौधे गूटी, दाबा या कलम द्वारा तैयार किये जाते हैं। नींबू वर्गीय फलों में डिक्लाइन की समस्या गंभीर होती है अतः इनमें उपयुक्त मूलवृन्त का प्रयोग भी किया जाता है जिनपर बडिंग या ग्राफ्टिंग (सन्तरा, मोसमी) द्वारा अच्छी गुणवत्ता के पौधे तैयार किये जा सकते हैं।

बगीचा लगाने का तरीका

बगीचा लगाने के लिए 5 × 5 मी. की दूरी पर वर्गाकार विधि में रेखांकन करके 60 से.मी. × 60 से.मी. × 60 से.मी. आकार के गड्ढे तैयार करने चाहिए। लातेहार, डाल्टनगंज एवं चतरा जैसे जिलों में जहां की मिट्टी में मुरम या पत्थर के टुकड़ों की अधिकता है वहाँ गड्ढों की गहराई 1–1.5 मी. तक रखनी चाहिए। तब गड्ढों की खुदाई मई–जून में तथा भराई जून–जुलाई में करनी चाहिए। यदि मिट्टी अत्यन्त खराब है। ' तालाब की अच्छी मिट्टी में 20–25 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद, 1 कि.ग्रा. करंज / नीम / महुआ की खली 50–60 ग्राम दीमकनाशी रसायन, 100 ग्रा. सि.सु.फा. / डीएपी प्रति गड्ढे के दर से देने से बाग स्थापना अच्छी होती है और पौधों की बढ़वार भी उचित रहती है। पौधों को जुलाई–अगस्त में गड्ढों के बीचोबीच उनके पिण्डी के आकार की जगह बनाकर लगाना चाहिए तथा उनके चारों तरफ थाला बनाकर पानी देना चाहिए। पौधा लगाते समय यह ध्यान रखें कि उनका ग्राफ्टिंग / बांडिग का जोड़ जमीन से 10–15 से.मी. ऊपर रहे।

पौधों की देख-रेख

नींबू वर्गीय फलों के नवजात पौधों को उचित देख रेख की आवश्यकता होती है। नये पौधों को गर्मी के मौसम में तेज धूप एवं लू तथा सर्दी के मौसम में ठण्ड एवं पाले के बचाव का समुचित प्रबन्ध करना चाहिए। पौधों के जड़ों के पास पर्याप्त नमी बनाये रखने के लिए समय–समय पर सिंचाई की व्यवस्था करनी चाहिए एवं पलवार बिछानी चाहिए। खर पतवार नियंत्रण हेतु भी थालों की समय पर गुड़ाई एवं पतवारं का प्रयोग लाभकर पाया गया है।

वानस्पतिक अवस्था में पौधों में उचित ढांचा निर्माण अत्यन्त जरूरी होता है, अतः उनकी उचित काट छांट करनी चाहिए। पौधों को पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्व भी देना जरूरी होता है। अतः सन्तरा और मौसम्बी के प्रत्येक पौधे को 20–30 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी हुई खाद, 1–1.5 कि.ग्रा. युरिया 1–1.5 कि.ग्रा. सि.सु. फा. तथा 0.5 – 0.6 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति वर्ष देने चाहिए। इसके साथ ही साथ फल देने वाले पौधों को जिंक सल्फेट (200 ग्रा. / पौधा) तथा बोरान (100 ग्रा / पौधा) भी दिया जाना चाहिए।

उर्वरक की अच्छी मात्रा नये कल्ले निकलने के समय तथा हल्की मात्रा फल लगने के बाद देने से अच्छी उपज मिलती है। पौधों की वानस्पतिक अवस्था में खाद एवं उर्वरक का संतुलित प्रयोग से उनकी बढ़वार अच्छी होती है। नींबू में भी इसी प्रकार से उर्वरक का व्यवहार किया जाता है।

फल एवं उपज

नींबू वर्गीय फलों में मुख्यतः फरवरी मार्च में फूल आते हैं, परन्तु नींबू में सितम्बर–अक्टूबर में भी फूल आते हैं सन्तरा, मौसम्बी, ग्रेपफूट के फल 7–8 महीनों में तैयार होते हैं जबकि नींबू के फल 3–4 महीनों में उपयोग के लायक हो जाते हैं। अतः फलों की तोड़ाई उनकी उपयोगिता, गुणवत्ता, बाजार मांग आदि के आधार पर सुनिश्चित करना चाहिए। किन्नों तथा कागजी नींबू के पौधे अधिक उपज देने वाले माने गये हैं। किन्नों के पूर्ण विकसित पौधे से 2000 – 2500 फल/वर्ष तथा कागजी नींबू के पौधे से 2000 – 3000 फल/वर्ष प्राप्त किया जा सकता है।

अच्छी पैदावार के गुर

नींबू वर्गीय फलों की सबसे विराट समस्या है फलों का झड़ना। फूल और फलों का गिरना मुख्य रूप से अण्डाशय के निष्क्रिय होने, निषेचन क्रिया न होने तथा पोषक तत्वों की कमी एवं नमी की कमी अथवा उतार चढ़ाव के कारण होता है। परिणाम स्वरूप मात्र 8–10 प्रतिशत फूल ही फल के रूप में विकसित हो पाते हैं। अतः अच्छी फसल के लिए पौधों पर फल लगने के बाद प्लैनोफिक्स (2 मि.ली./5ली.) एवं जिंक सल्फेट (5ग्रा./ली.) का 2–3 छिड़काव करना चाहिए साथ ही साथ पौधों को पर्याप्त पोषण, नमी तथा कीड़ों एवं बीमारियों का रोकथाम भी करना चाहिए। इसके अतिरिक्त नींबू में फलों का फटना तथा सन्तरा एवं मौसम्बी में जूस का ना बनना आदि भी समस्या है। जिसे पर्याप्त पोषण से ठीक किया जा सकता है।

रोग एवं कीट नियंत्रण

नींबू वर्गीय फलों में कैंकर, एन्थ्रेक्नोज, गोंद रिसाव जैसे रोगों के साथ साथ अनेक प्रकार के विषाणु जनित रोग लगते हैं। कैंकर के नियंत्रण हेतु स्ट्रेप्टोमाइसीन सल्फेट (500–1000 जीबीएम) का 2–3 छिड़काव 15 दिनों पर करें। एन्थ्रेक्नोज के लिए बोर्डो मिश्रण (5 : 5 : 50) या क्लोरोथालोनिल/ब्लूकापर (3ग्रा./ली.) का छिड़काव करें एवं विषाणु जनित रोग के नियंत्रण हेतु विषाणु मुक्त पौधों की ही बाग लगायें, पौधों को पर्याप्त पोषण एवं देख रेख की व्यवस्था करें तथा डिक्लाइन नियंत्रण सिड्यूल का अनुपालन करें।

इसी प्रकार सिट्रस सैला, नींबू की तितली, लीफ माइनर, सफेद मक्खी, छाल खाने वाले कीट, थ्रिप्स माइटस, नेमैटोड, मिली बग, जैसे कीट भी नींबू वर्गीय फलों के उपज को प्रभावित करते हैं। तितली के गिडार नई पत्तियों को काट कर खा जाते हैं, जबकि सैला के नवजात पत्तियों के रस चूसकर पौधों को नुकसान पहुंचाते हैं। कीड़ों को चुन कर मारने तथा पौधों पर थिएमेथोक्सम (0.05%) के छिड़काव से इनका नियंत्रण किया जा सकता है। इसी प्रकार से अन्य कीड़ों तथा बीमारियों का समय पर समुचित इलाज करके नींबू वर्गीय फलों से अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है।

पौधो की सूखने की समस्या (सिट्रस डिक्लाइन) एवं निदान

नींबू वर्गीय फलों के पौधे जब 15–20 वर्ष के हो जाते हैं तब उनमें सूखने की समस्या पैदा हो जाती है। जिसे 'सिट्रस डिक्लाइन' कहते हैं। झारखण्ड की अम्लीय मिट्टी में यह समस्या ज्यादा देखी गयी है अतः उसका उचित निदान एवं पोषण प्रबन्ध अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। इसके नियंत्रण के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया (डिक्लाइन नियंत्रण सिड्यूल) अपनानी चाहिए।

काट-छांट एवं सफाई

- सूखी एवं रोग ग्रसित डालियों को काट कर हटा दें।
- मुख्य तने पर लगे बोरर के छिद्रों को साफ कर उसमें किरोसिन तेल से भींगी रूई ठूस कर बन्द कर दें।
- मकड़ी के जालों तथा कैंकर से ग्रसित पत्तियों को साफ कर दें।
- डालियों के कटे भागों पर ब्लू कापर. अरण्डी तेल का पेंट बनाकर लगायें।
- रोगग्रसित पत्तियों, डालियों को इकट्ठा करके जला दें तथा बागीचे की जमीन की गुड़ाई करें। उपरोक्त प्रक्रिया मार्च–अप्रैल में करें और गर्मी में जमीन खुला रखें।।

पोषण एवं रोग प्रबंध

- रोगग्रसित पौधों में 40 किग्रा गोबर की खाद + 4.5 किलो नीम / करंज खली + 150 ग्रा. ट्राइकोडर्मा (मोनीटर) + 1 कि.ग्रा. युरिया 800 ग्रा. सि.सु.फा. + 500 ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश + 1 कि.ग्रा. चूना प्रति वृक्ष के हिसाब से दो भागों में बांटकर जून–जुलाई और अक्टूबर में दें। यह प्रक्रिया लगातार 2 वर्षों तक अवश्य करें।
- जब पौधों पर पत्तियां आ जायं तब उन पर 200 ग्रा. नाइट्रोजन, 75 ग्रा. फास्फेट, 125 ग्रा. पोटाश का घोल बनाकर 15 दिनों के अन्तराल पर 2–3 छिड़काव करें। इसी के साथ जिंक सल्फेट (2 ग्रा./ ली.) तथा कैल्सियम क्लोराइड/कैल्सियम नाइट्रेट (5 ग्रा./ली.) का 2 छिड़काव भी करें।
- वायरस को फैलाने वाले कीड़ों के नियंत्रण का समुचित प्रबन्ध करें। इसके लिए नये कल्ले निकलते समय इमिडाक्लोप्रिड (3 मिली/10ली.) या क्वीनालफास (20 मि.ली./10 ली.) तथा डाइमेथोएट (15 मि.ली./10 ली.) या कार्बारिल (20 ग्रा./10ली.) का घोल बनाकर दो–दो छिड़काव एकान्तर विधि से करें।
- मृदाजनित एवं पत्तियों पर लगने वाले रोगों के नियंत्रण का प्रबन्ध करें। फाइटोफ्थोरा के नियंत्रण के लिए 1 प्रतिशत बोडो मिक्चर में 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का घोल बनाकर वर्षा ऋतु में छिड़काव करें। कैंकर के निदान हेतु स्ट्रेपटोसाइक्लिन या पाउसामाइसिन (500 पीपीएम) का 2–3 छिड़काव नये कल्ले आते समय करें।

इस प्रकार से यदि सूचीबद्ध तरीके से प्रयास किये जाय तो नींबू वर्गीय फलों में सूखने की समस्या तथा कम पैदावार की समस्या से निजात मिल सकती है।

सन्तरा की खेती के लिए मासिक कार्य का विवरण

जनवरी-फरवरी -

- नये पौधों की काट–छांट करें।
- गोद रिसाव के नियंत्रण के लिए पौधों के तनों पर लेप लगायें।
- कीड़े मकोड़ों का नियंत्रण का प्रबन्ध करें।
- नये पौधों के थालों की सफाई तथा उनकी समस्याओं का समुचित निदान करे।
- पौधों की उम्र के अनुसार डोलोमाइट का प्रयोग करें।

मार्च-अप्रैल -

- फलों की तोड़ाई समाप्त करें।
- पौधों के खाद एवं उर्वरक का प्रयोग करें।
- कीड़ों एवं बीमारियों का नियंत्रण करें।
- नयी पत्तियां आने पर सूक्ष्म पोषक तत्वों का छिड़काव करें।

मई-जून -

- खाद एवं उर्वरक प्रयोग का कार्य पूरा करें।
- नये पौधों का गर्मी में बचाव करें एवं नियमित पानी दें।
- मूलवृन्त से निकलने वाले जंगली कल्लों को हटायें।
- अगर नया बगीचा लगाना है तो रेखांकन, गड्ढा की खुदाई, भराई इत्यादि का काम करें।
- पुराने पौधों में खाद एवं उर्वरक का प्रयोग करें।

जुलाई-अगस्त -

- नये बाग में पौधे लगायें
- बाग में खाद एवं उर्वरक का प्रयोग करें तथा अन्तर फसल लगायें।
- जल निकास का समुचित प्रबन्ध करें।
- रोग एवं कीड़े–मकोड़ों का नियंत्रण करें।
- थालों से खर–पतवार निकालें तथा नये पौधों की देख रेख करें।
- गोद निकलने पर पौधों के तनों पर पेस्ट लगायें।

सितम्बर-अक्टूबर -

- नये पौधों की देख रेख करें।
- खरपतवार नियंत्रण करें।
- कीड़े एवं बीमारियों का नियंत्रण करें।

- सूक्ष्म पोषक तत्वों का छिड़काव करें।
- फलों से लदी डालियों को सहारा प्रदान करें।

नवम्बर-दिसम्बर -

- सूखी डालियों को हटायें।
- नये पौधों को ठण्डी से बचाने का इन्तजाम करें।
- फलों पर लगने वाले कीड़ों तथा बीमारियों का नियंत्रण करें।
- पके फलों की तोड़ाई करें।

इसी प्रकार से नींबू वर्गीय अन्य फसलों में भी माह दर माह किये जाने वाले कार्यों को सूचीबद्ध करके उनका समय पर अनुपालन करना चाहिए। यदि बताये गये विधियों एवं क्रियाओं का समय पर एवं सही ढंग से पालन किया जाय तो झारखण्ड में भी नींबू वर्गीय फसलों विशेषकर किन्नों तथा कागजी नींबू से भरपूर पैदावार ली जा सकती है।

झारखण्ड में अन्य फलों की वैज्ञानिक खेती

नवोदित झारखण्ड प्रान्त में अनेक स्थानीय एवं देशी फल बहुतायत में पाये जाते हैं जिनका उत्पादन केवल उनके प्राकृतिक आवास क्षेत्रों में ही होता है। चिरौंजी, बेल, कमरख, आसाम लेमन, जामुन, कैथा, केंद आदि इस क्षेत्र के देशी फल हैं जबकि इमली, शरीफा, सपोटा (चीकू) नाशपाती, सतालू, इत्यादि इस क्षेत्र में वर्षों से उगाये जाने के कारण इस क्षेत्र की जलवायु में स्थानीय फलों की तरह ही उत्पादन देते हैं। ये फल स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से अत्यंत ही उपयोगी है। इनमें अनेक खनिज तत्व एवं विटामिन प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं जिनका विवरण नीचे सारणी में दिया गया है। ये स्थानीय फल यहाँ की भूमि और जलवायु में अच्छी तरह पनपते और उत्पादन देते हैं परन्तु इनकी व्यवसायिक खेती न होने के कारण इन्हें गौण फलों की श्रेणी में रखा जाता है। यदि इनका वैज्ञानिक तरीके से खेती की जाये तो इनसे अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है। उत्पादन बढ़ाने के साथ ही साथ यदि इनके उपयोग एवं परिरक्षण पर भी ध्यान दिया जाये। तो इस क्षेत्र के किसानों को अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है। विभिन्न फलों की आवश्यक जानकारी यहां पर दिया जा रहा है जबकि कुछ फल जो दिन प्रतिदिन ज्यादा प्रचलित होते जा रहे हैं। उनके बारे में विस्तृत जानकारी भी इस पुस्तक में देने का प्रयास किया गया है।

भूमि का चुनाव

स्थानीय फलों के फसल उत्पादन के लिए इस क्षेत्र की टांड़ एवं उपवार जमीन अत्यंत उपयुक्त पायी गयी है। इस जमीन में वर्षा ऋतु में मृदा कटाव के कारण ऊपरी उपजाऊ भाग बह जाया करता है। अतः उसमें कन्टूर के अनुसार मेड़ बना करके छोटे–छोटे खेत बनाकर इन पौधों की खेती की जा सकती है। जहाँ तक संभव हो, किसी स्थान पर उन्हीं स्थानीय फलों की खेती करें जहाँ पर प्राकृतिक जंगलों एवं आस–पास के क्षेत्रों में उसके पौधे उग रहे हो। उदाहरण के लिए नेतरहाट के आस–पास का क्षेत्र सतालू एवं नाशपातीय साहिबगंज, पाकुड़, राँची एवं दुमका का क्षेत्र शरीफाय राँची, पश्चिम सिंहभूम एवं आस–पास का क्षेत्र सपोटा, इमली, केंद, बेल, जामुन, गुलाब जामुन, कमरख, कैथा तथा झारखण्ड का मध्य एवं पूर्वी भाग आसाम लेमन, चीकू, शरीफा, इमली, चिरौंजी, जामुन, नाशपाती इत्यादि फलों के सफल उत्पादन के लिए उपयुक्त है। इसके अतिरिक्त कुछ देशी फलों जैसे केंद, शरीफा, चिरौंजी, इमली इत्यादि को उनके प्राकृतिक 'वास में (स्वस्थान पर ही) रख–रखाव करके उनसे अच्छी पैदावार ली जा सकती है।

बाग लगाने की तैयारी एवं रोपण

स्थानीय फलों की लाभदायक खेती के लिए ऐसे स्थान का चुनाव करें जहाँ अन्य फसलों को पैदा करने में समस्या हो। चुने हुए स्थान को पहले साफ करके कन्टूर के अनुसार मेढ़बन्दी कर लें। तत्पश्चात् उसमें निश्चित दूरी पर गड्ढ़ा तैयार करके पौध रोपण करना चाहिए। बड़े आकार वाले पौधों जैसे –इमली, केंद, चीकू इत्यादि को 8–10 मी. लाइन से लाइन तथा 8–10 मी. पौधे से पौधे की दूरी पर लगाना

चाहिए जबकि छोटे आकार वाले पौधों जैसे – शरीफा, नाशपाती, गंधराज इत्यादि को 5 मी. लाइन से लाइन और 5 मी. पौधे से पौधे की दूरी पर लगाना चाहिए। रेखांकन करने के बाद मई माह में निश्चित दूरी पर 1 × 1 × 1 मी. (बड़े पौधों के लिए) 60 × 60 × 60 सें.मी. (छोटे पौधों के लिए) आकार के गड्ढ़े तैयार कर लेना चाहिए। 15 दिन खुला छोड़ने के पश्चात् गड्ढे को उसके ऊपरी भाग की मिट्टी में 25–30 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी की दर से मिलाकर भर देना चाहिए। जब गड्ढे की मिट्टी 1 या 2 बरसात के बाद अच्छी तरह दब जाये तब जून–जुलाई के महीने में गड्ढे के बीचोबीच पौधों के पिंडी के आकार का गड्ढ़ा बनाकर पौधों को लगाने से अच्छी सफलता मिलती है। पौधा लगाने के बाद उसके चारों तरफ की मिट्टी को अच्छी तरह से दबाकर एक थाला बना देना चाहिए। इन थालों में 1 सप्ताह तक प्रति दिन एक बाल्टी पानी देते रहना चाहिए। यदि बरसात हो रही हो तो पानी देने की आवश्यकता नहीं होती।

पौधा तैयार करना

गौण फलों की अधिकांश प्रजातियों के पौधे बीज द्वारा ही तैयार किए जाते हैं परन्तु पूर्ण सत्यरूपता के ' वानस्पतिक विधि से पौधा तैयार करना चाहिए। आसाम लेमन का पौधा दाब कलम या अर्द्धकठोर कलम विधि से तैयार किया जा सकता है जबकि नाशपाती और सतालू का पौधा कठोर कलम विधि द्वारा तैयार कर सकते हैं। इमली के बीजू पौधों में फलन देर से आती है अतः जल्दी फलन के लिए कलिकायन विधि द्वारा पौधा तैयार कर सकते हैं। शरीफा के पौधों को फरवरी–मार्च में एक साल पुराने बीजू पौधों पर ग्रॉफ्टिंग विधि द्वारा तैयार किया जा सकता है। इसके बीजू पौधों से भी तीसरे वर्ष फल मिलना प्रारंभ हो जाता है। विभिन्न स्थानीय फलों के पौधों को तैयार करने की विधि एवं उचित समय का विवरण निम्न सारणी में दिया जा रहा है।

स्थानीय फलों के पौधे तैयार करने की विधि एवं समय

फल प्रजाति	पौधा तैयार करने की विधि	पौधा तैयार करने का उचित समय
शरीफा	बीज, ग्राफ्टिग	जून–अगस्त, फरवरी–मार्च
बेल	बीज, कलिकायन	जून–अगस्त
चीकू	बीज, ग्राफ्टिग	जून–अगस्त
जामुन	बीज, कलिकायन	जून–अगस्त
गुलाब जामुन	गूटी, बीज	जुलाई–अगस्त
चिरौंजी	बीज, ग्राफ्टिंग	जून–जूलाई
कमरख	गूटी, बीज, जड़ कलम	जून–अगस्त।
कैथा	बीज	जुलाई–अगस्त

केंद	बीज,ग्राफ्टिग, जड़ कलम	जुलाई–अगस्त
नाशपाती	कठोर कलम	फरवरी–मार्च
सतालू	ग्राफ्टिग, कलिकायन	फरवरी–मार्च
आसाम लेमन	दाब कलम, अर्द्धकठोर कलम	जुलाई–अक्टूबर
इमली	बीज, कलिकायन	जून–अगस्त

किस्मों का चुनाव

देशी फलों के उन्नत किस्मों के चयन एवं सुधार का काम बागवानी एवं कृषि वानिकी शोध कार्यक्रम, प्लाण्डु, राँची में किया जा रहा है। उत्पादकता एवं गुणवत्ता के आधार पर केन्द्र ने बेल, शरीफा, इमली एवं गंधराज की कुछ अच्छी किस्मों का पता लगाया है। नाशपाती की नेतरहाट लोकल तथा नख पीयर, सतालू की प्रताप, शान–ए–पंजाब एवं प्रभात तथा चीकू काली पत्ती, पी.के.एम.1, डी.एस.एच.2 की क्रिकेट बाल एवं भूरी पत्ती इस क्षेत्र की सफलतम् किस्में हैं। इस क्षेत्र के लिए विभिन्न स्थानीय एवं देशी फलों की उपयुक्त किस्मों का विवरण निम्न सारणी में दिया जा रहा है।

झारखण्ड के लिए स्थानीय फलों की प्रमुख किस्में

फल प्रजाति	**उपयुक्त किस्में**
शरीफा	सी.एच.इ.एस. सेलेक्सन, बालानगर, अर्का सहन
बेल	नरेन्द्र बेल–5, नरेन्द्र बेल–7, पंत अपर्णा, सी एस एच बेलदृ2, गया कागजी
चीकू	क्रिकेट बाल, काली पत्ती, भूरी पत्ती, डीएस.एच–2
जामुन	स्थानीय, फरेन्दा
गुलाब जामुन	स्थानीय
चिरौंजी	स्थानीय
कमरख	स्थानीय
केंद	स्थानीय
कैथा	स्थानीय
नाशपत्ती	नेतरहाट लोकल, नख पीयर
सतालु	प्रभात, प्रताप, फ्लोरिडा सन, फ्लोरिडा रेड, शान–ए–पंजाब
आसाम लेमन	गंधराज
इमली	पी.के.एम.–1, प्रतिष्ठान, स्थानीय

पौधों की देख-रेख एवं काट-छाँट

पौधा लगाने के प्रथम 2–3 वर्षों तक समुचित देख–रेख की आवश्यकता पड़ती है। खास तौर पर जाड़े एवं गरमी में पौधों की नियमित सिंचाई तथा लू एवं पाले से बचाना जरूरी होता है। पौधों के 2–3 वर्ष की उम्र तक उसमें काट–छांट करके निश्चित आकार देना चाहिए जिससे भविष्य में इनका ढांचा मजबूत एवं आकार सुडौल बन सकें। जब पौधे फलन में आ जाते है तब कुछ प्रजातियों जैसे नाशपाती एवं सतालु में जनवरी–फरवरी में काट–छांट करने से नई शाखाओं एवं फूलों का विकास होता है। इमली, शरीफा, चीकू, कमरख, बेल, चिरौंजी इत्यादि में नियमित काट–छांट की आवश्यकता कम पड़ती है। पौधों की समय–समय पर निकाई–गुड़ाई करके खर–पतवार नियंत्रण करते रहना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

गौण एवं स्थानीय फलदार पौधों को संतुलित खाद एवं उर्वरक देने से उनकी बढ़वार अच्छी एवं पैदावार अधिक होती है। पौधों को 3 वर्षों तक 20–25 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद, 1.5 – 2.0 कि.ग्रा. करंज की खली 150 यूरिया, 150 सिंगल सुपर फॉस्फेट तथा 150 ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश देना चाहिए। इस मात्रा को धीरे–धीरे बढ़ाते रहना चाहिए और पूर्ण विकसित होने पर पौधों को 30–40 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 3 कि.ग्रा. करंज की खली, 1कि.ग्रा. यूरिया, 800–1000 ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट एवं 400 ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति वृक्ष प्रति वर्ष देना चाहिए। खाद एवं उर्वरकों को जून–जुलाई में छत्रक के नीचे गोलाई में देकर अच्छी तरह ढक देना चाहिए। नाशपाती एवं सतालू में फरवरी–मार्च में खाद देने से अच्छी पैदावार मिलती है। खाद एवं उर्वरक देने के बाद यदि बरसात नहीं हो रही है तो समुचित सिंचाई करने से पौधों को लाभ मिलता है।

सिंचाई एवं जल संरक्षण

पौधों के प्रारंभिक अवस्था में गरमी के मौसम में 10–12 दिनों के अन्तराल तथा सर्दी के मौसम में 15–20 दिनों के अंतराल पर पानी देना चाहिए। पौधों के जड़ो के पास नमी का उचित स्तर बनाये रखने तथा वर्षा जल को संरक्षित रखने के लिए सितम्बर–अक्टूबर में धान के पुआल या सूखे खर–पतवार की पलवार (मल्चिग) बिछाने से पौधों की बढ़वार एवं उपज अच्छी होती है। स्थानीय फल –पौधे चूंकि इस जलवायु के पूर्ण अभ्यस्त होते हैं अतः इन्हें अधिक पानी की आवश्यकता नहीं पड़ती है, परन्तु भरपूर पैदावार के लिए पौधों को समय–समय पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करना लाभदायक होता है। नाशपाती, सतालू और चीकू में फल विकास के समय पानी आवश्यक होता है जबकि शरीफा, इमली इत्यादि फल का विकास वर्षा ऋतु में होने के कारण सिंचाई की बहुत कम आवश्यकता पड़ती है।

पुष्पण एवं फलन

वानस्पतिक विधि से तैयार पौधे जल्दी फल देने लगते हैं जबकि बीज द्वारा तैयार पौधों में फलन देर से प्रारंभ होता है। इस केन्द्र पर किए गए परीक्षणों से यह पता लगाया गया है कि उचित बाग प्रबंध करने

पर शरीफा का बीजू पौधा तीसरे वर्ष से फल देना प्रारंभ कर देता है। विभिन्न पौधों में फूलने एवं फलने का समय निम्न सारणी में दिया जा रहा है। अतः उसमें उसी के अनुसार बाग प्रबंध एवं देख–रेख करनी चाहिए।

स्थानीय फलों के फूलने-फलने की उम्र एवं समय

फल	फलने की उम्र (वर्ष)		फूलने का समय	फल पकने का समय
	बीजू	कलमी		
शरीफा	2–3	2–3	जुलाई–अगस्त	सितम्बर–अक्टूबर
बेल	8–10	4–5	अप्रैल–मई	मार्च–अप्रैल
चीकू	8––10	2–3	फरवरी–अप्रैल	जुलाई–अगस्त
जामुन	8–10	5–6	मार्च–अप्रैल।	जून–अगस्त
गुलाब जामुन	7–8	5–6	मार्च–अप्रैल	जून–जुलाई
चिरौंजी	10–12	5–7	फरवरी–मार्च	मई–जून
कमरख	8–10	5–6	मार्च–अप्रैल	अगस्त–सितम्बर
कैथा	10–12	–	मार्च–अप्रैल	अगस्त–सितम्बर
केंद	15–20	7–8	फरवरी–मार्च	मई–जून
नाशपाती	5–6	3–4	फरवरी–मार्च	जून–अगस्त
संतालू	5–6	2–3	फरवरी मार्च	अप्रैल–मई
आसाम लेमन	4–5	2–3	वर्ष भर	वर्ष भर
इमली	20–25	7–8	जुलाई–अगस्त	फरवरी–मार्च

पौधा सुरक्षा

गौण एवं स्थानीय फल साधारणतः कीट एवं रोग–रोधी होते है अतः इनमें किसी विशेष पौध सुरक्षा की आवश्यकता नहीं पड़ती। कुछ फलों जैसे जामुन, कैथा इत्यादि में तना वेधक कीट का प्रकोप होता है। इसके नियंत्रण के लिए टहनी पर स्थित छिद्रों को साफ करके मिट्टी के तेल से भींगी हुई रूई ठूस कर चिकनी मिट्टी के लेप कर देने से उसमें उपस्थित कीट मर जाता है। यदि पत्ती खाने वाले या फूल का रस चूसने वाले कीटों का प्रकोप देखा जाए तो उसे मोनोक्रोटोफास दवा से 0.1 प्रतिशत घोल (1 मि.ली. दवा प्रति ली.पानी) के छिड़काव से नियंत्रित किया जा सकता है।

प्राकृतिक स्थिति में स्थानीय गौण फलों का प्रबंध

कुछ गौण फल जैसे इमली एवं केंद का नया बागीचा लगाने पर उसमें फलन में काफी समय लगता है। अतः यदि इनके पुराने पौधों को उसी स्थान पर अच्छी तरह से रख–रखाव एवं देख–रेख किया जाए तो उनसे अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है। जैसे कि विदित है कि जंगल में उगने वाले पौधों का अधिकांश फल चिड़ियों या जंगली जानवरों द्वारा बर्बाद हो जाता है। अतः ऐसे पौधों को यदि अच्छी तरह से साफ–सफाई करके उसका उचित प्रबंध किया जाए एवं उसमें जुलाई–अगस्त के महीने में उचित तरीके से खाद एवं उर्वरक का प्रयोग किया जाए तो उन पौधों से अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। झारखण्ड प्रदेश में बहुत सारे छोटे–छोटे झुरमुट और जंगल हैं यदि उन स्थानों को स्वस्थान बागीचों (इन सीटू आरर्चड) में बदल दिया जाए तो इस क्षेत्र के स्थानीय फल प्रजातियों के उत्पादन को कई गुना बढ़ाया जा सकता है।

शरीफा

झारखण्ड की भूमि और जलवायु शरीफा की खेती के लिये अत्यन्त उपयुक्त है। यहाँ के जंगलों में इसके पौधे अच्छे फल देते है जिसे इकट्ठा करके स्थानीय बाजारों में अगस्त–अक्टूबर तक बेचा जाता है। यदि इसकी वैज्ञानिक विधि से खेती की जाय तो यहाँ के किसान इससे अच्छी आमदनी प्राप्त कर सकते है। साथ ही पोषण सुरक्षा में भी मदद मिलेगी।

शरीफा एक मीठा व स्वादिष्ट फल है। इसे सीताफल भी कहा जाता है। इसका वानस्पतिक नाम *अनोनस्क्वैमोसा* है। इसकी पत्तियाँ गहरी हरी रंग की होती है। जिसमें एक विशेष महक होने की वजह से कोई जानवर इसे नहीं खाते हैं। इसलिये इसके पौधे को विशेष देखभाल की आवश्यकता नहीं होती है। साथ ही इसके पौधों पर हानिकारक कीड़े एवं बीमारियाँ भी नहीं लगते हैं। शरीफा औषधीय महत्व का भी पौधा है। इसकी पत्तियाँ हृदय रोग में टॉनिक का कार्य करता है क्योंकि इसकी पत्तियों में टेट्राहाइड्रो आइसोक्विनोसीन अल्कलायड पाया जाता है। इसकी जड़े तीब्र दस्त के उपचार में लाभकारी होती हैं। शरीफे के बीजों से निकालकर सुखाई हुई गिरी में 30 प्रतिशत तेल पाया जाता है, इससे साबुन तथा पेन्ट बनाया जाता है। पोषण की दृष्टि से भी शरीफा का फल काफी अच्छा माना गया है। फलों में 14.5 प्रतिशत शर्करा पाई जाती है जिसमें ग्लूकोज की अधिकता होती है। फलों के गूदे को दूध में मिलाकर पेय पदार्थ के रूप में उपयोग किया जाता है एवं आइसक्रीम इत्यादि बनाया जाता है।

भूमि एवं जलवायु

शरीफा के पौधे लगभग सभी प्रकार के भूमि में पनप जाते हैं परन्तु अच्छी जल निकास वाली दोमट मिट्टी इसकी बढ़वार एवं पैदावार के लिये उपयुक्त होती है। कमजोर एवं पथरीली भूमि में भी इसकी पैदावार अच्छी होती है। इसका पौधा भूमि में 50 प्रतिशत तक चूने की मात्रा सह लेता है। भूमि का पी0एच0मान 5.5 से 6.5 के बीच अच्छा माना जाता है। शरीफा के पौधे के लिये गर्म और शुष्क जलवायु वाले क्षेत्र जहाँ पाला नहीं पड़ता है, अधिक उपयुक्त होता है। पाले वाले क्षेत्र में इसकी फसल को हानि होती है। झारखण्ड के हजारीबाग, राँची, साहेबगंज, पाकुड़, गोड्डा इत्यादि जिलों में इसकी अच्छी खेती की जा सकती है।

किस्में

शरीफा की किस्में स्थान, फलों के आकार, रंग, बीज की मात्रा के आधार पर वर्गीकृत किये गये है। प्रमुखतः बीज द्वारा प्रसारित होने के कारण अभी तक शरीफा की प्रमाणिक किस्मों का अभाव है। परंतु फलन एवं गुणवत्ता के आधार पर कुछ किस्मों का चयन किया गया है।

बाला नगर : झारखण्ड क्षेत्र के लिए यह एक उपयुक्त किस्म है। इसके फल हल्के हरे रंग के होते हैं। यहाँ के जंगलों में इसके अनेक स्थानीय जननद्रव्य पाये गये है।

अर्का सहन : यह एक संकर किस्म है जिसके फल अपेक्षाकृत चिकने और अधिक मीठे होते है।

लाल शरीफा : यह एक ऐसी किस्म है जिसके फल लाल रंग के होते हैं तथा औसतन प्रति पेड़ प्रति वर्ष लगभग 40–50 फल आते हैं। बीज द्वारा उगाये जाने पर भी काफी हद तक इस किस्म की शुद्धता बनी रहती है।

मैमथ : इसकी उपज लाल शरीफा की अपेक्षा अधिक होती है। इस किस्म में प्रतिवर्ष प्रति पेड़ लगभग 50–80 फल आते हैं। इस किस्म के फलों में लाल शरीफा की अपेक्षा बीजों की संख्या कम होती है।

पौधा प्रसारण

शरीफा मुख्य रूप से बीज द्वारा ही प्रसारित किया जाता है। किन्तु अच्छी किस्मों की शुद्धता बनाये रखने, तेजी से विकास एवं शीघ्र फसल लेने के लिये वानस्पतिक विधि द्वारा पौधा तैयार करना चाहिए। वानस्पतिक विधि में बडिंग एवं ग्राफ्टिंग से अधिक फसल पायी गई है। ग्राफ्टिंग के लिये अक्टूबर–नवम्बर एवं बडिंग के लिए फरवरी मार्च का महीना छोटानागपुर क्षेत्र के लिये उचित पाया गया है।

शील्ड बडिंग जनवरी से जून तथा सितम्बर–अक्टूबर के महीने में अच्छी सफलता प्राप्त होती है। शरीफा में शील्ड बडिंग के द्वारा पौधा तेयार करना सबसे आसान है। पिछली ऋतु में निकली स्वस्थ एवं परिवक्व कालिका काष्ठ का चुनाव कर लेते है। मूलवृंत एक वर्ष पुराना तथा पेन्सिल की मोटाई का होना चाहिये। प्रतिरोपण के बाद लगभग 15 दिन तक कलिका को पॉलीथीन की पतली मिट्टी या केले के रेशे द्वारा बाँध देते है।

पौधा रोपण

शरीफा लगाने के लिये जुलाई का महीना उपयुक्त रहता है। शरीफा का बीज जमने में काफी समय लगता है। अतः बोने से पहले बीजों को 3–4 दिनों तक पानी में भिगा देने पर जल्दी अंकुरण हो जाता है। इसके पौधे को सीधे बगीचे में जहाँ लगाना हो वहीं पर थाले बनाकर एक स्थान पर 3–4 बीज बोते हैं। जब पौधे लगभग 15 से0मी0 के हो जाये तो अतिरिक्त पौधे निकालकर केवल एक पौधा को बढ़ने के लिए छोड़ देना चाहिये। नर्सरी में बीज बोकर बाद में पौधों की रोपाई करने पर शरीफा का काफी पौधा मर जाता है इसको लगाने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि पॉलीथीन के थैलियों में मिट्टी भरकर बीज लगाये और जब पौधे जमकर तैयार हो जाये तब पॉलीथीन के थैलियों में मिट्टी भरकर बीज लगाये और जब पौधे जमकर तैयार हो जायें तब पॉलीथीन के थैलियों को नीचे को अलग कर दें। पौधे को पिंडी सहित बगीचे में तैयार गड्ढे में लगा दें। शरीफा के पौधे के लिये गर्मी के दिनों में 60 × 60 × 60 से.मी. आकार के गड्ढ़े 5 × 5 मी. की दूरी पर तैयार किये जाते हैं। इन गड्ढ़ो को 15 दिन खुला रखने के बाद ऊपरी मिट्टी में 5–10 किग्रा0 गोबर की सड़ी खाद, 500 ग्राम करंज की खली तथा 50 ग्राम एन0पी0के0 मिश्रण को अच्छी तरह मिलाकर भर देना चाहिये। इसके बाद गड्ढ़े की अच्छी तरह दबा दें और उसके चारों तरफ थाला बनाकर पानी दे दें। यदि वर्षा न हो रही हो तो पौधों की 3–4 दिन पर सिंचाई करने से पौध स्थापना अच्छी होती है।

खाद एवं उर्वरक

शरीफा के पेड़ में प्रत्येक वर्ष फलन होती है अतः अच्छी पैदावार के लिये उचित मात्रा में सड़ी हुई गोबर की खाद एवं रासायनिक उर्वरक देनी चाहिये। शरीफे की पूर्ण विकसित पेड़ में 20 कि.ग्रा. गोबर की खाद 40 ग्रा. नाइट्रोजन, 60 ग्रा. फास्फोरस और 60 ग्राम पोटाश प्रति पेड़ प्रति वर्ष देना चाहिये।

सिंचाई

शरीफा के पौधों को गर्मियों में पानी देना आवश्यक होता है। अतः इस समय 15 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिये। वर्षा की समाप्ति के बाद एक या दो सिंचाई करने से फलों का आकार बड़ा होता है।

पौधो की देख-रेख एवं काट-छाँट

पौधा लगाने के बाद से पौधे की नियमित रूप से देखभाल की जानी चाहिये। पौधे के थालों में समय–समय पर खरपतवार नियंत्रण करना चाहिए। पौधों में जुलाई–अगस्त में खाद एवं उर्वरक प्रयोग तथा आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिये। नये पौधों में 3 वर्ष तक उचित ढाँचा देने के लिये काँट–छाँट करना चाहिये। काँट–छाँट करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि तने पर 50–60 से0मी0 ऊँचाई तक किसी भी शाखा को नहीं निकलने में उसके ऊपर 3–4 अच्छी शाखाओं को चारों तरफ बढ़ने देना चाहिये जिससे पौधा का अच्छा ढाँचा तैयार होता है। शरीफा में फल मुख्यतः नई शाखाओं पर आते हैं। अतः अधिक संख्या में नई शाखायें विकसित करने के लिये पुरानी, सूखी तथा दूसरों से उलझ कर निकलती हुई शाखाओं को काट देना चाहिये।

पुष्पन एवं फलन

शरीफा में पुष्पण काफी लम्बे समय तक चलता है। उत्तर भारत में मार्च से ही फूल निकलना प्रारंभ हो जाता है और जुलाई तक आता है। पुष्प कालिका के आँखों से दिखाई पड़ने की स्थिति से लेकर पूर्ण पुष्पन में लगभग एक महीने तथा पुष्पन के बाद फल पकने तक लगभग 4 महीने का समय लगता है। पके फल सितम्बर–अक्टूबर से मिलना शुरू हो जाते है। बीज द्वारा तैयार किये गये पौधे तीसरे वर्ष फल देना प्रारंभ करते हैं जबकि बडिंग एवं ग्राफ्टिग द्वारा तैयार पौधे दूसरे वर्ष में अच्छी फलन देने लगते है। फूल खिलने के तुरंत बाद 50 पी0पी0एम0 जिबरेलिक एसिड के घोल का छिड़काव कर देने से फलन अच्छी होती है।

फलों की तुड़ाई

शरीफा के फल जब कुछ कठोर हों तभी तोड़ लेना चाहिए क्योंकि पेड़ पर काफी दिनों तक छूटे रहने पर वे फट जाते हैं। अतः इसकी तुड़ाई के लिये उपयुक्त अवस्था का चुनाव करना चाहिये। इसके लिये जब फलों पर दो उभारों के बीच रिक्त स्थान बढ़ जाय तथा उनका रंग परिवर्तित हो जाय तब समझना चाहिये फल पकने की अवस्था में हैं। अपरिपक्व फल नहीं तोड़ना चाहिये क्योंकि ये फल ठीक से पकते

नहीं और उनसे मिठास की मात्रा भी कम हो जाती है।

अंतः सस्य फसलें

शरीफा के पौधे जब छोटे हों तो उसके बीच में सब्जियाँ व अन्य फसलें उगा सकते हैं। शरीफा के बाग में फ्रेंचबीन एवं बोदी आदि फसलें झारखण्ड के लिए अधिक उपयुक्त पायी गयी है।

उपज

पौधा लगाने के तीसरे वर्ष से यह फल देना प्रारंभ कर देता है। एक 4–5 वर्ष पुराने पौधे में 50–60 फल लगता है जबकि पूर्ण विकसित पौधे से 100 फल तक उपज मिलता है।

चीकू या सपोटा

झारखण्ड प्रदेश के कृषि योग्य भूमि के अधिकांश क्षेत्र पर खाद्यान्न फसलों की खेती की जाती है जिसकी उत्पादकता बहुत ही कम है। बागवानी फसलों की खेती द्वारा इन क्षेत्रों का उत्पादकता बढ़ाया जा सकता है एवं अधिक लाभ प्राप्त किया जासकता है। वर्तमान समय में झारखण्ड में फलोत्पादन लगभग 0.25 लाख हेक्टेयर भूमि में किया जाता है जो बहुत ही कम है। फलस्वरूप प्रति व्यक्ति प्रति दिन केवल 37 ग्राम फल की उपलब्धता है जबकि संतुलित आहार के लिये 85 ग्राम फल की आवश्यकता है। अतः प्रति व्यक्ति फल की उपलब्धता की दृष्टि से भी फलोत्पादन के क्षेत्र को बढ़ाने की आवश्यकता है। झारखण्ड की जलवायु फल उत्पादन के लिये बहुत ही अच्छी है। यहाँ फलों की अधिक से अधिक क्षेत्रों में खेती करके पर्यावरण में सुधार एवं कुपोषण निवारण के साथ–साथ निर्यात की सँभावनाओं को बढ़ाया जा सकता है।

चीकू या सपोटा सैपोटेसी कुल का पौधा है, कि जो मैक्सिको का देशज है। परन्तु भारत के गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा तमिलनाडु राज्यों में इसकी बड़े क्षेत्रफल में खेती की जाती है। चीकू के फलों की त्वचा मोटी व भूरे रंग का होता है। इसके प्रत्येक फल में एक या दो काले रंग के बीच पाये जाते हैं। झारखण्ड में चीकू की खेती करने की काफी अच्छी संभावना है। यहाँ अभी चीकू का आयात गुजरात से किया जाता है जो कि ऊँचे दाम पर बिकता है। अतः यदि इसकी खेती झारखण्ड में शुरू की जाय तो यहाँ के किसानों की अच्छी आमदनी प्राप्त हो सकती है। यहाँ की मिट्टी एवं जलवायु सपोटा के लिए बहुत उपयुक्त है। इस फल को उपजाने के लिये बहुत ज्यादा सिंचाई और अन्य रख–रखाव की जरूरत नहीं है। थोड़ा खाद और बहुत कम पानी इसके पेड़ फलने–फूलने लगते हैं।

उन्नत किस्में

देश में चीकू की कई किस्में प्रचलित हैं। उत्तम किस्मों के फल बड़े, छिल्के पतले एवं चिकने और गूदा मीठा और मुलायम होता है। झारखण्ड क्षेत्र में मुरब्बा क्रिकेट बाल, काली पत्ती, भूरी पत्ती, पी.के.एम.1, डीएसएच–2 झुमकिया, आदि किस्में अति उपयुक्त हैं।

पौध प्रवर्धन

चीकू की व्यावसायिक खेती के लिये शीर्ष कलम तथा भेट कलम विधि द्वारा पौधा तैयार किया जाता है। पौधा तैयार करने का सबसे उपयुक्त समय मार्च–अप्रैल है।

पौध रोपण

चीकू लगाने का सबसे उपयुक्त समय वर्षा ऋतु है। रोपाई के लिये गर्मी के दिनों में ही 7–8 मी0 दूरी पर वर्गाकार विधि से 90 × 90 × 90 से.मी. आकार के गड्ढ़े तैयार कर लेना चाहिए। गड्ढ़ा भरते समय मिट्टी के साथ लगभग 30 किलोग्राम गोबर की अच्छी तरह सड़ी खाद, 2 किग्रा. करंज की खली एवं 5–7 कि.ग्रा. हड्डी का चूरा प्रत्येक गड्ढे के दल से मिला कर भर देना चाहिये। एक बरसात के बाद जब गड्ढे के

बीचों बीच लगा दें तथा रोपने के बाद चारों ओर की मिट्टी अच्छी तरह से दबा कर थाला बना दें।

खाद एवं उर्वरक

पौधों में प्रतिवर्ष आवश्यकतनुसार खाद डालते रहना चाहिये जिससे उनकी वृद्धि अच्छी हो और उनमें फलन अच्छी रहें। रोपाई के एक वर्ष बाद से प्रति पेड़ 4–5 टोकरी गोबर की खाद, 2–3 किग्रा. अरंड़ी/करंज की खली एवं 50 : 25 : 25 ग्रा. एन पी के प्रति पौधा प्रति वर्ष डालते रहना चाहिये। यह मात्रा 10 वर्ष तक बढ़ाते रहना चाहिए ततपश्चात् 500 : 250 : 250 ग्रा0 एन.पी.के. की मात्रा प्रत्येक वर्ष देना चाहिए। खाद एवं उर्वरक देने का उपयुक्त समय जून–जुलाई है। खाद को पेड़ के फैलाव की परिधि के नीचे 50–60 से0मी0 चौड़ी व 15 से0मी0 गहरी नाली बनाकर डालने से अधिक फायदा होता है।

सिंचाई

बरसात के मौसम में सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है लेकिन गर्मी में 7 दिन एवं ठंडी में 15 दिनों के अन्तर पर सिंचाई करने से सपोटा में अच्छी फलन एवं पौध वृद्धि होती है।

पौधों की देख-रेख एवं काट-छाँट

चीकू के पौधे को शुरूआत में दो–तीन साल तक विशेष रख–रखाव की जरूरत होती है। उसके बाद बरसों तक इसकी फसल मिलती रहती है। जाड़े एवं गीष्म ऋतु में उचित सिंचाई एवं पाले से बचाव के लिये प्रबन्ध करना चाहिये। छोटे पौधों को पाले से बचाने के लिये पुआल या घास के छप्पर से इस प्रकार ढ़क दिया जाता है कि वे तीन तरफ से ढके रहते हैं और दक्षिण–पूर्व दिशा धूप एवं प्रकाश के लिये खुला रहता है। चीकू का सदाबहार पेड़ बहुत सुन्दर दिखाई पड़ता है। इसका तना चिकना होता है और उसमें चारों ओर लगभग समान अंतर से शाखायें निकलती है जो भूमि के समानान्तर चारों ओर फैल जाती है। प्रत्येक शाखा में अनेक छोटे–छोटे प्ररोह होते हैं, जिन पर फल लगते है। ये फल उत्पन्न करने वाले प्ररोह प्राकृतिक रूप से ही उचित अंतर पर पैदा होते हैं और उनके रूप एवं आकार में इतनी सुडौलता होती है उनको काट–छाँट की आवश्यकता नहीं होती। पौधों की रोपाई करते समय मूल वृन्त पर निकली हुई टहनियों को काटकर साफ कर देना चाहिए। पेड़ का क्षत्रक भूमि से 1 मी0 ऊँचाई पर बनने देना चाहिए। जब पेड़ बड़ा होता जाता है, तब उसकी निचली शाखायें झुकती चली जाती है और अंत में भूमि को छूने लगती है तथा पेड़ की ऊपर की शाखाओं से ढ़क जाती है। इन शाखाओं में फल लगने भी बंद हो जाते हैं। इस अवस्था में इन शाखाओं को छाँटकर निकाल देना चाहिये।

पुष्पन एवं फलन

वानस्पतिक विधि द्वारा तैयार चीकू के पौधों में दो वर्षों के बाद फूल एवं फल आना आरम्भ हो जाता है। इसमें साल में दो बार आता है, पहला फरवरी से जून तक और दूसरा सितम्बर से अक्टूबर तक। फूल लगने से लेकर फल पककर तैयार होने में लगभग चार महीने लग जाते हैं। चीकू में फल गिरने की भी गंभीर समस्या है। फल गिरने से रोकने के लिये पुष्पन के समय फूलों पर जिबरेलिक अम्ल के 50 से 100 पी0पी0एम0 अथवा फल लगने के तुरन्त बाद प्लैनोफिक्स 4 मिली/ली0 पानी के घोल का छिड़काव

करने से फलन में वृद्धि एवं फल गिरने में कमी आती है।

रोग एवं कीट नियंत्रण

चीकू के पौधों पर रोग एवं कीटों का आक्रमण कम होता है। लेकिन कभी–कभी उपेक्षित बागों में पर्ण दाग रोग तथा कली बेधक, तना बेधक, पप्ती लपेटक एवं मिलीबग आदि कीटों का प्रभाव देखा जाता है। इसके नियंत्रण के लिए मैंकोजेब 2 ग्रा./लीटर तथा मोनोक्रोटोफास 1.5 मिली0/लीटर के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

उपज

चीकू में रोपाई के दो वर्ष बाद फल मिलना प्रारम्भ हो जाता है। जैसे–जैसे पौधा पुराना होता जाती है। उपज में वृद्धि होती जाती है। एक 30 वर्ष के पेड़ से 2500 से 3000 तक फल प्रति वर्ष प्राप्त हो जाते है।

बेल

बेल भारत के प्राचीन फलों में से एक है। बेल के लिये कहा गया है – ''रोगान् बिलति भिनन्ति इति बिल्ब'' अर्थात् जो रोगों का नाश करे वह बेल कहलाता है। बेल के जड़, छाल, पत्ते शाख और फल औषधि रूप में मानव जीवन के लिये उपयोगी हैं। प्राचीन काल से बेल को 'श्रीफल' के नाम से जाना जाता है। बेल विभिन्न प्रकार की बंजर भूमि (ऊसर, बीहड़, खादर, शुष्क एवं अर्धशुष्क) में उगाया जा सकने वाला एक पोषण (विटामिन–ए, बी.सी., खनिज तत्व, कार्बोहाइड्रेट) एवं औषधीय गुणों से भरपूर फल है। इससे अनेक परिरक्षित पदार्थ (शर्बत, मुरब्बा) बनाया जा सकता है। झारखण्ड के पठारी क्षेत्रों में जहाँ अन्य फलदार पौधे नहीं उगाये जा सकते हैं, बेल की खेती की अपार सम्भावनायें हैं, क्योंकि यह एक बहुत ही सहनशील वृक्ष है। मई–जून की गर्मी के समय इसकी पत्तियाँ झड़ जाती है, जिससे पौधो में शुष्क एवं अर्धशुष्क जलवायु को सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है। झारखण्ड राज्य की सभी जिलों में बेल की खेती की जा सकती। परन्तु बोकारो, कोडरमा, धनबाद, गिरिडीह, देवघर, चतरा, गढ़वा, लातेहार, राँची एवं हजारीबाग में इसकी व्यवसायिक खेती की जा सकती है।

उन्नत किस्में

बेल की अनेक स्थानीय किस्में हैं परन्तु हाल के वर्षों में नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी कृषि विश्वविद्यालय, गोविन्द बल्लभ पंत कृषि विश्वविद्यालय, केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान एवं बागवानी एवं कृषि वानिकी कार्यक्रम द्वारा चयनित किस्मों की सिफारिश की जाती है। कुछ प्रमुख किस्मों का संक्षिप्त विवरण निम्न है :

नरेन्द्र बेल 5 : इस किस्म के पौधे कम ऊँचाई (3–5 मी.) एवं अधिक फैलाव वाले होते हैं। फल चपटे सिरे मध्यम आकार के (21 × 25 से.मी.), मीठे स्वाद (35–28° ब्रिक्स) तथा कम बीज वाले होते हैं। गूदा कम रेशे युक्त, मुलायम और अच्छे स्वाद वाला होता है। फलों का औसत वजन 900–1000 ग्राम तक होता है तथा पेड़ों की औसत उपज 50–60 कि.ग्रा. प्रति पेड़ तक पायी जाती है।

नरेन्द्र बेल 7 : इस किस्म के पौधे औसत ऊँचाई (5–7 मी.) तथा अपेक्षाकृत कम फैलाव वाले (3–5 वर्ग मी.) तथा अपेक्षाकृत कम फैलाव वाले (3–5 वर्ग मी.) होते हैं। फल गोल तथा काफी बड़े होते हैं। जिनका औसत वजन 3–4.5 कि.ग्रा. तक पाया जाता है।

नरेन्द्र बेल 9 : इस किस्म के पौधे मध्यम ऊँचाई (4–6 मी.) एवं अधिक फैलाव वाले होते है। फल आकार – (26 × 33 से.मी.), अण्डाकार तथा अधिक मिठास वाले (33 × 40° ब्रिक्स) होते हैं। फलों का औसत वजन 1–1.5 कि.ग्रा. तक होता है तथा छिलका पतला होता है। गूदे में रेशे एवं बीज की मात्रा कम पायी जाती है। पेड़ों से औसत उपज 70–80 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष तक प्राप्त की जा सकती है।

पंत सिवानी : इस किस्म के पेड़ ऊपर की तरफ बढ़ने वाले एवं घने होते हैं। फल अण्डाकार लम्बा, भार

1.2–20 कि.ग्रा. छिलका मध्यम पतला, गुदा अधिक (70–75 प्रतिशत), रेशा कम, मिठास अधिक (34–35° ब्रिक्स) एवं स्वादिष्ट होता है। पेड़ों की औसत उपज 50–60 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष तक पायी जाती है।

पंत अर्पणा : यह एक बौनी एवं कम घनी किस्म है, जिनकी शाखायें नीचे की तरफ लटकती रहती हैं। पत्तियाँ बड़ी, गहरे रंग की एवं नाशपाती की तरह होती हैं। पेड़ों पर काँटे भी कम पाये जाते हैं तथा फलन जल्दी एवं उपज अच्छी होती है। फल गोलाकार, 0.6 से 0.8 कि.ग्रा. वजन एवं पतले छिलके वाले होते हैं। पकने पर फलों का रंग हल्का पीला होता है इसमें बीज तथा लिसलिसा पदार्थ, खटास व रेशा कम पाया जाता है। लिसलिसा पदार्थ व बीज अलग थैलियों में बंद होता है, जिसे आसानी से अलग किया जा सकता है। अतः यह किस्म प्रोसेसिंग के लिए ज्यादा उपयुक्त हो सकती है। फलों का गूदा मध्यम् मीठा (30.8° ब्रिक्स), स्वादिष्ट एवं सुवासयुक्त होता है।

पंत उर्वसी : इस किस्म के पेड़ घने, वृद्धियुक्त एवं लम्बे होते है।यह एक मध्यम समय में पकने वाले किस्म है। फलो का आकार अंडाकार लम्बा तथा प्रतिफल भार 1.6 कि.ग्रा. तक होता है। छिलका मध्यम् द्यद्य पतला, गूदा मीठा (32° ब्रिक्स), स्वादिष्ट एवं सुवासयुक्त होता है। फलों में गूदें की मात्रा 68.5 प्रतिशत एवं रेशे की मात्रा कम पायी जाती है। पेड़ों की औसत उपज 27–30 कि.ग्रा. तक होती है।

पंत सुजाता : इस किस्म के पेड़ मध्यम आकार के घने एवं फैलने वाले होते हैं। यह एक मध्यम समय में पकने वाली किस्म है। फल गोल तथा दोनों सिरे चपटे होते हैं। फलों का औसर भार 1.2 कि.ग्रा. छिलका पतला एवं हल्के पीले रंग वाला, गूदे की मिठास 27° ब्रिक्स तथा रेशा कम होता है। फलों में गूदे की मात्रा 77.8 प्रतिशत तक पायी जाती है। पेड़ों की औसत उपज 45–50 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष तक पायी जाती है।

सी.आई.एस.एच.-बी-1 : इस किस्म के पौधे मध्यम ऊँचाई वाले एवं कम फैलाव किये होते है। फल आकार में अण्डाकार गोल (15–17 से.मी. लम्बा एवं 39–41 से.मी. व्यास) तथा अधिक मिठास युक्त। (35–40.5° ब्रिक्स) होते है। फलों का औसत वजन 0.8–1.2 कि.ग्रा. छिलका पतला (0.10–0.12से.मी.) एवं वजन 1.25 किग्रा. प्रति फल तक का होता है। फलों में रेशे एवं बीज की मात्रा कम पायी जाती है एवं। औसत उपज 50–60 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष तक प्राप्त की जा सकती है।

सी.आई.एस.एच.-बी-2 : इस किस्म के पौधे कम ऊँचाई वाले तथा अधिक फैलाव लिये होते हैं। फल आकार में बड़े, (14.8–18 से.मी. लम्बा एवं 52–64 से.मी. व्यास) तथा गोल होते हैं। फलों का वजन 1.8–2.4 कि.ग्रा. तक पाया जाता है। फल अधिक मिठायुक्त (37–41° ब्रिक्स) एवं पतले छिलके वाले होते। है। फलों में रेशे एवं बीज की मात्रा काफी कम होती है। इस किस्म के पौधों का उपज 40–50 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष तक पायी जाती है।

पौधा प्रवर्धन

बेल के पौधे मुख्य रूप से बीज द्वारा तैयार किये गये मूलवृन्त पर कालिकायन या ग्राफ्टिग द्वारा बनाये

जाते हैं। बीजों की बुवाई फलों से निकालने के तुरन्त बाद 15–20 से.मी. ऊँची 1 × 10 मीटर आकार की क्यारियों में 1–2 से.मी. गहराई पर कर देनी चाहिये। बुवाई का उत्तम समय मई–जून का महीना होता है। कलिकायन के लिए 1 –2 वर्ष पुराने पौधे उपयुक्त पाये गये है। जून–जुलाई माह में पैबन्दी चश्मा विधि से 80–90 प्रतिशत तक सफलता मिलती है और सांकुर डाली की वृद्धि भी अच्छी होती है। जब कालिका ठीक प्रकार से फुटाव ले ले तो मूलवृंत को कलिका के ऊपर से काट देना चाहिए।

शिखर रोपण ने बीजू पौधों को कलमी पौधों में बदलने के लिये चोटी कलम बांधना चाहिये। इसके लिये पेड़ की मोटी शाखों की जमीन से (2.5–3.0 मी.) ऊँचाई पर मार्च में शिखर से काट कर उस हिस्से को गीली मिट्टी और टाट से ढ़क देते हैं। तब इन कटे हुए भागों से नई शाखाएँ निकल कर कलम बांधने योग्य हो जाएँ तो उन पर जून–जुलाई में कलिकायन कर दिया जाता है। जब कलिकाएँ अच्छी तरह से फुटाव ले लेती है। तब पुरानी शाखाओं को ऊपर से काट दिया जाता है।

गड्ढ़े की तैयारी एवं पौध रोपण

बेल के पेड़ों को 6–8 मीटर की दूरी पर जुलाई–अगस्त माह में लगाया जाता है। पौधे लगाने के एक – पूर्व 60 × 60 × 60 से.मी. आकार के गड्ढ़े तैयार कर लेते हैं। यदि जमीन में कंकड़ की तह हो तो निकाल देना चाहिए। गड्ढ़ो को 3–4 टोकरी सड़ी गोबर की खाद, 20–25 कि.ग्रा. बालू तथा 1 किलोग्राम चूना मिलकार 6–8 इंच ऊँचाई तक भर देना चाहिये। इन्हीं तैयार गड्ढ़ों में जुलाई–अगस्त माह में पौध रोपण करना चाहिये। पौधे लगाने के बाद हल्की सिंचाई करना उपयुक्त होता है। सूखे क्षेत्रों में स्वस्थानिक विधि से बाग लगाना उपयुक्त पाया गया है।

खाद एवं उर्वरक

पौधों की अच्छी बढ़वार, अधिक फलन एवं पेड़ों को स्वस्थ रखने के लिये प्रत्येक पौधे में 10 कि.ग्रा.सड़ी गोबर की खाद, 50 ग्रा0 नेत्रजन, 25 ग्रा0 फास्फोरस एवं 50 ग्रा0 पोटाश प्रति वर्ष प्रति वृक्ष डालनी चाहिए। खाद एवं उर्वरक की यह मात्रा दस वर्ष तक गुणित अनुपात में बढ़ाते रहना चाहिए। इस प्रकार 10 वर्ष या उससे अधिक आयु वाले वृक्ष को 500 ग्राम नेत्रजन, 250 ग्राम फास्फोरस और 500 ग्राम पोटाश के अतिरिक्त 30–40 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद डालना उत्तम होता है। पठारी भूमि में लगाये गये पौधों में प्रायः जस्ते की कमी के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। अतः ऐसे पेड़ों में 250 ग्राम जिंक सल्फेट प्रति पौधे के हिसाब से उर्वरकों के साथ डालना चाहिये या 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का पर्णीय छिड़काव जुलाई, अक्टूबर व दिसम्बर माह ' करना चाहिए। खाद एवं उर्वरकों की पूरी मात्रा जून–जुलाई में डालनी चाहिए।

नये पौधों को स्थापित करने के लिए एक दो वर्ष सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। स्थापित पौधे बिना सिंचाई के भी अच्छी तरह से रह सकते हैं। गर्मियों में बेल का पौधा अपनी पत्तियाँ गिराकर सुसुप्ता अवस्था में चला जाता है और इस तरह यह सूखे को सहन कर लेता है।

पौधों की संधाई, छंटाई एवं अन्तः फसलें

पौधों की संधाई का कार्य शुरू के 4–5 वर्षों में करना चाहिए। मुख्य तने को 75 से.मी. तक शाखा रहित रखना चाहिए। इसके बाद 4–6 मुख्य शाखायें चारों दिशाओं में बढ़ने देनी चाहिए। बेल के पेड़ों में विशेष छंटाई के आवश्यकता नहीं पड़ती है परन्तु सूखी, कीड़ों एवं बिमारियों से ग्रसित टहनियों को समय–समय पर निकालते रहना चाहिए। शुरू के वर्षों में नये पौधों के बीच खाली जगह में अन्तः फसल लेते समय ऐसी फसलें न लें जिन्हें पानी की अधिक आवश्यकता हो और वह बेल के पौधों को प्रभावित करें। टांड की फसलें लगाकर उन्हें वर्षा ऋतु में पलट देने से भूमि की दशा में भी सुधार किया जा सकता है।

फलों की तुड़ाई

फल अप्रैल–मई माह में तोड़ने योग्य हो जाते है। जब, फलों का रंग गहरे हरे रंग से बदलकर पीला हरा होने लगे तो फलों की तुड़ाई 2 से.मी. डण्ठल के साथ करनी चाहिए। तोड़ते समय इस बाद का ध्यान रखना चाहिए कि फल जमीन पर न गिरने पायें। इससे फलों की त्वचा चटक जाती है, जिससे फल भीतर से सड़ जाते है।

उपयोग

बेल एक लाभकारी फल है अतः इसके अधिकाधिक उपयोग को बढ़ावा देना चाहिए। कच्चे फलों को मुरब्बा एवं कैंडी, या भूनकर खाने से पेचिश, भूख न लगना एवं अन्य पेट के विकारों से छुटकारा पाया जा सकता है। पके बेल के गूदे के पाउडर के प्रतिदिन दूध के साथ लेने से पुरानी जीर्ण संग्रहणी में लाभ पाया जा सकता है। गर्मी के मौसम में नियमित सेवन या शर्बत बना कर सेवन अत्यन्त लाभकारी होता है।

बेर

भारत व चीन का प्राचीन लोकप्रिय फल है। यह रैमनैसी कुल से सम्बन्धित है तथा जिजीफस जीनस (वंश) के अंतर्गत आता है। इस फल का उत्पत्ति सम्भवतः दक्षिणी चीन, भारत व मलाया में हुआ। इस जीनस के अन्तर्गत लगभग 50 जातियां (स्पीसीज) हैं जिनमें लगभग 18–20 भारत में पाई जाती हैं। व्यावसायिक दृष्टि से कुछ ही जातियां उपयोगी हैं। हमारे देश में व्यावसायिक दृष्टि से बागवानी के लिये जिजीफस मोरीशियाना तथा चीन में जिजीफस जुजुबा का उपयोग किया जाता है।

बेर के पके फल ताजे खाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त पके फलों को सुखाकर छुआरा, कैन्डी व शीतल पेय के रूप में भी उपयोग में लाया जाता है। पके फल में विटामिन सी, ए, बी तथा शर्करा के अतिरिक्त खनिज पदार्थ, कैल्शियम, मैग्नीशियम व जस्ता प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

बेर के पौधे में कुछ ऐसे गुण हैं जिसके कारण यह शुष्क क्षेत्रों में खेती के लिये बहुत ही सफल फलदार वृक्ष हैं। इन्हीं गुणों के कारण इसे बारानी का बादशाह कहा जाता है। इसकी जड़ मूसलादार होती है जो मिट्टी के कठोर सतह को तोड़कर काफी गहराई तक पहुँचकर निचली सतह से जल शोषित कर पौधे को स्वस्थ रखती है। अन्य फूल वृक्षों की तुलना में इसके पौधों को बहुत कम पानी की आवश्यकता पड़ती है। गर्मी के मौसम में जब अन्य फल वृक्षों को सिंचाई की आवश्यकता होती है उस समय इसकी पत्तियाँ झड़ जाती हैं तथा पौधा एक प्रकार से प्रसुप्तावस्था में आ जाता है जिसके परिणाम स्वरूप सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसमें फुल तथा फल वर्षा ऋतु के बाद अगस्त सितम्बर में आते हैं। फल फरवरी से मार्च तक पकते हैं। इन्हीं गुणों के कारण बेर की बागवानी शुष्क तथा अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिये लाभदायक प्रमाणित हो रही हैं।

बेर की खेती भारत के सभी प्रान्तों में कुछ न कुछ क्षेत्रों में होती है किन्तु मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र व आन्ध्र प्रदेश में अपेक्षाकृत अधिक होती है। इस समय हमारे देश में इसकी खेती अनुमानतः 22,000 हेक्टेयर क्षेत्र में हो रही है तथा प्रतिवर्ष विशेषकर बंजर भूमि में व्यावसायिक खेती बढ़ जाती है।

जलवायु

बेर जलवायु की प्रतिकूल दशायें सहन करने की अद्भुत क्षमता रखता है। इसकी बागवानी देश के उष्ण कटिबंधीय तथा उपोष्ण क्षेत्रों में, समुद्र की सतह से लगभग 1000 मी0 की उँचाई तक सफलतापूर्वक की जा सकती है। इसकी बागवानी वैसे तो सभी प्रकार की जलवायु में की जा सकती है किन्तु अधिक उत्पादन तथा अच्छे आकार व गुणों वाले फल उत्पादन के लिये शुष्क एवं गर्म जलवायु उपयुक्त है। इसके अतिरिक्त उन क्षेत्रों में जहाँ भूमिगत जल काफी निचली सतह पर हो, वहाँ भी बेर की बागवानी की जा सकती है। आर्द्रता वाले क्षेत्रों में खर्रा व्याधि के प्रकोप की सम्भावना अधिक होती है।

मिट्टी

बेर की बागवानी विभिन्न प्रकार की मिट्टी जैसेः उथली, गहरी, कंकरीली, रेतीली, चिकनी आदि में की जा सकती है। इसके अतिरिक्त लवणीय, क्षारीय दशा में भी उगने की क्षमता रखता है। इसके पौधे 40–50 प्रतिशत विनिमयशील सोडियम (क्षारीय) तथा 12–15 मिलीम्होज प्रति सेमी. विद्युत चालकता वाली लवणीय भूमि में सफलता पूर्वक की जा रही है। व्यावसायिक बागवानी के लिये जीवांशयुक्त बलुई दोमट मिट्टी सर्वोत्तम मानी गई है। किन्तु वे क्षेत्र जहाँ की जमीन नीची, रेतीली, उसरीली, बंजर जहाँ अन्य फसलें व फल वृक्ष नहीं उगाये जा सकते, वहाँ भी सीमित साधनों के साथ बेर की बागवानी सफलता पूर्वक की जा सकती है।

किस्में

देश में बेर की लगभग 125 से भी अधिक किस्में उगाई जाती हैं। इन किस्मों का विकास विभिन्न क्षेत्रों में फल के भौतिक तथा रासायनिक गुणों जैसे फल का रंग, आकार, वजन, मिठास व खटास की मात्रा के आधार पर चयन द्वारा किया गया है। किस्मों के नामकरण की पद्धति एक समान नहीं है। कभी–कभी एक ही किस्म विभिन्न स्थानों पर भिन्न–भिन्न नाम से जानी जाती है जैसे–बेर की उमरान किस्म जिसका विकास राजस्थान के अलवर क्षेत्र में हुआ किन्तु यही किस्म दूसरे स्थान पर काठा, कोठी, अजमेरी, चमेली, काठा बाम्बे, माधुरी आदि नामों से जानी जाती है। इसी प्रकार गोला किस्म विभिन्न जगहों पर देलही गोला, नाजुक, सेब, लड्डू, अकरोटा आदि नामों से प्रचलित हैं।

व्यावसायिक किस्मों का वर्गीकरण फलों के पकने के समय के आधार पर किया गया है। बेर की कुछ किस्में अपने विशेष स्वाद, कुछ आकार व कुछ अधिक पैदावार के लिये प्रसिद्ध हैं।

नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, फैजाबाद में देश के विभिन्न क्षेत्रों से लगभग 40 किस्में एकत्रित की गयी हैं। जिनके अध्ययन के आधार पर यह पाया गया है कि उत्तर प्रदेश सहित पूर्वी भारत के लिए 7 किस्में (गोला, कालीगोरा, बनारसी कड़ाका, कैथिली, मुडिया मुरहरा, पोन्डा व उमरान) व्यावसायिक बागवानी के लिये उपयुक्त हैं।

इन किस्मों का विवरण निम्नलिखित है:

(अ) अगेती किस्में

गोला : फल का आकार गोल, माप 3.0 × 2.8 से.मी., प्रति फल औसत भार 16.5 ग्रा0, पकने पर रंग हल्का पीला व चमकदार, गूदा 95.2 प्रतिशत मुलायम, रसीला, मीठा, सफेद, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 15.5 प्रतिशत खटास 0.12 प्रतिशत, विटामिन "सी" 90 मिग्रा / 100 ग्रा0 गूदा, औसत पैदावार 80 किग्रा0 प्रति पेड़।

काला गोरा : फल का आकार लम्बा, माप 3.5 × 2.8 से.मी., प्रति फल औसत भार 16.5 ग्रा0, पकने पर। रंग हल्का पीला व चमकदार, गूदा 95.2 प्रतिशत मुलायम, रसीला, मीठा, सफेद, कुल घुलनशील ठोस्

पदार्थ 15.5 प्रतिशत खटास 0.12 प्रतिशत, विटामिन "सी" 90 मिग्रा / 100 ग्रा0 गूदा, औसत पैदावार 80 किग्रा0 प्रति पेड़।

(ब) मध्य मौसमी किस्में

बनारसी कड़ाका : यह एक प्रसिद्ध किस्म है जिसकी बागवानी देश के अनेक भागों में काफी पहले से होती आ रही है। फल का आकार लम्बा, सिरा गुठल, माप 4.1 × 2.7 सेमी, प्रति फल औसत भार 17.0 ग्राम, पकने पर रंग भूरापन लिये हुए पीला, छिलका पतला, गूदा 95.5 प्रतिशत, मुलायम, रसीला, मक्खन की तरह सफेद, मीठा, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 15.0 प्रतिशत, खटास 0.15 प्रतिशत, विटामिन ''सी'' 128 मिग्रा0 / 100 ग्राम गूदा, औसत पैदावार 125 किग्रा0 प्रति पेड़।

कैथली : फल का आकार लम्बा, माप 3.5 × 2.5 से.मी., प्रति फल औसत वजन 18.0 ग्रा. पकने पर रंग भूरापन लिये हुए पीला, छिलका पतला, गूदा 96.4 प्रतिशत, सफेद, मुलायम, मीठा, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 15.0 प्रतिशत, खटास 0.16 प्रतिशत, विटामिन ''सी'' 85 मि.ग्रा. / 100 ग्रा. गूदा, औसत पैदावार लगभग 125 कि.ग्रा. प्रति पेड़। यह बारानी क्षेत्र के लिये अच्छी किस्म है।

मुड़िया मुरहरा : फल का आकार लगभग घन्टी के आकार की तरह है। माप 4.8 × 3.0 सेंमी. प्रति फल औसत वजन 25.0 ग्रा, पकने पर फल का रंग पीला, गूदा 95.1 प्रतिशत, मुलायम, मीठा, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 17.0 प्रतिशत, खटास 0.13 प्रतिशत, विटामिन ''सी'' 90 मिग्रा. / 100 ग्रा. गूदा, पैदावार लगभग 125 कि.ग्रा. प्रति पेड़।

(स) देर से तैयार होने वाली किस्में

उमरान : यह अधिक पैदावार देने वाली किस्म है। फल आकार में काफी बड़े माप 4.3 × 3.2 सेंमी., प्रतिफल वजन 24.0 ग्रा., पकने पर रंग भूरापन लिये हुये पीला, छिलका मोटा, गूदा 91.2 प्रतिशत, कुछ तख्त, मक्खनी रंग का तथा खाने में मीठा, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 15.2 प्रतिशत, खटास 0.21 प्रतिशत, वेटामिन सी 115 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम गूदा, औसत पैदावार लगभग 150 कि.ग्रा. प्रति पेड़।

इसके अतिरिक्त पोण्डा व सेब किस्में भी देर से पकती हैं जिनकी व्यावसायिक खेती की अच्छी सम्भावना है।

प्रवर्धन

व्यावसायिक दृष्टि से बाग लगाने के लिये कायिक विधि से तैयार बेर के पौधे ही उपयोग में लाना चाहिए। बेर का प्रवर्धन चश्मा विधि द्वारा किया जाता है। चश्मा की कई विधियां जैसे पैबन्द चश्मा, ढाल चश्मा व छल्ला चश्मा प्रचलित है। व्यवसायिक तौर पर पौधे बनाने के लिए पैबन्द चश्मा (पैच बडिंग) सबसे सफल व प्रचलित विधि है इस विधि से पौध तैयार करने के लिये मूलवृत (बीजू पौधा) व कलिकायुक्त टहनी (सांकुर) की आवश्यकता पड़ती है।

अ-मूलवृत तैयार करना : मूलवृंत के लिये देशी किस्म के बेर के बीज उपयोग में लाया जाता है। जंगली दूर की कई जातियाँ जैसे— *जिजीफस रोटन्डीफोलिया, जिजीफस रूगोसा, जिजीफस आइनोप्लिया,*

जिजीफस नूमूलिया, जिजीफस जाइलोकार्पा हैं। इन सभी में *जिजीफस रोटन्डीफोलिया सबसे उपयुक्त* है तथा यही उपयोग में लाया जा रहा है। हाल के वर्षों में चल रहे अनुसंधान के आधार पर जिजीफस रोटडीफोलिया के अतिरिक्त, जिजीफस मोरीशियान किस्म सुखावनी मूलवृंत के रूप में अच्छा परिणाम दे रही है बीज मार्च के महीने में इकट्ठा किया जाता है। बीज के लिये पूर्ण पके फल रोग व कीट से मुक्त पेड़ से तोड़कर इकट्ठा करते हैं। पके फलों को 2–3 दिन तक पानी में रखा जाता है। ऐसा करने से बेर की गुठली गूदे से आसानी से अलग हो जाती है। बुआई के पहले इन गुठलियों को 17–18 प्रतिशत नमक के घोल में डूबोना चाहिए। जो गुठली पानी में डूब जाये उन्हीं को बुवाई के उपयोग में लाना चाहिए। बुवाई के पहले गुठलियों को 5–6 मिनट के लिये शुद्ध सल्फ्युरिक अम्ल में डुबो कर तत्पश्चात् अच्छी तरह पानी से धोने अथवा 48 घण्टे के लिये पानी में भिगोकर बोने से शीघ्र अंकुरण होता है। बेर की एक गुठली में एक से अधिक (दो) बीज होते हैं। अतः गुठली को सावधानी पूर्वक तोड़कर प्रत्येक बीज को अलग भी किया जा सकता है। इस प्रकार गुठली से अलग किये गये बीज एक सप्ताह के अन्दर ही अंकुरित हो जाते हैं। मूलवृंत तीन तरह से तैयार किया जा सकता है।

1. क्यारियों में
2. पोलीथीन की ट्यूब में
3. स्वस्थाने बाग में

1. क्यारियों में

इस विधि से मूलवृंत के लिये बीज की बुवाई क्यारियों में अप्रैल के प्रथम पखवारे तक कर दिया जाता है। बीज 30 सेंमी. की दूरी पर कतारों में 5 सेंमी. बीज से बीज की दूरी रखकर करते हैं। बीज की गहराई 2–3 सें.मी. रखी जाती है। बुवाई के समय क्यारी में पर्याप्त नमी का होना आवश्यक होता है। बुवाई के बाद क्यारी को घास–फूस की पर्त से ढककर फौहारे से आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहते हैं। बुवाई से लगभग 40 दिन पश्चात् कमजोर व सघन पौधों की छटाई करके कतार में पौधों के आपस की दूरी लगभग 20 से.मी. रखी जाती है। समय–समय पर निराई–गुड़ाई, व सिंचाई करते रहते हैं। इस तरह क्यारियों में तैयार किये गये पौधे 80–90 दिनों पश्चात लगभग पेंसिल के बराबर मोटाई (0.5 सेंमी.) के हो जाते हैं जो चश्मा चढ़ाने के लिये उपयुक्त होते हैं।

2. पोलीथीन की ट्यूब में

यह एक आसान विधि है। इस विधि से तैयार पौधे को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाने–ले जाने में आसानी होती है तथा स्थानान्तरण के बाद पौधों की स्थापना अच्छी व अधिक होती है। इस विधि से पौध तैयार करने के लिये 300 गेज मोटाई वाली पॉलीथीन की 10 × 25 सेंमी. आकार के ट्यूब (दोनों तरफ से खुले) उपयोग में लाये जाते हैं। इन ट्यूबों में उपजाऊ मिट्टी + गोबर की खाद + बालू (1:1:1) का मिश्रण तैयार करके भरते हैं तथा इन्हें मिट्टी की हल्की खुदाई करके उथली क्यारी में एक साथ सटाकर 4–5 कतार में खड़ी दशा में लगा देते हैं। प्रत्येक ट्यूब में 2–3 स्वस्थ बीज को बुवाई अप्रैल के प्रथम सप्ताह में कर दी जाती है। बुवाई के बाद उथली क्यारी जिसमें ट्यूब रखे गये हैं कि हल्की सिंचाई करते हैं।

यदि आवश्यक हो तो हजारे से इन ट्यूबों में छिड़काव भी किया जा सकता है। अंकुरण पश्चात् एक स्वस्थ पौध रखकर शेष निकाल दिया जाता है। आवश्यकतानुसार पौधों में नमीं बनाये रखना चाहिए। यदि पूरी देख–रेख की जाय तो इस प्रकार तैयार पौधे 90 से 100 दिन के अन्दर चश्मा चढ़ाने लायक हो जाते हैं। चश्मा चढ़ाने के 40–50 दिन बाद पौधे रोपण लायक हो जाते हैं। इस विधि से तैयार पौधों के परिवहन में सुविधा होती है तथा इनका स्थापन भी अच्छा होता है।

3. स्वास्थाने बाग में

शुष्क, अर्ध शुष्क, बीहड़ क्षेत्र में बेर के बाग विकसित करने की सर्वोत्तम विधि है। इस विधि से बाग विकसित करने से स्थानान्तरण के समय जड़ों को होने वाली क्षति नहीं होती। इस तरह विकसित बाग भूमि तथा जलवायु के प्रतिकूल दशाओं के प्रति अधिक सहिष्णु होते हैं। पौध तैयार करने के लिये मार्च में ही निश्चित दूरी पर रेखांकन कर गड्ढे खुदाई व भराई का कार्य कर लेते हैं। प्रत्येक गड्ढे में 2–3 स्वस्थ बीज की बुवाई अप्रैल में करते हैं। पौधशाला में तैयार बीजू पौधों को भी जून–जुलाई में लगाया जा सकता है। उचित देख–रेख से ये पौधे जुलाई–अगस्त में चश्मा चढ़ाने योग्य हो जाते हैं। उसर भूमि में भी स्वस्थाने बाग स्थापन की विधि अच्छी प्रमाणित हुई है। गड्ढों में अधिक लवण या क्षार के कारण बीज का अंकुरण अच्छा नहीं होता है। ऐसी अवस्था में 40–50 दिनों तक पॉलीथीन की थैली, ट्यूब अथवा क्यारी ने तैयार मूलवृंत को सावधानी पूर्वक खोदकर भरे गये गड्ढों में स्थानान्तरण कर दिया जाता है। रोपण के 35–42 दिन बाद इन्हीं बीजू पौधों पर किस्म अनुसार पैबन्दी अथवा विरूपित पैबन्दी विधि द्वारा प्रत्यारोपण किया जाना चाहिए।

(ब) सांकुर का चयन

पौध तैयार करने के लिये कली का चयन महत्वपूर्ण है। सांकुर टहनी का चयन किस्म के अनुरूप लगातार कई वर्षों से अच्छी फलत वाले वृक्ष से किया जाना चाहिए। टहनी 2–3 माह पुरानी तथा स्वस्थ व मोटी वानस्पतिक कलियों से युक्त होनी चाहिए। कली के लिये इस प्रकार की टहनी को मातृ वृक्ष से 15–20 सेंमी. की लम्बाई तक काटकर अलग कर लिया जाता है। एक टहनी पर 5–6 स्वस्थ कलियां मिल जाती हैं। जून माह में आवश्यकतानुसार सांकुर शाख हेतु अप्रैल में मातृ वृक्षों की गहरी छंटाई कर सिंचाई कर देनी चाहिए व कटाई–छंटाई विलम्ब से करने पर परिपक्व सांकुर शाखें आवश्यक मात्रा में नहीं उपलब्ध हो पाती। बेर में मध्य अगस्त से फूल की शुरूआत हो जाती है। फूल आने के बाद चश्मा हेतु कलिका सुगमता पूर्वक नहीं निकल पाती। अतः मध्य अप्रैल से 15 दिन के अन्तराल पर कटाई–छंटाई करते रहने ने आवश्यकतानुसार सांकुर शाखें प्राप्त होती रहेंगी। यदि कलिकायन के लिये सांकुर टहनी को दूर भेजना हो तो इन टहनियों को नम स्फेगनम मॉस घास में लपेटकर पॉलीथीन की थैलियों में बंद कर के आसानी से भेजा जा सकता है। इस प्रकार की टहनी 2–3 दिन तक स्वस्थ दशा में बनी रहती है।

(स) चश्मा चढ़ाना

चश्मा चढ़ाने के लिये पैबन्दी या विरूपित पैबन्दी विधि अपनाना चाहिए। चश्मा चढ़ाने का कार्य 15 जून

से 15 सितम्बर तक अच्छी सफलता के साथ किया जा सकता है। तैयार मूलवृंत पर चश्मा की क्रिया भूमि सतह से 15 सेंमी. की उँचाई पर किया जाता है। अधिक उँचाई पर कलिकायन से कलियों के फुटाव में कमी तथा अच्छा विकास नहीं होता है। पैबन्दी चश्मा विधि के लिये मूलवृंत पर उचित उँचाई पर आयताकार निशान (2.5–3 सेंमी. लम्बा व तने की आधी मोटाई तक) तेज चाकू से लगाकर छिलके को आयत के आकार में निकाल दिया जाता है।

प्रत्यारोपित किस्म की समान आकार वाले कली सांकुर टहनी से सावधानी पूर्वक निकाल कर मूलवृंत पर बनाये गये स्थान पर अच्छी तरह बैठा दिया जाता है। टहनी पर यदि पत्तियाँ हो तो पत्तियों को इस तरह निकालें कि पत्ती की डंठल न टूटें। कलिका को बैठाने के बाद पॉलीथीन की पट्टी से कसकर बांधा जाता है। बांधते समय ध्यान रहे कि कली की आँख खुली रहे। चश्मा चढ़ाने के बाद मूलवृंत का ऊपरी कुछ हिस्सा काटकर निकाल दिया जाता है इससे कली के विकसित होने में सहायता मिलती है। जैसे ही कली का विकास शुरू हो जाय, जुड़ाव बिन्दु के ऊपर से मूलवृत का शेष भाग पूरी तरह सिकेटियर से काटकर निकाल दिया जाता है। प्रत्यारोपित कलिका जब 8–10 पत्तियों वाली टहनी बन जाय तो पौधे स्थानान्तरण योग्य हो जाते हैं। कलिकायन की इस विधि से लगभग 90 प्रतिशत तक सफलता मिलती है। चश्मा चढ़ाने के बाद मूलवृंत पर जुड़ाव बिन्दु से नीचे जितनी भी कलियां निकल रहीं हो, उन्हें समय–समय पर निकालते रहते हैं।

(द) कलमी पौधों की देख-रेख

पौधशाला में जब कलमी पौधों पर 10 से अधिक पत्तियाँ हो जाती हैं तो इस अवस्था के पौधों को अधिक दिन रखना उचित नहीं है तथा ऐसे पौधों में स्थानान्तरण पश्चात मृत्युदर अधिक होती है। इस अवस्था के पौधों की सांकुर टहनी की वृद्धि तेजी से होती है। परिणामस्वरूप जड़ व शाखा का अनुपात बिगड़ जाता है। यदि इन पौधों को पौधशाला में रखना आवश्यक है तो इनकी उचित काट–छाँट तथा पौधशाला में स्थान परिवर्तन आवश्यक है। इसके लिये अक्टूबर के महीने में कलमी पौधों की जुड़ाव बिन्दु से 30 सेंमी. की उँचाई के बाद की शाखा को काटकर निकाल देते हैं जिससे पौधों की वृद्धि में कमी हो जाती है तथा जड़ व शाखा का अनुपात भी उचित बना रहता है। इस तरह रख–रखाव से इन पौधों को आने वाली पौध रोपाई के मौसम (फरवरी–मार्च) में किया जा सकता है। इन पौधों को रोपाई पश्चात् उचित ढाँचा प्रदान करने के लिए फिर सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिये जुड़ाव बिन्दु से 10 सेंमी. की ऊँचाई से पौधों को काट देते हैं। ऐसा करने से कई नई शाखा निकलते हैं। इनमें से एक स्वस्थ व सीधी शाखा को रखकर उचित संधाई करते हैं तथा शेष को निकाल देते हैं।

(य) शीर्ष रोपण

गांव के आस–पास, बंजर जमीन, सड़कों के किनारे आदि स्थानों पर बहुत बड़ी संख्या में देशी बेर (जंगली बेर) के पौधे प्रायः दिखाई देते हैं। इस तरह के पेड़ पर आकार में छोटे व घटिया गुणों वाले फल लगते हैं। इस प्रकार अनुपयोगी देशी बेर के वृक्षों को शीर्ष रोपण विधि अपनाकर उपयोगी बनाया

जा सकता है। शीर्ष रोपण के लिये इन देशी वृक्षों की मुख्य शाखायें एक मीटर लम्बी रखकर पूरी तरह काट दी जाती है। शाखाओं की कटाई का कार्य अप्रैल–मई के महीने में करते हैं। कटाई के 15–20 दिन पश्चात मुख्य शाखाओं पर कई नई शाखाएँ निकलती हैं। प्रत्येक मुख्य शाखा पर एक स्वस्थ टहनी को रखकर शेष निकाल देते हैं। ये टहनियाँ जुलाई–अगस्त तक कलिकायन के लिये तैयार हो जाती है। इन टहनियों पर अपनी पसन्द की किस्म की सांकुर कली चयनकर कलिकायन किया जाता है। कलिकायन के लिये पैबन्द चश्मा या विरूपित पैबंद विधि उपयोग में लाई जाती है इस तरह अनुपयोगी वृक्ष 2 वर्षों में उपयोगी बन जाता है तथा इससे जो फल प्राप्त होते हैं, वे उच्च कोटि के होते हैं।

बाग की स्थापना

बेर के पेड़ की आयु लगभग 100 वर्ष आंकी गई है। इसलिये बाग लगाने के लिए योजना सोच समझकर बनानी चाहिए अन्यथा एक बार की गई गलती बाग के पूरे जीवन काल तक नहीं सुधारी जा सकती। कई बातें जैसे बेर की किस्म, स्थान का चयन, खेत की तैयारी (विशेषकर क्षारीय व लवणीय मृदा में), पौध रोपाई का समय आदि। बाग लगाने के पहले इन पर उचित विचार करना आवश्यक है।

क. खेत की तैयारी

जहाँ तक संभव हो, खेत में मेड़बन्दी करके खेत को समतल कर लें। यदि भूमि उसरीली है तो ढ़ैंचा की हरी खाद द्वारा भी जीवांश की मात्रा बढ़ाकर भूमि को उपजाऊ बनाया जा सकता है। बारानी क्षेत्र में मेड़बन्दी आवश्यक है ताकि वर्षा के जल का समुचित उपयोग हो सके।

ख. रोपण विधि

फलदार वृक्ष प्रायः वर्गाकार विधि द्वारा लगाये जाते हैं। जहाँ लाइन से लाइन तथा पौध से पौध की दूरी समान होती है। पौधों के आपस की दूरी भूमि की दशा पर भी निर्भर करती है। उपजाऊ मिट्टी में दूरी अधिक तथा अनुपजाऊ या उसरीली मृदा में दूरी कम रखी जाती है क्योंकि पौधों का विकास कम होता है। बेर का बाग 8 × 8 मीटर की दूरी पर लगाया जाना चाहिए। बेर के साथ आंवला या अमरूद पूरक फसल के रूप में लगाया जा सकता है। विभिन्न प्रकार की बंजर भूमि में आंवले के साथ बेर को पूरक पौधे के रूप में रोपण करने की प्रथा प्रचलित हो रही है। बेर के पौधे से दूसरे अथवा तीसरे वर्ष फल की शुरूआत हो जाने के कारण बागवानों को आय मिलनी शुरू हो जाती है।

ग. गड्ढे की खुदाई

रोय व लवणीय तथा मुरमयुक्त पथरीली मृदा में इसका विशेष महत्व है। इस तरह की भूमि में 1×1×1 मी. आकार के गड्ढों की खुदाई करके कठोर पर्त व कंकड़ की पर्त को तोड़कर निकालना आवश्यक है। जरूरत के अनुसार गड्ढे की गहराई बढ़ाई जा सकती है।

घ. गड्ढे की भराई

यदि मिट्टी उपजाऊ है तो गड्ढे की दो तिहाई ऊपर की मिट्टी +50 कि.ग्रा. गोबर की खाद100 ग्रा. बी.एच. सी. का मिश्रण का उपयोग किया जाता है। ऊसर प्रभावित क्षेत्रों में गड्ढे की मिट्टी के साथ 2–3 टोकरी रेत+50 किग्रा. गोबर की खाद+5 किग्रा. जिप्सम+100 ग्रा. बी.एच.सी. के मिश्रण द्वारा गड्ढे भरे जाते हैं।

पथरीली जमीन में तालाब या अच्छे खेत की मिट्टी का प्रयोग करें। गड्ढे जमीन से 10 सेंमी. ऊपर तक भरकर खेत में पानी लगा देते हैं, जिससे गड्ढे की मिट्टी अच्छी तरह बैठ जाय।

पौधा-रोपाई

बेर की बागवानी प्रायः शुष्क अर्ध शुष्क क्षेत्रों में की जाती है जो पूरी तरह वर्षा पर आधारित है इसलिए पौध स्थानान्तरण वर्षा ऋतु (जुलाई–सितम्बर) में किया जाता है। नर्सरी से पौध निकालते समय ध्यान रखें कि जड़ों को कम से कम क्षति पहुंचे। यदि पौध पॉलीथीन की थैली उगाये गये हैं तो थैली को फाड़कर निकाल दें। सिंचाई की सुविधा होने की दशा में बेर के पौधे जनवरी–फरवरी में भी लगाये जा सकते हैं। इस समय रोपाई के लिये पौधों के साथ मिट्टी की पिंडी के साथ पौध निकालने की आवश्यकता नहीं होती। इस तरीके से लगाने में स्थानान्तरण सफलता भी अच्छी है तथा पौधे दूर स्थान भेजने में खर्च भी बहुत कम हो जाता है। पौध सदैव शाम के समय लगाना चाहिए तथा रोपाई पश्चात् हल्की सिंचाई अवश्य करें।

संधाई व काट-छाँट

प्रारम्भिक अवस्था में स्वस्थ ढाँचा बनाने हेतु पौधों की कटाई–छंटाई आवश्यक है। ढाँचा प्रदान करने का काम 2–3 वर्ष में पूरा कर लिया जाता है तथा चौथे वर्ष पहली फल ली जाती है। उचित संधाई के लिए पौध लगाने के पश्चात् बांस की डंडियों की सहायता से पौधे को सीधा रखना चाहिये। भूमि से 75 सेंमी. तक की शाखायें निकाल देते हैं तथा इसके ऊपर 4–5 शाखायें, जो चारों दिशाओं में विकसित हों, ढाँचा बनाने के लिये चुनी जाती है। इन्हीं शाखों को पूरे पेड़ के रूप में विकसित किया जाता है।

बेर में फूल नई बढ़वार के साथ पत्तियों के कक्ष से निकलती है। अतः स्वस्थ व उचित बढ़वार के लिये प्रति वर्ष नियमित कटाई–छंटाई आवश्यक है। नियमित कटाई न करने से पौधे की फलन शक्ति प्रति वर्ष घटती जाती है तथा फल भी अच्छे गुणों वाले नहीं मिलते। नियमित छंटाई न करने के कारण अन्दर का भाग खाली हो जाता है तथा कुछ ही वर्षों में शीर्ष फलन (Tip bearing) होने लगती है। कटाई–छंटाई का कार्य फलों की तुड़ाई के पश्चात की जाती है। बेर में कटाई–छंटाई का सबसे अच्छा समय मई महीना है। इस दौरान पौधे पत्ती विहीन होते हैं। यदि बाग कमजोर व कम उपजाऊ भूमि में लगाया गया है तो कटाई के समय एक वर्ष पुरानी शाखाओं का 50 प्रतिशत भाग काटकर निकाल देते हैं। यदि भूमि उपजाऊ हो तो केवल 25–30 प्रतिशत भाग काटा जाता है। कटाई–छंटाई के समय एक दूसरे से रगड़ने वाली, सूखी व रोगी शाखाओं को भी समूल निकाल देना चाहिए। कटाई पश्चात ब्लाइटाक्स कवकनाशी का गाढ़ा घोल बनाकर कटे स्थान पर लगा देते हैं।

सिंचाई

जड़ें मूसलाधारी एवं मरूद्भिद् प्रकृति का होने के कारण यदि एक बार स्थापित हो जाती है तो इसे बहुत कम देख–रेख की आवश्यकता पड़ती है। यहाँ तक कि यह असिंचित क्षेत्रों में भी अच्छी पैदावार देने की क्षमता रखता है। बेर के बाग के चारों तरफ मजबूत मेड़बन्दी कर देनी चाहिये जिससे वर्षा के पानी का उपयोग पेड़ अच्छी तरह कर सकें। बेर के फलों की तुड़ाई अप्रैल के मध्य तक समाप्त हो जाती है।

फल तुड़ाई के बाद धीरे–धीरे प्रसुप्त–अवस्था में प्रवेश करने लगता है तथा मई–जून के महीने में पत्ती विहीन होता है। इस प्रकार अप्रैल से जून तक इन्हें पानी की आवश्यकता नहीं होती। यदि सिंचाई के साधन उपलब्ध हो तो मध्य जून में पहली सिंचाई की जाती है तथा इसी के साथ खाद एवं उर्वरक की पहली मात्रा भी दे देते हैं। वर्षा ऋतु के प्रारम्भ के साथ पौधे में नई फुटाव शुरू हो जाती है जिसके लिये वर्षा का पानी ही पर्याप्त है। सितम्बर–अक्टूबर फूल निकलने का समय है। इस समय बाग की सिंचाई नहीं की जाती है। मध्य नवम्बर तक फलन पूरा हो जाता है। फलों की वृद्धि के लिये बाग में नमी की आवश्यकता पड़ती है अन्यथा काफी संख्या में फल गिर जाते हैं। यदि संभव हो तो अच्छी पैदावार के लिये इस समय एक सिंचाई आवश्यक है। इसके बाद 1–2 सिंचाई जनवरी–फरवरी में किया जाता है। जो पैदावार में वृद्धि तथा अच्छे गुण वाले फल प्राप्त करने के लिए आवश्यक है।

नये लगाये गये बाग की सिंचाई 15–20 दिनों के अन्तराल पर थाला विधि से करते हैं जिससे पौधे अच्छी तरह स्थापित हो जांय। प्रत्येक सिंचाई के बाद बाग से खरपतवार निकालते रहते हैं जिससे बाग की नमी व पोषक तत्व सुरक्षित रहते हैं।

खाद एवं उर्वरक

बहुत कम किसान बेर के बाग में खाद एवं उर्वरक का प्रयोग करते हैं। परिणामस्वरूप धीरे–धीरे पौधों की उत्पादन क्षमता घटती जाती है। समुचित वृद्धि व लगातार अच्छे उत्पादन के लिये प्रतिवर्ष खाद एवं उर्वरक को निम्न मात्रा डालने की सिफारिश की जाती है।

एक पूर्ण विकसित पेड़ (5 वर्ष या अधिक) के लिए 40–50 किग्रा. गोबर की खाद तथा 1.50 से 2.50 किग्रा. यूरिया प्रतिवर्ष की मात्रा पर्याप्त है। आयु के अनुसार इसे कम करके डाला जाना चाहिए। कम्पोस्ट या गोबर की खाद की पूरी मात्रा तथा आधी यूरिया की मात्रा जुन–जुलाई तथा शेष यूरिया की मात्रा फलन के बाद नवम्बर–दिसम्बर में दी जानी चाहिए। खाद एवं उर्वरक की यह मात्रा पेड़ के तने से कुछ दूरी से जहाँ तक पेड़ का फैलाव हो, उसके बीच छिटककर मिट्टी में मिला दिया जाता है। उर्वरक देने के बाद हल्की सिंचाई करनी चाहिए। यदि वर्षा की सम्भावना है या वर्षा कुछ पहले हुई हो तो सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। बारानी क्षेत्रों में 2 प्रतिशत यूरिया के घोल का दो पर्णीय छिड़काव पहला फूल लगने के पहले तथा दूसरा फलन के बाद लाभदायक है। आवश्यकतानुसार फास्फोरस तथा पोटाश का प्रयोग भी किया जाना चाहिए।

फलों की तुड़ाई

बेर नियमित फल देने वाला फल वृक्ष है। कलिकायन द्वारा तैयार पौधे से चौथे वर्ष फल लिया जाता है। फलों की तुड़ाई उत्तरी भारत में किस्म के अनुसार फरवरी से अप्रैल तक चलता है। दक्षिण भारत में तुड़ाई का मौसम नवम्बर से जनवरी का महीना है।

पौधे पर सभी फल एक समय पककर नहीं तैयार होते। अतः तुड़ाई 4–5 बार में की जाती है। तुड़ाई परिपक्वता अवस्था पर ही करनी चाहिए। इसकी पहचान के लिये फल जब अपनी किस्म के अनुरूप

रंग का हो जाय तब तोड़े जाने चाहिए। अधपके फलों का बाजार भाव ठीक नहीं मिलता। इस अवस्था में फलों की भण्डारण क्षमता भी कम होती है। अतः फलों की तुड़ाई सही समय पर करना आवश्यक है। तुड़ाई हाथ द्वारा की जाती है। डंडे आदि का उपयोग करने पर फलों को चोट पहुँचती है। साथ ही फल को अच्छी दशा में लम्बे समय तक बनाये रखने के लिए फलों की तुड़ाई सुबह या शाम के समय करनी चाहिए।

तुड़ाई ऊपरान्त अच्छे बाजार भाव व लम्बे समय तक भंडारण के लिये फलों का वर्गीकरण आवश्यक है। अतः तुड़ाई के समय किस्म के अनुसार फल अलग–अलग रखा जाता है। इसके बाद फलों को उसके रंग व आकार के अनुसार छंटाई की जाती है। छंटाई ऊपरान्त फलों को बांस की टोकरियों या लकड़ी या गत्ते के डिब्बों में बाजार भेजा जाता है।

उपज

यह एक तेजी से बढ़ने वाला फल वृक्ष है तथा पहली फसल बाग लगाने के दो से तीन वर्ष बाद देता है। बाग लगाते समय प्रति इकाई खर्च अन्य कई फसलों की तुलना में बहुत कम है किन्तु आय अधिक होती है। इसके पौधे प्रति वर्ष अच्छी पैदावार देते हैं। वानस्पतिक विधि से तैयार 8–10 वर्ष के एक पेड़ से किस्म के अनुसार 100–200 किग्रा. तक फल प्रति वर्ष आसानी से मिल जाता है। इस प्रकार प्रति हेक्टेयर बेर के बाग से प्रतिवर्ष 25–30 हजार रूपये आसानी से कमाया जा सकता है।

पौध संरक्षण

बेर में लगने वाले प्रमुख कीट एवं रोग का वर्णन निम्न है जिसका निदान आवश्यक है।

कीट एवं उनका नियंत्रण

(क) फल की मक्खी *(Carpomiya vesuviana Costa)* **:**

यह बेर की सबसे हानिकारक कीट है। इस कीट का प्रकोप फल बनने के बाद (सितम्बर–अक्टूबर) में होता है जो फलों की तुड़ाई तक बना रहता है। सूण्डी की अवस्था में फल के अन्दर रहता है तथा गूदे को खाता है। प्रभावित फल समानरूप से नहीं बढ़ते तथा देखने में बेडौल दिखायी देते हैं। इसकी रोकथाम के लिये नवम्बर से आरम्भ में जब फल लग जाय (मटर के आकार के हों) तब पौधों पर 1500 मिली. मेटासिस्टॉक्स 30 ई.सी. या 12.50 मि.ली. थिएमेथोक्सम+लैम्ब्डासीहालोथ्रिन को 1250 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव किया जाता है। यह मात्रा एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिये पर्याप्त है। गर्मियों में बाग की जुताई भी इसके प्रकोप को कम करने में सहायक है।

(ख) छाल खाने वाली सुंडी *(Indarbela quadrinotata Walker)*

कीड़े की सुंडी दिन के समय तने के भीतर सुरंग बनाकर छुपी रहती है तथा रात्रि के समय निकल कर छाल को खाती है। वृक्ष पर पाये जाने वाले जालों को देखकर इसके आक्रमण का पता लगाया जा सकता है। इस कीड़े की रोकथाम के लिये पहले वृक्ष पर पाये जाने वाले सुरंगों का पता लगाया जाता है। सुरंग के आसपास मल द्वारा तैयार जाला को साफ करके सितम्बर–अक्टूबर के महीने में 10 मिली. थिएमेथोक्सम को 10 लीटर पानी में घोलकर सुरंग में डाले तथा सुरंग को मिट्टी से बन्द कर दें। यही

उपचार दुबारा फरवरी–मार्च में दुहराये। इस उपचार के स्थान पर 10 प्रतिशत मिट्टी का तेल (1 लीटर मिट्टी का तेल + 9 लीटर पानी + 100 ग्राम साबुन का घोल) भी प्रभावकारी पाया गया है।

(ग) बेर को बीटल *(Adoretus pallens)*

इसके प्रौढ़ कीड़े की लम्बाई 12–15 मि मी. तक, रंग हल्का भूरा होता है। यह पत्तियों को खाती है तथा भयंकर प्रकोप की दशा में पेड़ पर पत्तियाँ नाममात्र की बचती है। परिणामस्वरूप उत्पादन बहुत घट जाता है। नियन्त्रण के लिये 0.5% ऐजाडीरेक्टिन पानी में घोलकर पेड़ों पर छिड़काव करते हैं। यह मात्रा एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिये पर्याप्त है।

(ग) लाख कीट

इसके कीट शाखाओं का रस चूसते हैं। जिससे धीरे–धीरे शाखायें सूख जाती है। प्रभावित शाखाओं को काटकर जला देते हैं। पूर्ण नियंत्रण के लिये 0.1 प्रतिशत रोगार का छिड़काव उपयोगी है।

2. रोग एवं उनका नियंत्रण

चूर्णी फफूंद (Powdery mildew)

यह बहुत ही घातक रोग है। इस रोग का प्रकोप अक्टूबर–नवम्बर में शुरू होता है। इस रोग से फसल को काफी हानि पहुँचाती है। इस रोग के प्रकोप से पत्तियों व फलों की सतह पर सफेद पाउडर की परत दिखाई देती है जिससे फलों का विकास रूक जाता है तथा फल देखने में गंदा दिखायी पड़ता है। भयंकर प्रकोप की दशा में फल झड़ने भी लगते हैं। इस बीमारी के शुरूआत होते ही केराथेन 0.1 प्रतिशत या 0.2 प्रतिशत सल्फेक्स के घोल का छिड़काव पौधों पर करें। पन्द्रह दिन के अन्तर पर यही छिड़काव दुहरायें।

पत्तियों के काले धब्बों वाला रोग

यह रोग *आइसेरिआप्सिस* नामक फफूँद से होता है। इसकी शुरूआत सितम्बर–अक्टूबर में होती है। इस रोग से पत्तियों के निचली सतह पर गहरे रंग के धब्बे दिखायी पड़ते हैं कभी–कभी पत्ती की निचली सतह काली दिखायी पड़ती है। इस रोग के निदान के लिये पौधों पर 0.3 प्रतिशत कॉपर आक्सीक्लोराइड नामक कवकनाशी का छिड़काव उपयोगी है।

फल सड़न रोग

यह रोग कई प्रकार के फफूदी जैसे *अलटरनेलिया* स्पीशीज, *फोमा* स्पीशीज, *पेस्टालोशिया* स्पीशीज आदि से फैलती है। इस रोग के प्रकोप से फल के निचले हिस्से पर हल्के भूरे रंग के धब्बे दिखाई पड़ते हैं जो धीरे–धीरे पूरे फल पर दिखायी देने लगता है। धब्बों के ऊपर छोटे–छोटे काले धब्बे भी दिखाई देते हैं। कभी–कभी इन धब्बों पर गहरे भूरे रंग के छल्ले भी दिखाई देते हैं। इस रोग के नियंत्रण के लिये 0.2 प्रतिशत क्लोरोथालोनिल कवकनाशी का छिड़काव रोग के लक्षण दिखाई देते ही करना लाभदायक है।

भण्डारण

भण्डारण बेर की किस्म तथा भण्डारण दशा पर निर्भर करती है। पके फल कमरे के तापमान पर लगभग एक सप्ताह तक तथा शीत भण्डार में (40° से0) पर एक माह तक अच्छी दशा में रखे जा सकते हैं।

बेर के खाद्य पदार्थ

बेर के फल से निम्नलिखित पदार्थ बनाये जा सकते हैं –

कैंडी

विधि :

1. पके हुये सख्त, बड़े आकार के साफ सुथरे फल छांट कर पानी से साफ कर लें।
2. साफ किए हुए फल को अच्छी तरह कांटे से गोद लें। गोदे हुए फल को साफ कपड़े में डालकर 5 मिनट तक उबलते पानी में डुबोयें, जिससे कि फल नर्म हो जाय। इसके बाद किसी बर्तन (मर्तबान) में रख दें।
3. 25 प्रतिशत चीनी का शरबत तैयार कर लें और इसे गर्म करें। इसमें 0.25 प्रतिशत टाटरी डाल दें। गर्म–गर्म चीनी के शरबत को मर्तबान में रखे हुए फल के ऊपर डालें जिससे की सभी फल डूब जायें।
4. एक दिन पश्चात् शरबत को फल से निकाल लें और उसमें पहले चीनी की मात्रा से एक–चौथाई और डाले। शरबत को उबालें और फिर गरम–गरम शरबत को बेर के ऊपर मर्तबान में डालें। इस क्रिया को फिर दूसरे दिन तक दोहराएँ जब तक शरबत शहद की तरह गाढ़ा न हो जाय। यह अवस्था लगभग एक सप्ताह में पूरा हो जाता है।
5. इसके बाद फलों को 4 दिन तक शरबत में डुबोए रखिए जिससे कि शरबत फल के अन्दर अच्छी तरह चला जाये।
6. अब फलों को शरबत से निकालकर तार वाली ट्रे में फैल दें जिससे की शरबत अच्छी तरह बाहर निकल जाये।
7. अब फलों को धूप या किसी गर्म कमरे में 4 दिन के लिये रखें। फलों को अच्छी तरह सूख जाने पर साफ सुथरे मर्तबान या पॉलीथीन की थैलियों में बंद कर के रख दें।

सूखा बेर

विधि :

1. खूब पके फलों को पानी से साफ कर लें। फलों को उबलते पानी में 7 मिनट तक गर्म करें फिर ठंडे पानी में डालकर निकाल लें।
2. फलों को ट्रे में भरकर या फैलाकर गंधक के धुंये से लगभग 3 घंटे तक उपचार कर लें। इसके लिये एक कमरे में 5 ग्राम गंधक प्रति किलो फल के हिसाब से जलाकर उपचार किया जाता है। यदि सुविधा न हो तो उपचार न करें।
3. ट्रे में फलों को फैलाकर धूप में सुखायें और फल को समय–समय पर उलटते रहे। सूखने में लगभग

10 दिन लग जाते हैं। यदि धूप उपलब्ध न हो तो घरेलू सुखावक में 50 से 60 डिग्री से. ताप पर सुखायें।

4. सूखे फलों को पॉलीथीन के थैले में (400 गेज) भर कर सील दें और कमरे के तापमान पर दो सप्ताह के लिये संग्रह करें। इसके बाद फलों को 300 गेज के पॉलीथीन के थैले में या टीन के डिब्बों में संग्रह करें।

स्क्वैश

सामग्री

गूदा	1.0 किग्रा.	चीनी	1.75 किग्रा.
पानी	1.5 लीटर	साइट्रिक अम्ल	40 ग्राम
पोटेशियम मेटावाईसल्फाइट	2.4 ग्राम		

विधि :

1. पके हुए रसदार किस्म के फलों को लेकर पानी से साफ कर लें और फल को काट कर गुठली निकाल दें। कटे हुए टुकड़ों के बराबर पानी में मिलाकर उबालें तथा कपड़े द्वारा रस को छान लें।
2. चीनी पानी तथा साइट्रिक अम्ल को गरम करके घोल लें और कपड़े द्वारा छान लें।
3. बेर के रस तथा चीनी के घोल को अच्छी तरह मिला दें और अन्त में पोटेशियम मेटावाइसल्फाइट को थोड़े से पानी में घोलकर पूरे स्क्वैश में मिला दें।
4. तैयार स्क्वैश को बोतलों में भरकर ढक्कन से अच्छी तरह बंद कर दें और सूखे व ठंडे स्थान पर संग्रह करें।

स्ट्राबेरी

स्ट्राबेरी रोजेसी कुल का पौधा है जिसकी उत्पति उत्तरी अमेरिका में हुई थी। यहाँ से यह यूरोप, संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस व अन्य देशों के पर्वतीय अंचलों एवं शीतोषण प्रदेशों के पर्वतीय अंचलों एवं शीतोष्ण प्रदेशों में फैला। भारत में इसका उत्पादन पर्वतीय भागों में नैनीताल, देहरादून, हिमालय प्रदेश, महाबलेश्वर महाराष्ट्र, नीलगिरी, दार्जलिंग आदि की पहाड़ियों में व्यावसायिक तौर पर किया जा रहा है। इसकी खेती अब मैदानी भागों, दिल्ली, बंगलौर, जालन्धर, मेरठ, पंजाब, हरियाणा आदि क्षेत्रों में भी की जा रही है। सोलन, हल्दवानी, देहरादून, रतलाम, नासिक, गुड़गांव एवं अबोहर स्ट्राबेरी के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध हैं।

झारखण्ड की मिट्टी तथा जलवायु स्ट्रोबरी की खेती के लिए उपयुक्त है। अतः यहाँ पर इसकी व्यवसायिक खेती की जा सकती है। इसके लाल, गुलाबी, सगुन्धित व पौष्टिक फलों की आजकल बहुत मांग है। इससे जैम व जैली आदि भी बनाया जाता है। इसके 100 ग्राम फल में 87.8% पानी, 0.7% प्रोटीन, 0.2% वसा, 0.4% खनिज लवण, 1.1% रेशा, 9.8% कार्बोहाइड्रेट, 0.03% कल्शियम, 0.03% फास्फोरस व 1.8 लौह तत्व पाया जाता है। इसके अलावा इसमें 30 मि.ग्रा. निकोटिनिक एसिड, 52 मि.ग्रा. विटामिन सी व 0.2 मि.ग्रा. राइवोफ्लेविन भी होता है। विटामिन सी, लौह व खनिज तत्व की प्रचुर मात्रा होने के कारण इस फल का सेवन रक्त अल्पता से ग्रसित रोगियों के लिए बहुत ही लाभप्रद पाया गया है।

ड्रिप सिस्टम की स्थापना एवं खेत की तैयारी

स्ट्राबेरी का फल बहुत ही नाजुक एवं क्षयशील होता है। अतः गुणवत्तायुक्त एवं अधिक उत्पादन के लिए फसल को टपक विधि (ड्रिप सिंचाई प्रणाली) से पानी देना चाहिए। इसके लिए फल एवं पौधे के अन्य भागों (पत्ती व तना आदि) को पानी के सीधे संपर्क से बनाना श्रेयस्कर है। एक एकड़ भूमि में ड्रिप सिंचाई प्रणाली से स्ट्रोबरी लगाने में लगभग 40–65 हजार रूपये तक का खर्च आता है। फसल की रोपाई के पूर्व खेत की गहरी जुताई करके उसे अच्छी तरह समतल कर लेते हैं। तैयार खेत में रिज मेकर (करहा) या फावड़े की सहायता से 40 से.मी. की दूरी पर एक मीटर चौड़ी व 20–25 से.मी. ऊँची क्यारी तैयार करते हैं। पट्टियों (मेड़) की लंबाई अपनी सुविधा के अनुसार रखते है।

किस्में

भारत वर्ष में उगाई जाने वाली स्ट्राबेरी की अधिकांश किस्में आयातित है व कुछ किस्में संकर विधि से यहाँ की जलवायु के अनुसार विकसित की गई है।

(क) अगेती - डगलस, गोरिल्ला, फर्न, अलैंग्लो एवं तिओगा।

(ख) पिछेती - चांडलर, डाना, सेल्भा एवं स्वीट चार्ली।

प्रवर्धन

स्ट्राबेरी का व्यावसायिक तौर पर प्रसारण के लिए फलन के बाद जून–जुलाई में जब स्ट्राबेरी में रनर निकलने लगे तो पौधों पर 15 दिन के अन्तर पर (50 पी.पी.एम.) जिब्रेलिक एसिड के घोल का छिड़काव करते हैं। इसके प्रति रनर से 15 से 20 पौधे बन जाते है। शुरू के 3–4 पौधे ही उत्पादक होते है। अतः इन्हीं पौधों को मुख्य खेत में लगाते है। उत्पादक खेत में निकलने वाले रनर्स को तोड़ देने से उपज अच्छी मिलती है। टिशु कल्चर के द्वारा भी रनर का उत्पादन सफलतापूर्वक किया जा सकता है। एक पौधे से दूसरे मौसम में 5–10 तक नये पौधे (रनर) तैयार हो जाते है।

सिंचाई एवं खाद

फलन में सिंचाई की आवश्यकता भूमि की किस्म एवं मौसम की दशा पर अधिक निर्भर है। सामान्यतः अक्टूबर–नवम्बर में ड्रिप सिस्टम को प्रतिदिन 40 मिनट (20 मिनट सुबह एवं 20 मिनट शाम) तक अवश्य चलायें। यह समय फसल की आवश्यकता के अनुसार घटाया–बढ़ाया भी जा सकता है। शीघ्र फल देने के प्रकृति के कारण स्ट्राबेरी को अधिक खाद एवं उर्वरक की आवश्यकता होती है। तैयार क्यारी में 2 कि. ग्रा. गोबर की खाद एवं 20 ग्राम डी.ए.पी. प्रतिवर्ग मी0 की दर से रोपाई के पूर्व ही मिला देते हैं। इसके पश्चात ड्रिप सिस्टम के द्वारा सिंचाई के पानी के साथ ही कोई ऐसा घुलनशील उर्वरक, जो नाइट्रोजन फास्फोरस, पोटाश एवं सूक्ष्म तत्व प्रदान कर सके, प्रति सप्ताह देते है। सामान्यतः 50:25:35 किग्रा. नेत्रजन, फॉसफोरस व पोटाश प्रति एकड़ के हिसाब से ड्रिप सिंचाई द्वारा देते है।

पौधा रोपण का समय व विधि

स्ट्राबेरी की रोपाई सितम्बर से नवम्बर तक की जा सकती है। अगेती रोपाई से फसल का दाम तो अच्छा मिलता है लेकिन सितम्बर में तापमान अधिक रहने से 15–20% तक पौध मर जाते हैं। अतः बेहतर है कि अक्टूबर में ही फसल की रोपाई करें। एक एकड़ फसल की रोपाई के लिए 44–45 हजार रनर की आवश्यकता पड़ती है। तैयार क्यारी में 30×25 से.मी. की दूरी पर एक समान व स्वस्थ रनर की रोपाई करें। रोपाई के बाद स्प्रिंकलर के द्वारा पानी से मिट्टी की अच्छी तरह संतृप्त कर देते हैं। रोपाई से पूर्व रनर की जड़ों को वैभिस्टीन के 0.1 प्रतिशत घोल में 5–10 मिनट तक डुबा लेते हैं।

फसल प्रबन्ध एवं खरपतवार नियंत्रण

स्ट्राबेरी का पौधा और फल बहुत नाजुक होता है अतः उसे विशेष प्रबन्ध की आवश्यकता होती है। मल्चिंग से पूर्व फसल की 25 दिन के अन्तराल पर निराई–गुड़ाई करें। यदि फसल खरपतवारों से मुक्त है तो रोपाई के 30 दिन बाद केवल एक गुड़ाई पर्याप्त होती है। यदि खेत में मोथा का प्रकोप है तो उसे खेत की तैयारी के समय किसी प्रभावकारी खरपतवार नाशी (राउन्ड अप या लीडर 3 लीटर प्रति एकड़) का प्रयोग करके नष्ट कर लें उसके बाद ही फसल लगायें।

रोपाई के 50 दिन बाद फसल की मल्चिंग कर देते हैं। इस काम के लिए सस्ती कीमत वाली काली पालीथीन का प्रयोग करते हैं। क्यारी की लम्बाई व चौड़ाई के अनुसार पॉलीथीन की पट्टियाँ बना कर

उसमें ब्लेड की सहायता से छेद बनाकर पोधों को छेद से ऊपर निकालते हुए अच्छी तरह बिछा देते हैं। काली पालीथीन के लगाने से खरपतवारों का विनाश, पानी का संरक्षण तथा सर्दी में भूमि का तापवर्धन होता है। मल्चिंग के लिए पॉलीथीन के स्थान पर धान के पुआल का प्रयोग कर सकते हैं।

पैकिंग एवं विपणन

अत्याधिक नाजुक होने की वजह से स्ट्राबेरी के फलों को छोटे एवं पारदर्शी प्लास्टिक के डिब्बे (प्लास्टिकपनेट) में पैक करते हैं। एक पनेट में 200 ग्राम फल भरा जाता है। इन भरे हुए डिब्बों को गत्ते के दो टुकड़ों के बीच रखकर टेप से चिपका देते हैं।इस प्रकार से पैक किये गये डिब्बों को सड़क एवं रेलमार्ग द्वारा दूरस्थ स्थानों तक पहुँचाया जाता है। सुरक्षित एवं क्षति रहित परिवहन एवं विपणन के लिए वातानुकूलित वाहनों को प्रयोग में लाते हैं। तुड़ाई के बाद यथाशीघ्र फलों का विपणन करना पड़ता है। यदि तुड़ाई के बाद फलों को शीत गृह में नहीं रखा जाता है तो वे 2 दिन में ही खराब हो जाते हैं।

कीट व बीमारी नियंयण

रेड-कोर : यह फफूँदी जनित बीमारी है। प्रभावित पौधे छोटे आकार के रहते हैं तथा पत्तियाँ नील–हरित शैवाल के रंग की प्रतीत होती है। प्रभावित पौधे की जड़ों को तोड़कर देखने से उनका मध्य भाग लाल रंग का दिखाई पड़ता है। नियंत्रण के लिए 4 ग्राम रिडोमिल नामक दवा को प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

एन्थ्रेकनोज : इस रोग से प्रभावित पौधे की पत्तियों, तनों एवं फल पर काले रंग के छोटे–छोटे धब्बे बनते हैं। रिडोमिल 0.15 प्रतिशत घोल के प्रयोग से इस पर काबू पाया जा सकता है।

झुलसा : पौधे की पत्तियों पर अनियमित आकार के लाल व बैगनी रंग के धब्बे दिखाई पड़ते हैं। फफूँदी का उग्र प्रकोप होने पर पौधे के सभी भाग झुलस से जाते हैं।

इसके अतिरिक्त एफिड, लाल मकड़ी, थ्रिप्स, सफेद मक्खी आदि कीड़े पत्तियों से रस चूसकर फसल को हानि पहुँचाते हैं। सैप वीटिल नामक कीड़ा पके हुए फलों में छेद करके रस चूसता है। इसे नियंत्रण के लिए थिएमेथोक्सम 0.05 प्रतिशत का प्रयोग करते हैं।

आडू या सतालू

आडू शीतोष्ण जलवायु की प्रमुख फसल है। भारत में मुख्यतः उत्तरांचल, हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर की ऊँची घाटियों एवं उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में इसका सफलतापूर्वक उत्पादन किया जाता है। देश में इसकी खेती लगभग 21605 हेक्टेयर क्षेत्रफल में की जा रही है जिससे लगभग 47426 मै.टन उत्पादन होता है। उत्तरांचल, आडू उत्पादन में अग्रणी प्रदेश है। प्रदेश में 13166 हेक्टेयर क्षेत्रफल में आडू की खेती की जा रही है जिससे लगभग 31715 मे.टन उत्पादन होता है। उत्पादकता 2.4 टन प्रति हेक्टेयर है।

पर्वतीय क्षेत्रों में आडू का उत्पादन बहुत पहले से बाग बीजू किस्म के हैं, लेकिन बहुत से बाग बीजू किस्म के हैं, जिसके कारण फलत देर से तथा गुणवत्ता एवं उत्पादन निम्न स्तर का प्राप्त होता है। लेकिन पर्वतीय क्षेत्र की घाटियों में इसका अच्छा उत्पादन होता है तथा हाल के वर्षों में दिये गये महत्व से इस फसल के क्षेत्रफल एवं उत्पादकता में भी वृद्धि हुई है। अब तो पर्वतीय क्षेत्र की घाटियों से इस फल का निर्यात भी विदेशों में किया जा रहा है जिससे किसानों को अच्छी आमदनी हो रही है। घाटियों में यह ऐसे मौसम में पककर तैयार होती है जब तोजे फल बाजार में कम होते हैं। फल अच्छे स्वाद वाले एवं देखने में आकर्षक होने के साथ–साथ काफी समय तक टिकने वाले भी होते हैं। इसलिए घाटियों में आडू की बागवानी हेतु विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। प्रमाणित किस्मों का वानस्पतिक प्रसारण कर इनके व्यवसायिक कास्त को गर्म घाटियों में जहाँ सेब, खुबानी, चेरी की बागवानी नहीं हो सकती वहाँ बढ़ावा दिया जाय, जिससे कास्तकार अच्छी गुणवत्ता के साथ–साथ पैदावार भी कम समय में प्राप्त कर सकें। झारखण्ड गुमला तथा लातेहार जिलों के पार क्षेत्र जहाँ पर शीतोष्ण जलवायु पायी जाती है, में सतालू की कम ठण्ड चाहने वाली किस्मों की खेती की जा सकती है।

जलवायु

शीतोष्ण तथा समशीतोष्ण जलवायु इसकी खेती के लिए सफल है। परन्तु वे क्षेत्र जहाँ पर देर से (बसंत ऋतु) में पाला पड़ता है। इसके लिए उपयुक्त नहीं माने जाते हैं। आडू की खेती मध्य पर्वतीय क्षेत्र, घाटी तथा तराई एवं भावर क्षेत्रों में की जाती है। विभिन्न किस्मों के अनुसार समुद्रतल से 750 मीटर तक की उँचाई के पठारी एवं 800–1815 मीटर समुद्रतल से उँचाई वाले पर्वतीय क्षेत्र उचित होते हैं। इसके सफल उत्पादन हेतु वातावरण में आर्द्रता की प्रतिशत कम होनी चाहिए। सभी किस्मों में फलन के लिए 7° सेल्सियस या इससे कम का तापक्रम कुछ निश्चित घन्टे के लिए आवश्यक है। इससे पौधों को समुचित अभिशीतन (चिलिंग) मिलता है। फूल आने के समय वर्षा, पाला एवं ओला से इसकी खेती को काफी नुकसान होता है।

भूमि

हल्की दोमट अथवा बलुई दोमट भूमि इसके सफल उत्पादन के लिए उत्तम होता है। मिट्टी का पी.एच. मान 5.5–6.2 तक होना चाहिए, साथ ही काफी जीवांशयुक्त होना आवश्यक है। जिस भूमि में इसकी

खेती की जा रही हो वहाँ जल निकास का समुचित प्रबन्ध होना बहुत जरूरी है अन्यथा पौधे जड़ सड़न से ग्रसित हो जाते हैं।

प्रमुख किस्में

आडू की उन्नत खेती के लिए आवश्यक है कि उत्तम किस्मों का चयन किया जाय जिससे अच्छी गुणवत्ता। एवं अधिक पैदावार प्राप्त किया जा सके। परीक्षण के आधार पर चयनित किस्में निम्न प्रकार हैं।

ऊँचाई वाले क्षेत्रों के लिए :

शीघ्र पकने वाली किस्में - रेडजून, फ्लोरडासन, अलेक्जेन्डर।

मध्य में पकने वाली किस्में - अर्ली एलवर्टा, क्राफँड अर्ली (तोतापरी), पैराडिलक्स, जे.एच. हेल्स।

देर से पकने वाली किस्में — जुलाई अलवर्टी, रेड नेक्ट्रीन, गोल्डन क्रश।

पाट, तराई एवं भावर क्षेत्रें के लिए :

शीघ्र पकने वाली किस्में - शान–ई–पंजाब, फ्लोरडाप्रिंस, सहारनपुर प्रभात, प्रताप

मध्य में पकने वाली किस्में - फ्लोरडा रेड, खुरमानी।

देर से पकने वाली किस्में - शरवती

परागण

अधिकांश किस्मों में स्वयं परागण से फल बनते हैं, कुछ किस्में जैसे जे.एच.हेल्स, एवं अलेक्जेंडर के लिए। परागणकर्ता किस्मों की जरूरत होती है। इन किस्मों के साथ एक ही समय पर फूलने वाली दो–तीन किस्मों को मिलाकर लगाना चाहिए।

अर्ली एलवर्टा

फल उत्तम होती है एवं फल जून के मध्य में पकने लगते हैं। फल गोल कुछ अंडाकार मध्यम आकार के पकने पर लाल चित्तियाँयुक्त हल्का पीला होता है। गुदा काफी स्वादिष्ट तथा गुठली गुदे से आसानी से अलग नहीं हो पाती है। यह डिब्बाबंदी के लिए अच्छी किस्म है।

अलेक्जेंडर

फल अच्छी होती है तथा फल जून के मध्य से पकना प्रारम्भ करते हैं, फल गोल तथा बड़े परिमध्य में पकने पर हल्का पीला हो जाता है। गूदा कुरकरा, रसीला, स्वादिष्ट एवं गुठली, गूदे से लगी हुई होती है तथा आसानी से अलग की जा सकती है।

पैराडिलक्स

यह प्रजाति क्रोफोर्ड अर्ली का स्ट्रेन है। इसका पौधा मध्यम आकार का होता है। इसके फल जून के अन्तिम सप्ताह में पककर तैयार होते हैं तथा प्रति वृक्ष उपज 30–40 किग्रा. तक होती है।

पैरीग्रीन -

इस प्रजाति में फलत अच्छी होती है तथा फल जून के मध्य में पक जाते हैं। फल गोल तथा मध्यम से बड़े आकार के होते हैं। पकने पर फल पीला हो जाता है तथा गुदा हल्का खटास लिए काफी मीठा होता है। गुठली आसानी से अलग हो जाती है।

फ्लोरिडासन

फल अति उत्तम होती है तथा फल मई के प्रारम्भ में ही पक जाते हैं। फल गोल हल्का, अण्डाकार एवं मध्यम आकार के पकने पर लाल चित्तियॉयुक्त गहरा पीला हो जाता है। गूदा रसीला काफी मीठा एवं गुठली आसानी से अलग हो जाती है।

जे.एच.हेल

फल जून के तृतीय सम्ताह में पक जाते हैं। फल कुछ अण्डाकार, मध्यम गोल पकने पर लाल–पीला युक्त, गुदा हल्का खास लिये होता है। गुठली आसानी से अलग हो जाती है।

शान–ई–पंजाब

यह प्रजाति मई माह के मध्य तक पककर तैयार हो जाती है। गूदा पीला और गुठली से आसानी से अलग से हो जाता है, यह डिब्बाबंदी के लिए उत्तम किस्म मानी गयी है।

सहारनपुर प्रभात

फलों का आकार बड़ा, छिलका हरापन लिए लाल रंग का होता है। फल अप्रैल के अंतिम सप्ताह में पकने लगते हैं।

शरबती

इस किस्म के फल जून के प्रथम सप्ताह में पकते हैं। फल मध्यम आकार का, छिलका पीलापन लिए सफेद होता है। फल के ऊपरी भाग पर लाली होती है। फल रसदार एवं मीठा होता है। औसत उपज 100–120 किग्रा. प्रति वृक्ष होती है।

प्रभात

यह प्रजाति मध्य अप्रैल तक पक कर तैयार हो जाती है फल मध्यम गोलाकार रेड ब्लस, गूदे का रंग सफेद होता है। औसत उत्पादन 50 किग्रा. प्रति वृक्ष होता है।

प्रताप

इसके फल अप्रैल माह के अन्तिम सप्ताह में पक कर तैयार हो जाते हैं इसके पकने में लगभग 76 दिन लगते हैं। औसत उत्पादन लगभग 70 किग्रा. प्रति वृक्ष होता है।

फ्लोरडा प्रिन्स

यह प्रजाति फ्लोरडा (यू.एस.एस.) से आयातित की गई है। यह अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में पककर तैयार होती है पकने में 70 दिन लगते हैं। औसत उत्पादन 100 किग्रा. प्रति वृक्ष होता है।

फ्लोरडा रेड

इसके गूदे का रंग सफेद एवं फीस्टोन होता है। यह प्रजाति जून के प्रारम्भ में तैयार होती है इसके छिलके का रंग गहरा लाल होता है।

खुरमानी

यह प्रजाति जून के दूसरे पखवारे में पककर तैयार होती है। फल मध्यम आकार, जिसका औसत भार 70 ग्राम होता है। औसत उपज 100–120 किग्रा. प्रति वृक्ष होती है।

पौधा प्रवर्धन

इसका व्यवसायिक रूप से पौध प्रवर्धन कलम बंधन व कलिकायन (बडिंग) द्वारा किया जाता है। आडू के बीज को दिसम्बर–जनवरी में बुवाई कर मूलवृन्त तैयार कर लिए जाते हैं। फिर इनमें भूमि की सतह से 15–20 सेमी. उँचाई पर चीरा लगाकर नाव की शक्ल में 2 सेमी0 की सांकुर कलिका (बड वुड) मातृवृक्ष से लेकर चिरे में लगा दी जाती है तथा इसको 200 गेज पॉलीथीन सीट से बाँध दी जाती है। यह क्रिया सितम्बर–अक्टूबर में की जाती है। जब कलिका में बढ़वार प्रारम्भ हो जाये तो नियमित रूप से साइड पेचिंग करते रहना चाहिए जिससे सांकर कलिका की बढ़वार अच्छी तरह हो सके। ऐसा करने से अगले वर्ष वांछित किस्म के कलिकायित (बडेड) पौध क्लेफ्ट ग्राफ्टिग विधि द्वारा फरवरी–मार्च में आडू के बीजू पौधे पर तैयार किये जाते हैं। इस विधि में भी आडू के बीज की बुवाई दिसम्बर–जनवरी में कर मूलवृन्त तैयार की जाती है फिर अगले वर्ष फरवरी–मार्च में सांकुर (बड बुड) को मूलवृन्त पर टंग ग्राफ्टिंग विधि से बाँधा जाता है। बादाम और खुबानी पर भी पेड़ अच्छे बनाये जा सकते हैं।

पौधों की कीमत एवं उपलब्धता

आडू के पौधे उद्यान विभाग के राजकीय उद्यानों एवं शोध संस्थानों, गो.ब. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर एवं पर्वतीय परिसर, रानीचौरी तथा निजी पौधालय से प्राप्त किये जा सकते हैं।

रेखांकन एवं रोपण

प्रायः पर्वतीय क्षेत्रों में कन्टूर विधि से रेखांकन करके पौधे रोपित किये जाते हैं। सामान्य बागवानी के लिए 5×5 मीटर पौधे से पौधे व कतार से कतार की दूरी रखते हुए रेखांकन करते हैं। ग्यारह प्रतिशत परागण किस्म रोपण योजना को अपनाया जाता है इसमें बाग में हर तीसरी पंक्ति का हर तीसरा पौधा परागण किस्म का लगाया जाता है। यदि दो परागण किस्में बगीचे में लगानी हो तो वह एकान्तर लगायी जाती है (पहली परागण किस्म, पहली परागण किस्म की पंक्ति में तथा दूसरी किस्म अगली परागण किस्म वाली पंक्ति में)।

सघन बागवानी में पौध रोपण 3×3 मीटर की दूरी पर करते हैं। रेखांकन वर्गाकार विधि से करते हैं। गड्ढे का आकार 1×1×1 मीटर रखते हैं। गड्ढे को भरने से पूर्व उसमें घास–फूस जलाकर उपचारित कर लेते हैं। एक गड्ढे में 40–50 किग्रा. अच्छी तरह सड़ी गोबर की खाद, 500 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट, 50 ग्राम मैलाथयान धूल, 50 ग्राम फफूँदीनाशक अच्छी तरह मिट्टी में मिलाकर गड्ढे को भूमि से 10 सेंमी0। ऊपर तक भर देना चाहिए। गड्ढा भरने के पश्चात् उसकी सिंचाई करें अथवा अच्छी तरह थाला बनाकर वर्षा के जल से गड्ढे को दबने दे। जनवरी/फरवरी माह में पौधों का रोपण करे, पौधों की पूरी जड़ गड्ढे के अंदर होनी चाहिए तथा कलम बंधन के जुड़ाव वाली भाग भूमि से 15–20 सेमी. ऊपर होना चाहिए। पौधों को रोपण से पूर्व डाइथेन एम–45 के 0.3 प्रतिशत के बाद देनी चाहिए। फास्फोरस तथा पोटाश शाखाओं के फैलाव क्षेत्र में भूमि में 15–20 सेमी0 गहरी चौड़ी नालियाँ बनाकर देना चाहिए। नाईट्रोजन तथा गोबर की खाद पौधे के फैलाव के अनुसार छिड़ककर भूमि में भली भाँति मिला दें। घाटी, तराई एवं भावर क्षेत्र में नाइट्रोजन की 70 ग्राम, फास्फोरस की 40 ग्राम तथा पोटाश की 40 ग्राम मात्रा प्रति पौधा

प्रति वर्ष की आयु के अनुसार देना चाहिए। यह मात्रा 6 वर्ष बाद स्थिर कर देना चाहिए। खाद एवं उर्वरक की संपूर्ण मात्रा दिसम्बर/जनवरी में देना चाहिए। फलदार वृक्ष में फल तोड़ने के पश्चात् नाइट्रोजन प्रति वृक्ष अतिरिक्त देना चाहिए।

सिंचाई, गुड़ाई एवं नमी संरक्षण

जहाँ पानी की पर्याप्त व्यवस्था हो, फल लगने के पश्चात् आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए। थॉवलों की निराई गुड़ाई करके खरपतवार निकालते रहना चाहिए।

पर्वतीय क्षेत्रें में नमी संरक्षण हेतु पलवार

(मल्चिंग) का प्रयोग मार्च–अप्रैल से जून तक करना चाहिए। खाद एवं उर्वरक को मिलाते समय थॉवलों की अच्छी तरह गुड़ाई करनी चाहिए। नये लगे बाग में यदि पानी की सुविधा उपलब्ध है तो गर्मी में आवश्यकतानुसार पानी देना चाहिए जिससे पौधा सूखने न पायें।

संधाई एवं कटाई-छंटाई

पौधे का मजबूत ढाँचा तैयार करने के लिये संधाई क्रियाएँ की जाती हैं। पहले वर्ष मुख्य तने पर तीन–चार शाखाऐं चुनी जाती हैं। दूसरे वर्ष पेड़ की आकृति में संतुलन लाने के लिए सभी मुख्य शाखाओं से दो–तीन उपशाखाओं को निकलने देते हैं। तीसरे वर्ष भी इन उपशाखाओं से पुनः दो–दो उपशाखाओं को निकालते हैं। चौथे वर्ष हल्की छंटाई करके केवल एक दूसरे से रगड़ती हुए एवं रोगग्रस्त शाखाओं या टहनियों को ही काटकर अलग करते रहना चाहिए। इस आयु में पेड़ से फलत होने लगती है तथा बाद की कटाई छंटाई व संधाई मजबूत ढाँचा बनाने एवं फलत को बढ़ाने हेतु की जाती है। आडू के पौधों की संधाई दो विधियों से की जाती है। इसमें खुला मध्य विनयन विधि प्रयोग की जाती है। इस विधि में पौध रोपण के बाद मुख्य तनों को 45–60 सेमी. पर काट देते हैं और 3 से 5 टहनियाँ रखी जाती हैं, इनकी आपस की दूरी 3–5 सेमी. रखते हैं। दूसरी विधि रूपान्तरित अग्रप्ररोह प्रणाली है। इसमें मुख्य तनों को एक मीटर पर काटते हैं। आडू में एक वर्ष पुरानी शाखाओं पर फल आते हैं एवं पेड़ के ऊपरी तिहाई भाग में सबसे ज्यादा फल होती है। अतः प्रत्येक वर्ष पिछली वृद्धि की हुई न फलने वाली शाखाओं की काट–छाँट करना आवश्यक है। जिससे नई फल बनने वाली शाखाएं निकलें। ऐसी शाखाओं के ऊपर लगभग एक तिहाई भाग काट देना चाहिए। पेड़ के अंदर की ओर जाने वाली टहनियों, रोगग्रस्त, कमजोर शाखाओं तथा अवांछित शाखाओं को काट कर अलग कर देना चाहिए। कटी हुई शाखा के पास वाली कली बाहर की ओर हो जिससे पौधों की बढ़वार बाहर की ओर हो सके।

कटाई-छंटाई में सावधानियाँ

1. काट–छाँट संस्तुत विधियों से उचित समय पर करें।
2. काट–छाँट करने वाले व्यक्ति अनुभवी होना चाहिये।
3. प्रत्येक वर्ष काट–छाँट करने वाले व्यक्ति को न बदलें।
4. काट–छाँट करने वाले औजार तेज धार वाले हों, ताकि काटने पर ढूंठ न रहे।
5. काट–छाँट के बाद कॉपर आक्सीक्लोराइड (600 ग्राम प्रति 200 ली0 पानी में) के घोल का छिड़काव करें।

6. बड़े–कटे भागों पर चौबटिया पेस्ट (1 भाग कैल्सियम कार्बोनेट. एक भाग रेड लेड. सवा भाग अलसी का तेल) लगाना चाहिए।

प्रमुख कीट एवं व्याधियाँ

पत्ती मोड़क माँहू (लीफ कर्ल एफिड) :

इस कीट का प्रकोप फरवरी–अप्रैल के मध्य होता है। इसके शिशु एवं वयस्क पेड़ों की पत्तियों से रस चूसते हैं, जिस कारण पत्तियाँ मुड़ जाती हैं और बाद में पीली पड़कर गिर जाती हैं। मुड़ी हुई पत्तियों को खोलने पर अंदर से हरे रंग के माँहू दिखाई देते हैं। ग्रसित पेड़ों पर फलों का विकास रूक जाता है और बाद में गिर जाते हैं।

सफेद शल्क कीट (हवाइट स्केल कीट)

पेड़ों की टहनियों, शाखाओं एवं तनों पर पीले रंग के शिशु व वयस्क पाये जाते हैं तथा स्थिर होकर इनका रस चूसते हैं। परिणामस्वरूप ग्रसित भाग सूखने लगता है और पेड़ की बढ़वार रूक जाती है तथा फल पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

पत्ती मोडक बीमारी (लीफ कर्ल डिजीज)

रोगग्रस्त पत्तियाँ किनारे से मुड़ जाती हैं। पत्तियाँ मोटी, माँसल तथा लाल रंग की हो जाती हैं। उस अवस्था में पत्तियों की जड़ों में गोंद निकलने लगता है तथा पत्तियाँ सूख जाती हैं।

गौंद निकलने की बीमारी (गमोसिस)

वर्षा ऋतु में इसका प्रकोप सर्वाधिक रहता है। ग्रसित फलों, टहनियों एवं शाखाओं में गोंद निकलने लगता है। ग्रसित फलों का बाजार में उचित मूल्य नहीं मिलता जबकि ग्रसित पेड़ों की बढ़वार रूक जाती है।

आडू का एक्स बीमारी (पीच एक्स डिजीज)

मई के प्रारम्भ में आडू के पेड़ों की पत्तियों पर रोग के प्रथम लक्षण दिखाई देते हैं। पत्तियों का रंग धीरे–धीरे पीला हो जाता है। साथ ही पत्तियों पर लाल रंग के धब्बे बन जाते हैं। अंत में रोगग्रस्त पत्ते लाल रंग में परिवर्तित हो जाते हैं। रोगग्रस्त पौधे व टहनी की पत्तियों का लम्बाई में ऊपर की आरे मुड़ जाना भी रोग का प्रमुख लक्षण है। पत्ते की धमनियाँ भी लाल–पीले रंग की हो जाती है। पौधों में लक्षण अधिकतर किसी एक टहनी या कुछ ही टहनियों तक सीमित रहते हैं।

एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन

जनवरी माह से प्रुनिंग (कटाई–छंटाई) करते समय कीटध्रोग ग्रस्त सूखी शाखाओं को काट छाँट कर जला दें तथा चौबटिया पेस्ट का लेप करें। इसके बाद लाइम सल्फर 1:20 के अनुपात में छिड़काव करें ताकि डाई बैक, फल सड़न एवं स्कैब का नियंत्रण हो सके।

फरवरी माह में आडू को 3–4 दिनों पर सर्वेक्षण करते रहें तथा गुलाबी कली अवस्था (फूल खिलन के पहले) आने पर क्लोरोथालोनिल की एक ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर पेड़ों पर छिड़काव करें। इस उपचार से आडू में पत्ती मोड़क माँह (लीफ कर्ल एफीड) तथा पत्ती मोड़क रोग (लीफ कर्ल

बीमारी) का प्रकोप नहीं होता है ऊपरोक्त कीट एवं रोग के नियंत्रण में छिड़काव करने का समय बहुत महत्वपूर्ण होता है। अतः समय से छिड़काव करें।

मार्च माह में पेड़ों के थॉवलों में चारों तरफ दो इंच मोटी सड़ी गोबर की खाद फैला दें। जिससे गर्मी में नमी संरक्षित की जा सके। जून में थॉलों की हल्की गुड़ाई करके गोबर की खाद को मिला दें।

मई माह में आडू बाग का सर्वेक्षण करते रहें। जब आडू में एक्स रोग के लक्षण दिखाई देते हैं। एन्टीबाईटिक आक्सीटैट्रासाइक्लीन, हाइड्रोक्लोराइड दवा 1 से 2 ग्राम प्रति वृक्ष के हिसाब से टीके के रूप में पौधे के अंदर डालना चाहिये। भूमि सतह से लगभग 30 सेमी0 ऊपर चारों ओर थोड़ी–थोड़ी दूरी पर 45 डिग्री कोण के लगभग 6 से 8 मि0मी0 दायरे के क्षेत्र में वर्मे की सहायता से छेद करें और थोडे से पानी (10 से 20 मि0ली0) में दवा का मिश्रण बूंद–बूंद कर डालें । यह टीके फल तोड़ने के बाद और पत्ते झड़ने के मध्य समय में लगाये जाते हैं। इस बीमारी का फैलाव लीफ हापर द्वारा होता है। उनके नियंत्रण के लिये थिएमेथोक्सम 0.04 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिये। रोगग्रस्त भाग या पौधे को बाग से काट कर नष्ट कर देना चाहिये। जून–जुलाई माह में गमोसिस के नियंत्रण हेतु 25 दिनों के अंतराल पर कॉपरआक्सीक्लोराइड 0.3 प्रतिशत बोरेक्स 0.3 प्रतिशत (3़3 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर) के घोल का दो छिड़काव करें। दूसरा छिड़काव फल तोड़ने के 20 दिन पहले अवश्य समाप्त कर लें।

जुलाई से अक्टूबर माह के मध्य स्केल कीट का प्रकोप अधिक होता है। अतः इस अवधि में उद्यान की निगरानी करें तथा ग्रसित पत्तियों को काटकर जला दें। प्रकोप अधिक होने की अवस्था में ऐजाडीरेक्टिन 0.04 प्रतिशत (1.5 मिली0 प्रति लीटर पानी में मिलाकर) का छिड़काव करें।

अक्टूबर माह में बगीचे का खुदाई कर थॉलें बना दें। थॉलों में सड़ी गोबर की खाद 30–40 किग्रा0 प्रति वृक्ष की दर से डालें। थॉलें बनाते समय जड़ के पास मिलने वाली सूड़ियों/कीटों को एकत्रित कर नष्ट कर दें।

उद्यान में पूरे वर्ष उन्नत शस्य क्रियाओं को अपनाकर सफाई बनायें रखें तथा समय–समय पर निगरानी कर कीट–व्याधियों का स्तर देखते रहे, इसे पौध सुरक्षा उपायों को अपनाने में सहायता मिलेगी।

फलों की तुड़ाई

आडू के ताजे फलों को खाने के लिये वृक्ष से तोड़कर निकट अथवा दूर के बाजारों में भेजना पड़ता है। विदेशी मुद्रा अर्जित करने के उद्देश्य से उनका निर्यात भी किया जाता है। आडू के परिपक्व फलों को ही तोड़ना चाहिये। अपरिपक्व फल स्वाद रहित होते हैं और क्रेताओं द्वारा पसन्द नहीं किये जाते हैं। फलतः उत्पादकों को इनके अच्छे मूल्य न मिलने के कारण आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। इसके विपरीत अधिक परिपक्व हो जाने पर जब इनको वृक्षों से तोड़ा जाता है तो इनकी भण्डारण क्षमता भी कम हो जाती है। आडू को दूर की मण्डियों में उनके वांछित मूल्य प्राप्त करने के लिये उनको ठीक समय पर तोड़कर विक्रय हेतु भेजा जाना चाहिये। आडू के फल के सतह का रंग जब हरे से पीले या गुलाबी में बदलने लगे तथा छूने पर हल्का नरम लगे, उस समय दूर की मंडियों के लिये तोड़कर भेजना चाहिये। निकट के बाजारों एवं मण्डियों के लिये उस समय तोड़ना चाहिये, जब फल का रंग पूरी तरह हरे से पीले या

गुलाबी में बदल जाय। आडू के पौधों में सभी फल एक साथ नहीं पकते हैं। इसलिये तीन–चार बार में तोड़ना चाहिये।

फलों की ग्रेडिंग, पैकिंग एवं भण्डारण

जिस प्रकार फल की तुड़ाई में परिपक्वता का महत्व है, उसी प्रकार से रंग एवं आकार के आधार पर श्रेणीकरण अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि उचित प्रकार से श्रेणीकृत फल बाजार में न सिर्फ उद्यानपति की शाख बढ़ाता है, बल्कि इसकी बिक्री से अधिक लाभ मिलता है। साथ ही साथ बाजार में उपभोक्ता भी उसकी तरफ आकर्षित होता है।

पैकिंग से पूर्व चोट खाये, रोगग्रस्त, अपरिपक्व एवं बहुत छोटे फलों को छाँट लेते हैं। आडू को मुख्य रूप से आकार के अनुसार श्रेणीकरण किया जाता है। फलों को बड़े, मध्यम एवं छोटे आकार में श्रेणीकृत कर लेते हैं। फलों को निर्यात करने या दूर की मण्डियों में भेजने के लिये श्रेणीकृत फलों को दो–तीन विभिन्न क्षमता वाले सी0एफ0बी0 बाक्सों में पैक कर भेजना चाहिये। निकट के मण्डियों में पूर्ण पके हुये फलों को बॉस की टोकरी या लकड़ी के बक्सा में भेजा जा सकता है। आडू के फल सी0एफ0बी0 बक्सों में अच्छी तरह पैक कर 0–3 डिग्री सैल्सियस तापमान एवं 85–90 प्रतिशत अपेक्षित आर्द्रता पर 20–25 दिन तक रखा जा सकता है।

आडू उत्पादन का आय-व्यय विवरण

आडू उद्यान स्थापित करने में खेत की तैयारी, पौध रोपण, गड्ढे का खुदान, खाद एवं उर्वरक का प्रयोग, कीट/फफूंदनाशी रसायनों एवं उद्यान में अन्य कर्षण क्रियाओं पर बाग स्थापना करने के समय से फल आने तक (चार वर्षों तक) लगभग रू0 35,000/– प्रति हैक्टेयर व्यय होता है।

आडू के कल्मी पौधों में चौथे वर्ष से फल शुरू हो जाती है। प्रारम्भ में उत्पादन लगभग 8 से 10 किग्रा) प्रति वृक्ष (3200 से 4000 किग्रा0 प्रति हैक्टेयर) होता है। उद्यान स्थापना के चौथे वर्ष यदि उत्पादन रू0 10/– प्रति किग्रा0 की दर से बिकता है, तो उद्यानपति को रू0 32,000/– प्राप्त होगा। चौथे वर्ष के बाद उत्पादन क्रमशः बढ़ता जायेगा जबकि व्यय कम होगा। इस प्रकार उद्यानपति को पाँचवे वर्ष से आडू से आय प्राप्त होना शुरू हो जायेगा।

आडू उत्पादन में ध्यान देने योग्य बातें

बाग स्थापना हेतु स्वस्थ, कीट एवं व्याधि से मुक्त उन्नतशील प्रजाति के कायिक प्रवर्धन द्वारा तैयार पौधों का चयन करें।

पौध रोपण करते समय इस बात का ध्यान रखें कि सांकुर शाखा का भाग भूमि समह से नीचे न आने पाये।

- आवश्यकतानुसार परागणकर्ता किस्मों का रोपण उद्यान में अवश्य करें।
- उद्यान में परागण हेतु मधुमक्खियों के 4–5 बक्से उचित स्थान पर रखें।
- ग्रीष्म ऋतु में नवरोपित पौधों की सिंचाई करते रहें।
- मार्च माह में पौधों के थालों में अवरोध पर्त का प्रयोग अवश्य करें।

- पेड़ों की कटाई–छंटाई के ऊपरांत चौबटिया पेस्ट का प्रयोग अवश्य करें।

आडू के बगीचों में वर्षभर अपनाये जाने वाले मासिक कार्य का विवरण

जनवरी -

- रोपण से पूर्व गड्ढों को क्लोरोथालोनिल (0.3 प्रतिशत) से मिट्टी को उपचारित करें तथा 40–50 किग्रा0 गोबर की खाद + 500 ग्राम सुपरफास्फेट + 50 ग्राम फुराडोन धूल मिला कर गड्ढे को पुनः भर दें।
- पौध रोपण कार्य करें तथा रोपण ऊपरान्त सिंचाई करें।
- बड़े पेड़ों की कटाई–बँटाई का कार्य करें तथा चौबटिया पेस्ट लगायें।
- मूलवृन्तों पर टंग ग्राफ्टिंग करें।
- पुराने बाग में यदि लाइकेन बीमारी का प्रकोप हो, तो कास्टिक सोडा 1.0 प्रतिशत (10 ग्राम प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करें।

फरवरी

- उर्वरकों का प्रयोग करें।
- ग्राफ्टिंग का कार्य यदि जनवरी माह में न हुआ हो तो करें।
- पौध रोपण का कार्य यदि जनवरी माह में न हुआ हो तो करें।
- रोपित पौधों में सिंचाई करें।
- आडू के पत्ती मोड़क कीट के नियंत्रण हेतु ऐजाडीरेक्टिन 0.04% का छिड़काव करें।

मार्च -

- आडू के बाग में कर्षण क्रियाओं द्वारा सफाई रखें।
- थालों में पलवार को प्रयोग करें।
- नवरोपित पौधों की सिंचाई करें।

अप्रैल -

- बागीचे में नमी बनायें रखें।
- आडू के प्रवर्धित पौधों में पिंचिंग कार्य करें। जिन पौधों में मल्चिंग या पलवार न किये हों, उसमें करें।
- नवरोपित पौधों में सहारे की आवश्यकता हो, तो उनमें सहारा दें।

मई -

- पौधालय एवं बाग में नमी बनाये रखें।
- बाग को साफ रखें।
- परिपक्व फलों की तुड़ाई कर विपणन कार्य करें।

जून -

- आड़ू पौधों के थालों में बिछाई गई पलवार को मिट्टी में मिला दें।
- आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें।
- फलों की तुड़ाई, ग्रेडिंग, पैकिंग एवं विपणन कार्य करें।

जुलाई –

- फलों की तुड़ाई एवं विपणन कार्य करें।
- उद्यान में उगी घासों की पलटाई करें।
- आड़ू के बाग को स्वच्छ बनाये रखें।
- कीटों एवं बीमारियों की बाग में निगरानी करते रहें एवं नियंत्रण हेतु आवश्यकतानुसार दवाओं का प्रयोग करें।

अगस्त –

- उद्यान की सफाई करें।
- यदि घासों की पलटाई जुलाई में नहीं हुयी है, तो इस माह अवश्य करें।

सितम्बर –

- पौध प्रवर्धन के लिये बडिंग कार्य करें।

अक्टूबर –

- मूलवृन्त तैयार करने के लिये परिपक्व बीजों को एकत्र करें।
- बागीचे की सफाई करें।

नवम्बर –

- मूलवृन्त तैयार करने के लिए परिपक्व बीजों की बुवाई करें।
- आड़ू के बाग की खुदाई का कार्य करें।
- नये बाग की स्थापना के लिये रेखांकन कार्य करें।
- रोपण हेतु गड्ढे की खुदाई करें।

दिसम्बर –

- आवश्यकतानुसार कटाई छंटाई का कार्य करें तथा कटे भाग पर चौबटिया पेस्ट का लेप करें।
- पौध रोपण हेतु गड्ढे भरने का कार्य करें।

नारियल

देवी–देवताओं की पूजा अर्चना हो या कोई अन्य मांगलिक कार्य, नारियल के बिना अधूरा है। अतः नारियल भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। वाल्मीकी रामायण में नारियल का वर्णन किया गया है। आराध्य फल होने के साथ–साथ दैनिक जीवन में भी नारियल का एक अहम स्थान है। इस तरह नारियल के सांस्कृतिक महत्व के साथ–साथ इसका आर्थिक महत्व भी है। नारियल से भारत के छोट किसानों का जीवन जुटा हुआ है। इस वृक्ष का कोई ऐसा अंग नहीं है जो उपयोगी न हो। नारियल का फल पेय, खाद्य एवं तेल के लिए उपयोगी है। फल का छिलका विभिन्न औद्योगिक कार्यों में उपयोगी है तथा पत्ते एवं लकड़ी भी सदुपयोगी हैं। इन्हीं उपयोगिताओं के कारण नारियल को कल्पवृक्ष कहा जाता है।

भारत वर्ष में नारियल की खेती एवं उद्योग के समेकित विकास के लिए भारत सरकार ने 1981 में नारियल विकास बोर्ड का गठन किया। इसका मुख्यालय केरल के कोची शहर में है और इसके 3 क्षेत्रीय कार्यालय पटना (बिहार) स्थित क्षेत्रीय कार्यालय के नियंत्रणाधीन 5 राज्य स्तरीय केन्द्र हैं जो उड़ीसा के भुवनेश्वर, पश्चिम बंगाल के कलकत्ता, मध्यप्रदेश के कोण्डेगाँव, असम के गुवाहटी तथा त्रिपुरा के अगर्तला में स्थित है। राज्य स्तरीय केन्द्रों के अतिरिक्त 4 प्रदर्शन–सह–बीज उत्पादन प्रक्षेत्र, सिंहेश्वर (बिहार), कोण्डेगाँव (मध्य प्रदेश), अभयपुरी (असम), बेलबारी (त्रिपुरा) भी पटना क्षेत्रीय कार्यालय के तकनीकी मार्गदर्शन में कार्यरत हैं। यहाँ से नारियल सम्बन्धी तकनीकी जानकारी किसानों को उपलब्ध कराई जाती है।

जलवायु एवं भूमि

नारियल के पौधों की अच्छी वृद्धि एवं फलन के लिए उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु आवश्यक है, लेकिन जिन क्षेत्रों में निम्नतम तापमान 10° सेंटीग्रेड से कम तथा अधिकतम तापमान 40° सेंटीग्रेड से अधिक लम्बी अवधि तक नहीं रहता हो उन क्षेत्रों में भी इसे सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसके लिए वर्ष भर समानुपातिक रूप से वितरित वर्षा लाभदायक है। समानुपातिक वर्षा के अभाव में सिंचाई की आवश्यकता होती है।

नारियल की सफल खेती के लिए अच्छी जलधारण एवं जलनिकास क्षमता वाली मिट्टी जिसका पी. एच. मान 5.2 से 8.8 तक हो उपयुक्त होती है। केवालध्काली एवं पथरीली मिट्टियों के अलावा ऐसी सभी प्रकार की मिट्टियाँ जिनमें निचली सतह में चट्टान न हो नारियल की खेती के लिए उपयुक्त हैं, लेकिन बलुई दोमट मिट्टी सर्वोत्तम पायी गई है।

किस्में

नारियल की किस्मों को दो वर्गों में बांटा गया है जो लम्बी एवं बौनी किस्म के नाम से जानी जाती हैं। इन दोनों किस्मों के संस्करण से जो किस्में बनाई गई हैं वे संकर किस्म के नाम से जानी जाती हैं। गैर–परम्परागत क्षेत्रों के सिंचित क्षेत्रों हेतु उँची एवं संकर किस्में अनुशंसित हैं, जबकि पर्याप्त सिंचाई सुविधाए न होने पर केवल उँची किस्मों का उपयोग लाभप्रद है। बौनी किस्में गैर–परम्परागत क्षेत्रों की

जलवायु के लिए उपयुक्त नहीं पायी गई हैं। फिर भी विशेष देखरेख में बौनी किस्मों की खेती भी संभव है।

लम्बी किस्मों की उपजातियों में पश्चिम तटीय लम्बी प्रजाति, पूर्व तटीय लम्बी प्रजाति, तिप्तूर लम्बी प्रजाति, अण्डमान लम्बी प्रजाति, अंडमान जायन्ट एवं लक्षद्वीप साधारण प्रमुख हैं। बौनी किस्मों की उपजातियों में चावक्काड ऑरेंज बौनी प्रजाति एवं चावक्काड हरी बौनी प्रजाति प्रचलित हैं। संकर किस्मों की उपजातियों में मुख्य हैं लक्षगंगा, केरागंगा एवं आनन्द गंगा।

पौध रोपण

नारियल खेती की सफलता रोपण सामग्री, अपनाई गयी विधि एवं इसकी वैज्ञानिक देखभाल पर निर्भर करती है। गुणवत्तामूलक पौधों का चुनाव करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि बिचड़े की उम्र 9–18 माह के बीच हो तथा उनमें कम से कम 5–7 हरे भरे पत्ते हों। बिचड़ों के गर्दनी भाग का घेरा 10–12 सें.मी. हो तथा पौधे रोगग्रस्त न हों। चयनित जगह पर अप्रैल–मई माह में 7.5 × 7.5 मीटर (25 × 25 फीट) की दूरी पर 1 × 1 × 1 मीटर आकार के गड्ढे बनाए जाते हैं। प्रथम वर्षा होने तक गड्ढा खुला रखा जाता है जिसे 30 किलो गोबर की खाद अथवा कम्पोस्ट एवं सतही मिटटी को मिलाकर इस तरह भर दिया जाता है कि ऊपर से 20 सें.मी. गड्ढा खाली रहे। शेष बची हुई मिट्टी से पौधा लगाने के बाद गड्ढे के चारों ओर मेढ़ बना दिया जाता है ताकि गड्ढे में वर्षा का पानी इकट्ठा न हो।

नारियल लगाने का उपयुक्त समय जून से सितम्बर तक के महीने हैं, लेकिन जहाँ सिंचाई की व्यवस्था हो वहाँ जाड़े तथा भारी वर्षा का समय छोड़कर कभी भी पौधा लगाया जा सकता है। उपरोक्त विधि से तैयार किये गये गड्ढे के ठीक बीचों–बीच खुरपी या हाथ से नारियल फल के आकार का गड्ढा बनाकर पौधों को रखकर चारों ओर से मिट्टी से भर दिया जाता है तथा मिट्टी को पैर से अच्छी तरह से दबा दिया जाता है। यदि लगाने का समय वर्षाकाल न हो तो पौधा लगाने के ऊपरांत सिंचाई आवश्यक होती है। गड्ढों में नारियल बिचडों का रोपण करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि बिचड़ों के ग्रीवा स्थल से 2 इंच व्यास के बीजनट अंश को मिट्टी से नहीं ढका जाय, अन्यथा बिचडों में श्वसन क्रिया ठीक से नहीं होने के कारण उसकी वृद्धि पर कुप्रभाव पड़ सकता है। साथ ही पौधे के मरने की भी सम्भावना बढ़ जाती है। जिन क्षेत्रों में दीमक या ग्रब्स का प्रकोप हो वहाँ गड्ढा भरते समय 10 ग्राम ऐजाडीरेक्टिन मिट्टी के साथ मिला दें।

पौधों की देखभाल

नव रोपित बिचडों को अत्यधिक ठंडक एवं गर्म हवा (लू) से बचाव हेतु समुचित छाया एवं सिंचाई की व्यवस्था आवश्यक है। रोपण के बाद 2 वर्ष की अवधि तक तना व बीजनट का गर्दनी भाग खुला रखें क्योंकि समुचित वृद्धि के लिए गर्दनी भाग पर हवा का संचार जरूरी है।

नारियल के वयस्क वृक्षों की उत्पादकता बनाये रखने के लिए ग्रीष्म तथा अनावृष्टि काल में सिंचाई बहुत

जरूरी है। आवश्यकतानुसार 3–4 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करें। जल की मात्रा पौधों की उम्र एवं उसके विकास पर निर्भर है।

खाद एवं उर्वरक

लंबी अवधि तक अधिक उत्पादन के लिए अनुशंसित मात्रा में खाद एवं उर्वरकों का नियमित प्रयोग आवश्यक है। वयस्क नारियल पौधों को प्रतिवर्ष प्रथम वर्षा के समय जून में 30–40 किलो सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट का प्रयोग करें। इसके अलावा निम्न सारणी के अनुसार उर्वरकों की अनुशंसित मात्रा का नियमित प्रयोग करें।

सिंचित क्षेत्रों के लिए उर्वरकों की अनुशंसित मात्रा प्रति पौधा प्रति वर्ष (ग्रा./पौधा)

पौधों की उम्र	उपयोग किये जाने वाले उर्वरकों की मात्रा		
	यूरिया	सिंगल सुपर फास्फेट	म्यूरेट ऑफ पोटाश
प्रथम वर्ष (पौधा लगाने के तीन माह बाद)	100	200	200
द्वितीय वर्ष	333	666	666
तृतीय वर्ष	666	1332	1332
चतुर्थ वर्ष एवं तदुपरांत	1000	2000	2000

ऊपरोक्त उर्वरकों की मात्रा एक पेड़ हेतु एक वर्ष के लिए अनुशंसित है जिसे तीन किस्तों में विभाजित करके देने से उर्वरकों का अधिकतम उपयोग होता है। उर्वरकों की तीन किस्तों में से प्रथम किस्त के रूप में उपरोक्त मात्रा का आधा भाग (50%) वर्षा ऋतु के आरम्भ में तथा द्वितीय एवं तृतीय किस्त के रूप में एक चौथाई (25%) मात्रा क्रमशः सितम्बर माह में तथा शेष एक चौथाई (25%) मात्रा मार्च में दी जानी चाहिए। वयस्क पौधों को खाद एवं उर्वरक मुख्य तने से 1–1.5 मीटर की दूरी पर पेड़ के चारों तरफ देना चाहिए। पाँच वर्ष से कम उम्र के पौधों के लिए उम्र के अनुसार उपरोक्त दूरी कम करनी चाहिए।

उपरोक्त उर्वरकों के अलावा जिन क्षेत्रों में बोरॉन नामक सूक्ष्म पोषक तत्व की कमी हो उन क्षेत्रों में 50 ग्राम प्रति वयस्क पेड़ प्रति वर्ष बोरेक्स के प्रयोग करने से शिखर अवरूद्ध (क्राउन चोकिंग) रोग का डर नहीं रहता है। इसके अलावा मैग्नीशियम नामक सूक्ष्म पोषक तत्व की कमी वाले क्षेत्रों में मैग्नीशियम सल्फेट 500 ग्राम प्रति वयस्क पेड़ प्रति वर्ष देना लाभदायक पाया गया है।

निराई-गुडाई

नारियल बाग में अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए नियमित निराई–गुडाई एवं जुताई आवश्यक है। इन क्रियाओं से खरपतवार नियंत्रण तो होता ही है, साथ ही जड़ों में वायु का संचालन पर्याप्त रूप में होता है। आच्छादन कृषि के माध्यम से मिट्टी की आर्द्रता बनी रहती है, मृदाक्षय नहीं होता है तथा इससे

भूमि में जैविक पदार्थों की उपलब्धता में वृद्धि होती है। इसके लिए मूंग, उड़द, बिना काँटोंवाली छुईमुई, लाजवन्ती, *केलोपोगोनियम, स्टाइलोसेन्थस, सेसबेनिया* इत्यादि की बुआई कर सकते हैं।

अन्तर्वर्ती एवं मिश्रित फसल (बहुस्तरीय फसल प्रणाली)

नारियल के बाग में अनेक प्रकार की अन्तर्वर्ती तथा मिश्रित फसलें उगाने की अनुशंसा की जाती है। इन फसलों से नारियल उत्पादकों को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। अन्तवर्ती तथा मिश्रित फसलों का चयन करते समय उस क्षेत्र की कृषि–जलवायु की स्थिति, विपणन की सुविधा तथा परिवार की आवश्यकता को ध्यान में रखना आवश्यक है। अन्तरवर्ती तथा मिश्रित फसलों के रूप में केला, अनन्नास, ओल, मिर्च, शकरकंद, पपीता, नींबू, हल्दी, अदरक, मौसम्बी, टेपीओका, तेजपात, पान तथा फूल एवं सजावटी पौधे बड़ी सफलतापूर्वक उगाये जा सकते हैं। बहुस्तरीय नारियल आधारित प्रणाली अपनाने से उपरोक्त लाभ के अलावा प्राकृतिक रूप में जमीन में उपलब्ध पोषक तत्वों को उपयोग तथा जमीन से उपर प्राकृतिक स्रोत जैसे सूर्य का प्रकाश, वायुमण्डलीय नेत्रजन इत्यादि का भरपूर उपयोग होता है। साथ ही नारियल पौधों को दिए गए खाद, उर्वरक, पानी इत्यादि जो नारियल पौधों के जरूरत से ज्यादा है, का सदुपयोग हो जाता है।

नारियल के मुख्य कीट एवं व्याधियाँ

नारियल की अच्छी पैदावार के लिए खाद एवं पानी के अलावा पौध–सुरक्षा उपाय अपनाने की भी अत्यधिक आवश्यकता है। नारियल में पाये जाने वाले कुछ प्रमुख कीट एवं व्याधियाँ इस प्रकार हैं।

(क) कीट एवं उनका नियंत्रण।

1. गैंडा भृंग (रिनोसिरस बीटल)

इस कीट से आक्रमणग्रस्त कोंपल को पूर्णरूप से खुलने पर पत्ते ज्यामितीय ढंग से कटे हुए दिखाई देते हैं। इन कीटों को अंकुशों में फंसाकर बाहर निकाल देना चाहिए। प्रभावित वृक्ष की ऊपरी तीन पत्तियों के पर्णकक्ष में 25 ग्राम सेविडॉल 8 जी में 200 ग्राम महीन बालू रेत मिश्रित कर मई, सितम्बर व दिसम्बर के महीनों में भर दें। साथ ही साथ बगान साफ–सुथरा रखें।

2. लाल ताड धुन (रेड पाम वीविल)

यह कीट तने पर छिद्र कर देता है। इन छिद्रों से भूरे रंग का चिपचिपा स्राव निकलता दिखाई देता है। इन छिद्रों से कीट द्वारा चबाये हुए पेड़ के रेशे भी बाहर निकलते हैं। नियंत्रण हेतु तने को किसी भी प्रकार की क्षति या घाव होने से रोकें तथा उपस्थित छिद्रों में 2–3 सेल्फास की गोलियाँ अथवा पेट्रोल से भींगी रूई रखकर छिद्रों को कोलतार से बन्द कर दें। इसके अतिरिक्त आक्रमणग्रस्त पेड़ों में 1 प्रतिशत कार्बरिल का एक कीप द्वारा तने में इंजेक्शन दें।

3. कोरिड बग

इस कीट के प्रकोप से मादा फूलों की वृद्धि नहीं होती है तथा अविकसित फल गिरने लगते हैं।

कभी–कभी फल विकसित होने पर भी उस में पानी या गरी नहीं होती है। इसके बचाव के लिए निषेचन की क्रिया समाप्त होने पर 0.1 प्रतिशत कार्बरिल का छिड़काव करें।

4. कोकोनट माइट

इसका प्रभाव विकसित हो रहे फलों पर ज्यादा देखा गया है जिसके कारण फलों का रंग बदरंग हो जाता है और उसका आकार बिगड़ जाता है। माइट का प्रकोप फल विकास के साथ ही शुरू हो जाता है अतः इसके नियंत्रण के लिए फलों के छोटे अवस्था में ही नीमाजोल 3 मि.ली./ली. पानी में घोल कर 2 छिड़काव करें तथा पौधों के जड़ों के पास की नीमाजोल का प्रयोग करें।

(ख) रोग एवं उनका नियंत्रण

महाली, फल सड़न एवं नट फॉल (फल गिराव)

इस बीमारी के कारण मादा फूल एवं अपरिपक्व फल गिरते हैं। इसके चलते नव विकसित फलों तथा बुतामों (बटन) के डंठलों के समीप घाव दिखाई देते हैं जो अंततः आंतरिक उतकों के नाश के परिणामी होते हैं।

प्रबंधन

इसके नियंत्रण के लिए नारियल के मुकुट पर एक प्रतिशत बोर्डो मिश्रण नामक दवा का छिड़काव एक बार वर्षा प्रारंभ होने के पूर्व और पुनः दो माह के अंतराल पर करना चाहिए।

बडरॉट अथवा कली सड़न

इस बीमारी में कोंपल (केन्द्रस्थ पत्ती) जो कृपाण सदृश होती है झुकी तथा मुर्झाई हुई दृष्टिगोचर होती है। जब बीमारी अपने उत्कर्ष पर पहुँचती है तो केन्द्रस्थ पत्ती मुड़ कर नीचे झुक जाती है और अंततः नारियल का सम्पूर्ण मुकुट नीचे गिर जाता है और नारियल का वृक्ष अपनी जीवन लीला ही समाप्त कर देता है। मुकुट के कोमले पर्णाधार के सड़ने से सड़े अंडों की सी दुर्गन्ध निकलती है।

प्रबंधन

मुकुट के सभी आक्रान्त उतकों को निकाल कर 10 प्रतिशत बोर्डोपेस्ट का लेप करें और जब तक नये प्ररोह नहीं प्रस्फुटित हो तब तक यह रक्षात्मक कवच बने रहने दें। आक्रान्त नारियल के पड़ोसी नारियल वृक्षों के मुकुट पर एक प्रतिशत बोर्डो मिश्रण का छिड़काव कर उन्हें रक्षात्मक कवच पहनावें। तथा बीमारी के संभावित समय में प्रायः एक प्रतिशत बोर्डो मिश्रण का छिड़काव बार–बार करते रहे।

क्राउन चोकिंग

यह रोग साधारणतया देश के उत्तर–पूर्वी राज्यों में ही देखा गया है। इस रोग से कम उम्र के पौधे ज्यादा प्रभावित होते हैं। इसका मुख्य लक्षण यह है कि इससे कोमलतम पत्ते का समुचित विकास रूक जाता है

एवं प्राकृतिक आकार विकृत होने लगता है। कुछ दिनों के बाद रोग अधिक प्रभावकारी हो जाता है और कोमलतम पत्ते खुलते नहीं, फलस्वरूप ये छड़ी का आकार धारण कर लेते हैं।

प्रबंधन

यह रोग जमीन में बोरॉन नामक पोषक तत्व की कमी से होता है। इस रोग से बचाव के लिए उर्वरक एवं खाद की अनुशंसित मात्रा के साथ 50 ग्राम बोरेक्स प्रतिवर्ष प्रति पौधा मिला दें। यदि रोग पुराना हो तो उपर्युक्त मात्रा साल में दो बार दी जा सकती है।

नारियल आधारित उत्पाद एवं हस्तशिल्प

खोपड़ा (सूखीगरी), नारियल तेल, सुखाया नारियल चूर्ण (डेसिक्केटिड नारियल), नारियल क्रीम एवं दूध, नेटा–डी–कोको, नारियल ताड़ी एवं गुड़, नारियल रेशा (कोयर), सक्रिय कार्बन, नारियल खोपड़ी चूर्ण एवं कोयला, नारियल पेड़ के विविध भागों से निर्मित हस्तशिल्प आदि मुख्य एवं सह–उत्पाद हैं जिन पर आधारित उद्योग एवं कुटीर धन्धों को अपनाकर कृषक परिवार के सदस्य, बेरोजगार युवक एवं कारीगर आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। उपरोक्त उत्पादों के अलावा नारियल का कच्चा फल 'डाब' दक्षिणी राज्यों के अतिरिक्त उड़ीसा, पश्चिम बंगाल एवं असम में भी नारियल कृषकों को अधिकाधिक आमदनी उपलब्ध करने का अच्छा स्रोत है। डाब पानी जो कि प्रोटीन एवं विटामिनों से परिपूर्ण है मानव की प्यास बुझाने के अलावा अनेक बीमारियों को भी दूर करता है।

Note : The input has been taken from different internal as well as external resources.

किसान कॉल सेंटर (निःशुल्क)

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (PMKSY) आवेदन से संबंधित

- किसान क्रेडिट कार्ड (KCC) से संबंधित
- कृषि ऋण माफी योजना से संबंधित

बीज विनिमय एवं वितरण योजना से संबंधित

झारखंड राज्य फसल राहत योजना (JRFRY) से संबंधित

- मुख्यमंत्री सुखाड़ राहत योजना से संबंधित
- बिरसा फसल विस्तार योजना से संबंधित
- एग्री क्लीनिक की स्थापना से संबंधित
- मृदा जांच से संबंधित

कृषक राहत कोष एवं कृषक हेल्पलाइन से संबंधित

समेकित बिरसा ग्राम विकास योजना सह कृषक पाठशाला से संबंधित

- खेतों में उपयोग होने वाले उपकरणों से संबंधित
- खाद/उर्वरक से संबंधित
- अधिकतम खुदरा मूल्य (MRP) से संबंधित
- उर्वरक डीलर के विरुद्ध शिकायत से संबंधित

संबंधित अधिकारियों/कर्मियों के कार्यकलाप से संबंधित

कृषि निदेशालय से संबंधित अन्य शिकायतें

राज्य के किसान भाई-बहन निम्नलिखित माध्यमों से समस्याएं/शिकायत/जानकारी किसान कॉल सेंटर में सोमवार से शनिवार (सुबह 10 बजे से शाम 5 बजे) तक दर्ज करा सकते हैं 👇

Toll Free No. 1800-123-1136

WhatsApp & SMS 8797891222

E-mail info@kccjharkhand.in

Website kccjharkhand.in

राज्यस्तरीय कृषि प्रबंधन प्रसार-सह-प्रशिक्षण संस्थान (समेति), झारखण्ड

समेति भवन, काँके रोड, राँची, झारखण्ड

www.sameti.org sametijharkhand@rediffmail.com